मध्यकालीन भारत का इतिहास

(1200–1761 ई.)

डॉ. कालूराम शर्मा   डॉ. प्रकाश व्यास

फारसी ग्रन्थ →

1. बाबरनामा / तुज्बुके बाबरी → बाबरनामा मुगल सम्राट बाबर की आत्मकथा है। जिसकी रचना बाबर द्वारा तुर्की भाषा में की गई। किन्तु बाद में इसका फारसी भाषा में अनुवाद अकबर के समय अब्दुर रहीम खानेखाना द्वारा किया गया। इससे बाबर के जीवन व कार्यों की जानकारी प्राप्त होती है। बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व भौगोलिक स्थिति का वर्णन भी इसमें किया गया है।

2. तारीखे रशीदी → इसकी रचना मिर्जा हैदर दोगलाव के द्वारा की गई यह बाबर का मौसेरा भाई था। इस ग्रन्थ में ~~बा~~ बाबर व हुमायूं के शासन काल की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है।
उदा० कन्नौज के युद्ध में शेरशाह व हुमायूं के बीच 1540 में हुआ था उसमें वह हुमायूं का सेनापति था। उसने हुमायूं की पराजय के बारे में लिखा कि एक भी तीर-गोली नहीं चली और चकताई (मुगल) युद्ध के मैदान से भाग गये।

3. कानून-ए-हुमायूनी → इसकी रचना हुमायूं के समय ख्वाजा मीर के द्वारा की गई। इसको हुमायूं द्वारा अमीरे-अखबार की उपाधि दी गई। इसमें हुमायूं के शासनकाल के केवल प्रथम तीन वर्षों अर्थात् 1530 से 1533 तक का इतिहास लिखा है। इस अवधि में हुमायूं द्वारा शासन सम्बन्धी नियम व महत्वपूर्ण पदो पर नियुक्तियो का उल्लेख मिलता है।

4. हुमायूनामा → इसकी रचना गुलबदन बेगम के द्वारा की गई। इस ग्रन्थ में उसने हुमायूं के सिंहासनारोहण से उसकी मृत्यु तक (1530-56) इतिहास लिखा है।

5. तजकिरात-उल-वाकियात → इसकी रचना जोहर आफताबची के द्वारा की गई। वह हुमायूं का विश्वासपात्र व्यक्तिगत सेवक था। वह आफताबची (हुक्का तैयार करने वाला) था। इस ग्रन्थ में उसने प्रारम्भ में हुमायूं के शासनकाल का वर्णन करने के बाद हुमायूं द्वारा ईरान में शरण लेना, पुनः भारत विजय का उल्लेख किया है। हुमायूं के शासनकाल के बारे में इसका विवरण गुलबदन बेगम से भी अधिक प्रामाणिक माना जाता है। क्योंकि उसने अधिकांश घटनाओं का वर्णन व्यक्तिगत जानकारी के द्वारा लिखा है।

Date
Page

6. तारीखे शेरशाही → अब्बास खान सरवानी - शेरशाह सूरी के शासनकाल का वर्णन - प्रशासनिक सुधार

7. अबुल फजल → यह अकबर का दरबारी इतिहासकार था तथा उसका घनिष्ठ मित्र व सलाहकार था। वह शेख मुबारक नागौरी का पुत्र था। अकबर द्वारा इसे 4000 का मनसब प्रदान की गई। जब वह अकबर के आदेश पर 1602 में दक्षिण भारत से आगरा लौट आया था तब सलीम के आदेश पर बुन्देलखण्ड के शासक वीरसिंहदेव बुन्देला द्वारा ओरछा के पास अबुल फजल की हत्या कर दी। अबुल फजल द्वारा अकबर के आदेश पर दो ग्रन्थो की रचना की-

1. अकबरनामा → इसे अबुल फजल ने तीन भागो में विभाजित किया है इसके प्रथम भाग में तैमूर लंग से लेकर हुमायूं तक के शासन का इतिहास लिखा है। द्वितीय भाग में अकबर के शासनकाल (1556-1603) वर्णित किया है। इसमें 1602 से 1605 तक वर्णन मोहम्मद आरिफ कन्धारी के द्वारा किया गया। तीसरा भाग आइने अकबरी को कहा जाता है। जिसमें अकबर के प्रशासनिक सुधारों का विस्तार से वर्णन किया है। इसके ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए, इतिहासकारो ने आइने- अकबरी को अबुल फजल की स्वतन्त्र रचना मानी है।

8. अब्दुल कादिर बदायूनी → इसका जन्म टोडाभीम में हुआ। यह धार्मिक कट्टरतापूर्ण विचार रखता था। वह अकबर की उदार धार्मिक नीति का कट्टर आलोचक था। अकबर के समय में अपने ग्रन्थ मुन्तखब-उल-तवारिख की रचना की। इसके तीन भाग है-

प्रथम भाग में गजनी के शासक सुबुक्तगीन से लेकर हुमायूं तक का मुस्लिम इतिहास लिखा है।

द्वितीय भाग में (1556-1595) तक का अकबर के शासन के 39 वर्षों का इतिहास लिखा है।

तृतीय भाग में उस समय प्रमुख मुस्लिम विद्वानो और सूफी सन्तों की जीवनियां लिखी है। उसका ग्रन्थ विशेष रूप से अकबर की धार्मिक नीति के बारे में जानकारी प्राप्त करने का मुख्य स्रोत है।

9. निजामुद्दीन अहमद → यह अकबर के समय मीर बक्शी (केन्द्रीय सैनिक विभाग का अध्यक्ष) था तथा फारसी का प्रमुख विद्वान था। उसने अपने ग्रन्थ

तबकाते अकबरी की रचना की। इसमें अकबर के शासनकाल के प्रथम 38 वर्षों का अर्थात् (1556-1593) तक का इतिहास लिखा है।

तारीखे अकबरशाही → इसकी रचना मोहम्मद आरिफ कन्धारी ने की। इसमें अकबर के पूरे शासनकाल का वर्णन मिलता है।

तकमील - ए - अकबरनामा → इसकी रचना इनायतुल्ला खाँ के द्वारा की गई। इसमें अन्तिम तीन वर्षों का इतिहास मिलता है।

जुबदत - उत - तवारीख → इसकी रचना शेख नुरूलहक ने की। इसमें अकबर कालीन शासनकाल (1595-1598) में उत्तर भारत के अकाल का विवरण मिलता है।

अबुल फजल के अलावा अन्य अकबरनामा की रचना फैजी सरहिन्दी के द्वारा की गई। इसमें उसके असीरगढ़ की विजय का वर्णन किया गया है।

जहांगीरनामा / तुजुके जहांगिरी → यह जहांगीर की आत्मकथा है। यह फारसी भाषा में लिखा गया है। इसमें जहांगीर के शासनकाल के प्रथम 17 वर्षों का (1605-1622) विवरण मिलता है। इनमें भी प्रथम 12 वर्षों का उल्लेख स्वयं जहांगीर द्वारा किया गया है। बाद के पांच वर्षों का उल्लेख सम्राट के आदेश पर मोतमिंद खां ने लिखा।

इकबालनामा - ए - जहांगीरी → इसकी रचना मोतमिंद खां ने की। इसमें जहांगीर के सम्पूर्ण शासन का विवरण मिलता है।

मासीरे जहांगीरी → इसकी रचना कामगार खां ने की।

वाकियाते जहांगिरी → इसकी रचना मोहम्मद के द्वारा की गई।

पादशाहनामा / बादशाहनामा → तीन पादशाहनामा की रचना की गई-

I कजवीनी कृत बादशाहनामा - केवल प्रथम 10 वर्षों का उल्लेख (1628-38)

II लाहोरीकृत बादशाहनामा - प्रथम 20 वर्षों का वर्णन (1628-48) सबसे प्रमुख रचना माना जाता है।

III वारिस कृत बादशाहनामा → अन्तिम 10 वर्षों का वर्णन (1648-58)

शाहजहांनामा → शासन के अन्तिम वर्षों में इनायत खां ने की। इस ग्रन्थ को मुल्लाखास भी कहा जाता है। सम्पूर्ण शासन का वर्णन।

अमल - ए - सालीह → रचना - मोहम्मद सालीह कम्बू ने की। इसमें शाहजहां की जन्म से मृत्यु तक का वर्णन मिलता है (1592-1666)

तारीखे शाहजहानी → रचना - मोहम्मद सादिक ने की। वह 6000 का मनसबदार था। इसमें इसके सम्पूर्ण शासनकाल का वर्णन है।

आलमगिरनामा → रचना - औरंगजेब के आदेश पर दरबारी इतिहासकार मोहम्मद काजिम के द्वारा की गई। इसमें केवल औरंगजेब के प्रथम 10 वर्षों का (1658-1668) इतिहास मिलता है, क्योंकि बाद में इसने इतिहास लिखने पर पाबन्दी लगा दी।

म आसिर - ए - आलमगिरी → इसकी रचना औरंगजेब के शासन के अन्तिम वर्षों में मुस्तैदखां के द्वारा की गई। इसमें 1658-1707 तक का सम्पूर्ण वर्णन है।

मुन्तखब - उल - लुबाब → इसकी रचना खाफी खां ने की। इसमें बाबर से लेकर 1733 तक मोहम्मद शाह तक का सम्पूर्ण मुगल वंश का इतिहास लिखा था। विशेष रूप से औरंगजेब व उसके बाद के मुगल सम्राटों के मुगल प्रशासन में उत्पन्न दोषों का विस्तार से वर्णन किया है। जैसे- मनसबदारी प्रथा में उत्पन्न दोषों का वर्णन

इन मुगल इतिहासकारों के अलावा मुगल काल में कुछ हिन्दु इतिहासकार भी हुए जिन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना फारसी भाषा में की

सुजानराय भण्डारी शाहजहां के समय खुलासत - उत - तवारीख

चतरमान → शाहजहां का समकालीन - चहार चमन - नियुक्त, वजीरों का वर्णन किया है।

भीमसेन बुरहानपुरी → औरंगजेब का समकालीन (सेना में लेखाकार) — नुस्खा - ए - दिलकुशा (औरंगजेब के दक्षिण भारत में लड़े गये युद्धों का वर्णन)

ईश्वरदास नागर → औरंगजेब का समकालीन था। ग्रन्थ - फुतुहात - ए - आलमगिरी इसमें औरंगजेब के राठौड़ राजपूतों के साथ युद्धों का वर्णन किया है।

फतवा - ए - आलमगिरि → मुस्लिम कानूनों का संग्रह, जिसे औरंगजेब के आदेश पर 1663 में शेख निजाम के नेतृत्व में 6 मुस्लिम विद्वानों द्वारा इसकी रचना की गई।

विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त

1. राल्फ फिच → ब्रिटीश यात्री था जो अकबर के समय में 1590 में भारत आया। मुगल काल में आने वाला पहला विदेशी यात्री। यात्रा वृत्तान्त → इंग्लैण्ड्स पायोनियर टू इण्डिया → अकबर के शासनकाल का वर्णन
2. विलियम हॉकिन्स → अंग्रेज था। 1608 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि के रूप में जहाँगीर के समय भारत आया। इसका भारत आने का उद्देश्य भारत में अपनी फैक्ट्रियां खोलने के लिए जहांगीर की स्वीकृति प्राप्त करना। जहांगीर द्वारा उसे 400 की मनसब दी गयी। किन्तु पुर्तगालियों के विरोध के कारण वह जहांगीर की स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सका और 1612 तक भारत में रहा। यात्रा वृत्तान्त → अर्ली ट्रेवल्स → अपने निवास के दौरान जहांगीर के समय की घटनाओं का उल्लेख किया। विलियम हॉकिन्स जहांगीर से आगरा में मिला।
3. सर टामस रॉ → अंग्रेज यात्री था। 1615 में ब्रिटीश सम्राट जेम्स I के राजदूत के रूप में जहांगीर के दरबार में आया था। जहांगीर से अजमेर में मिला। इसका उद्देश्य भी कम्पनी के लिए व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करना था। 1619 ई. तक भारत में रहा। यह अपने उद्देश्य में सफल रहा। यात्रावृत्तान्त → सर टॉमस रॉ एम्बेसी → जहाँगीर के शासनकाल के बारे में विस्तृत जानकारी
4. पेलसर्ट → डच यात्री था। 1620 में जहांगीर के समय भारत आया। 1627 तक भारत में रहा। यात्रावृत्तान्त → रिमोन्सट्रेन्टी → जहांगीर के शासन काल का उल्लेख।
5. मेनटीक → इतालवी यात्री था। 1640 में शाहजहां के समय आया। यात्रावृत्तान्त → इटनेरेरियों → शाहजहां के शासनकाल में भारत की समृद्धि का विस्तार से वर्णन किया। वह मुगल राजपरिवार के रहन-सहन व्यवहार से काफी प्रभावित हुआ। इसके अनुसार ताजमहल का डिजायन जेरेनियो वेरेनियो नामक इतालवी शिल्पकार ने तैयार किया।
6. ट्रेवरनियर → फ्रांसिसी यात्री था। 1640 में शाहजहां के समय भारत आया। यह व्यवसाय से जौहरी था इसलिए शाहजहां का घनिष्ठ मित्र बन गया। यात्रावृत्तान्त → ट्रेवल्स इन इंडिया → मुख्यतः 17वीं शताब्दी के भारत की आर्थिक स्थिति का विस्तृत विवरण किया।

7. बर्नियर → फ्रांसिसी यात्री था। व्यवसाय से डॉक्टर था। 1658 में उस समय भारत आया जब शाहजहां के पुत्रों में उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हो गया था। 1670 तक भारत में रहा। यात्रावृत्तान्त → ट्रेवल्स इन द मुगल एम्पायर - उत्तराधिकार युद्ध के साथ-2 17वीं शताब्दी के भारत की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का विवरण। बर्नियर → शाहजहां के समय में विदेशी व्यापार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। "भारत ऐसा खड्डा है, जिसमें निरन्तर विश्व का सोना-चांदी आकर एकत्रित हो रहा है, जिसके बाहर जाने का कोई स्रोत नहीं है।

8. मनुची → इतालवी यात्री था। 1653 में शाहजहां के समय भारत आया स्थायी रूप से भारत में बस गया था। 1717 में उसकी मृत्यु हो गयी। लिखित पुस्तक → स्टोरिया डो मोगोर (इटालियन में) हिस्ट्री ऑफ मुगल्स औरंगजेब का कट्टर आलोचक और दारा का समर्थक था। अपनी पुस्तक में उत्तराधिकार के युद्ध में दारा की पराजयों के कारणों का, शाहजहां के कैदी जीवन का और भारत की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का विवरण किया।

विलियम फिंच → अंग्रेज यात्री था। 1608 में जहांगीर के समय भारत आया। यात्रावृत्तान्त → सर्जन जर्नल - अनारकली का विवरण दिया।

एडवर्ड टैरी → टामस रॉ का पादरी था उसके साथ भारत आया। यात्रावृत्तान्त → अर्ली ट्रेवल्स इन इण्डिया - जहांगीर के शासनकाल का विवरण

भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना

जहीरुद्दीन मोहम्मद बाबर (1526-30) बाबर का जन्म 1483 में फरगना में हुआ। फरगना मध्य-एशिया में छोटा-सा राज्य था। बाबर के पिता उमर शेख मिर्जा फरगना के शासक थे। उनकी राजधानी अन्दीजान थी। बाबर तैमूरलंग का पांचवा वंशज माना जाता है। 1494 में उमरशेख मिर्जा की मृत्यु के कारण बाबर फरगना का शासक बना। इतिहासकारों द्वारा बाबर के जीवन को तीन चरणों में विभाजित किया गया -

पहला चरण → 1494 से 1502 फरगना के शासक के रूप में → बाबर मध्य एशिया में तैमूरलंग की तरह विशाल राज्य की स्थापना करना चाहता था किन्तु उसके मुख्य प्रतिद्वन्द्वी शैबानी खां उजबेग ने 1502 में सराय पुल के युद्ध में बाबर को पराजित करके उसे मध्य एशिया से निकाल कर बाहर कर दिया।

दूसरा चरण → 1505-1525 काबुल के शासक के रूप में → 1505 में बाबर काबुल पर अधिकार करने में कामयाब हुआ। बाबर काबुल के छोटे से राज्य से सन्तुष्ट नहीं था। वह राज्य प्रसार करना चाहता था। इसी उद्देश्य से भारत पर बाबर द्वारा आक्रमण किए गए। जैसा कि बाबर ने स्वयं अपनी आत्मकथा बाबरनामा में लिखा है कि उस समय भारत किसी एक शासक के अधिकार में न होकर पांच प्रमुख मुस्लिम राज्यों और दो हिन्दू राज्यों में बंटा था। मुस्लिम राज्य - मालवा - महमूद खिलजी II, गुजरात - मुजफ्फर शाह II, दिल्ली - इब्राहिम लोदी, बंगाल - नुसरतशाह, बहमनी राज्य - कलीमुल्ला शाह

बाबर ने इस बात का उल्लेख किया कि कलीमुल्ला को उसके वजीर अमीर अली बरीद शाह ने कैद करके सत्ता अपने हाथ में ले ली। कलीमुल्ला शाह ने बाबर से मदद की प्रार्थना की।

हिन्दु राज्य - मेवाड़ - राणा सांगा, विजयनगर - कृष्णदेवराय

इन राज्यों में भी उस समय उत्तर भारत की दो प्रमुख राजनैतिक शक्तियां अफगानों और राजपूतों को माना जाता था।

अफगानों के नेता इब्राहिम लोदी दिल्ली सुल्तान था किन्तु इब्राहिम लोदी के कठोर व्यवहार के कारण अधिकांश अफगान सरदार उससे नाराज थे। दरिया खां नामक अफगान सरदार ने बिहार में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। इसके अतिरिक्त पंजाब का गवर्नर दौलत खां लोदी भी उससे नाराज था। दौलत खां लोदी ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। आमंत्रित करने के लिए दिलावर खां और आलम खां लोदी दो अफगान सरदारों को भेजा।

अफगानो के अतिरिक्त राजपूत उस समय उत्तर भारत की दूसरी प्रमुख शक्ति थी जिनके नेता मेवाड़ के महाराणा सांगा थे। जिन्होंने पहली बार राजस्थान के राजपूत राजाओं को अपने नेतृत्व में संगठित करके राजपूतों का शक्तिशाली संघ बनाया। यहां तक कि राणा सांगा ने इब्राहिम लोदी को दो युद्धों में पराजित किया। खातोली (बूंदी अब कोटा में) का युद्ध (1518) → राणा सांगा विजयी हुये।

बाड़ी (धोलपुर) का युद्ध (1519) → राणा सांगा ने इब्राहिम को हराया। (मियां माखन, मियां हसन सांगा के विरुद्ध लड़े)

→ बाबर को भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित करने के लिए पांच युद्ध लड़नेपड़े -

1. पहला आक्रमण 1519 के प्रारम्भ में भेरा और बाजौर (पंजाब) पर इन पर अधिकार करके हिन्दु बेग को गवर्नर बनाया किन्तु अफगानो द्वारा उसे पराजित करके वहां से निकाल दिया।
2. दूसरा आक्रमण सितं. 1519 में पेशावर पर हुआ और उसने युसुफजाई अफगानो को पराजित करके पेशावर पर कब्जा कर लिया। किन्तु उसी समय बाबर के विरुद्ध बदख्शां में विद्रोह हो जाने के कारण पेशावर उसके हाथ से निकल गया।
3. तीसरा आक्रमण 1520 के प्रारम्भ में पुनः भेरा, बाजौर पर किया, अधिकार किया। किन्तु बाबर के विरुद्ध शाह अरघून के द्वारा विद्रोह कन्धार ~~के~~ कर देने के कारण भेरा बाजौर बाबर के हाथ से निकल गया।
4. चौथा आक्रमण दिसं. 1524 में दौलत खां के निमंत्रण पर पंजाब पर हुआ। उसने दौलत खां को पराजित करके पंजाब पर अधिकार किया इसके बाद 1524 में पुनः भारत पर आक्रमण किया।

पानीपत का प्रथम युद्ध → बाबर और इब्राहिम लोदी के बीच 21 अप्रैल 1526 को हुआ। इस युद्ध में ग्वालियर का शासक विक्रमजीत बाबर के विरुद्ध इब्राहिम लोदी के पक्ष में लड़ा। इस युद्ध में बाबर द्वारा इब्राहिम को पराजित किया।

परिणाम → 1. इस युद्ध के बाद भारत में लोदी वंश / दिल्ली सल्तनत का शासन समाप्त हो गया। बाबर द्वारा भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना

II. इब्राहिम लोदी के नेतृत्व में अफगानो के संघ को बाबर ने समाप्त कर दिया।

III. रशब्रुक विलियम्स ने अपनी पुस्तक इन एम्पायर बिल्डर ऑफ द 16th सेन्चुरी में लिखा है कि इस युद्ध के बाद बाबर का अधिकार आगरा, दिल्ली पर हो सका।

बाबर की विजय के कारण → 1. सबसे प्रमुख कारण उसके पास तोपखाना होना था। तोपखाने का अध्यक्ष - उस्ताद अली व मुस्तफा तुर्की सेनानायक थे

II. बाबर द्वारा प्रयुक्त युद्ध शैली मध्य एशिया में प्रचलित विभिन्न युद्धशैलियों का समन्वय थी - तुलुगमा का प्रयोग, रिजर्व सेना का प्रयोग, तोपखाने का प्रयोग

तुलुगमा → युद्ध शैली थी जिसका प्रयोग बाबर ने उज्बेगो से सीखा तुलुगमा में दो सैनिक टुकड़िया होती थी। जिन्हें सेना के दोनो कोनो पर नियुक्त किया जाता था। जिनका काम पूरी तरह युद्ध छिड़ जाने पर

आक्रमण करना था।

iii. इब्राहिम लोदी की तुलना में बाबर अधिक अनुभवी कुशल सेनानायक था।

iv. अफगानो में एकता का अभाव होना जिनके कारण इब्राहिम लोदी को बाबर के विरुद्ध सभी अफगान सरदारो का समर्थन प्राप्त नहीं हो सका।

खानवा का युद्ध [17 मार्च, 1527] → खानवा का युद्ध बाबर और राणा सांगा के बीच लड़ा गया। बाबर द्वारा इस युद्ध को जिहाद घोषित किया गया। हसन खां मेवाती और महमूद लोदी राणा सांगा की तरफ से लड़े।

* कर्नल टॉड ने लिखा है कि इस युद्ध में राणा सांगा के पक्ष में 7 राजपूत राजाओ, 9 राव और 104 राजपूत सरदारो द्वारा युद्ध किया गया। जिनमें मुख्य राजा- जोधपुर के शासक राव गांगा के पुत्र राव मालदेव, बीकानेर के राव जैतसी के पुत्र कल्याण मल, आमेर के पृथ्वीराज, मेड़ता के वीरमदेव, डूंगरपुर के उदयसिंह, चन्देरी के मेदनीराय, ईडर के भारमल, सिरोही के अखैराज आदि शासक थे। किन्तु इस युद्ध में राणा सांगा की पराजय हो गयी।

परिणाम – इस युद्ध के बाद राणा सांगा के नेतृत्व में राजपूतो का जो शक्ति संघ था, उसे बाबर द्वारा नष्ट कर दिया गया।

इस युद्ध के बाद भारत में बाबर की स्थिति सुरक्षित व मजबूत हो गयी क्योंकि भारत में बाबर का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं बचा था।

सांगा के पराजय के कारण – i. बाबर के पास तोपखाना होना

ii. बाबर द्वारा प्रयुक्त तुलुगमा युद्ध पद्धति

iii. राणा सांगा का युद्ध के दौरान घायल होकर मूर्छित हो जाना और उनको मैदान से हटा लेना

iv. कर्नल जेम्स टॉड और हरबिलास शारदा ने राणा सांगा की पराजय का कारण रायसिन (भोपाल) के शासक राय सिलहदी द्वारा सांगा के साथ विश्वासघात करना माना है। लेकिन अधिकांश इतिहासकार इस मत को नहीं मानते

चन्देरी का युद्ध [जनवरी 1528]

चन्देरी (MP) का युद्ध बाबर और मेदनीराय के बीच जिसमें बाबर द्वारा मेदनीराय को हराकर चन्देरी पर कब्जा कर लिया गया।

Date ____ Page ____

घाघरा का युद्ध [6 मई 1529]

घाघरा (सरयू नदी, UP) महमूद लोदी के नेतृत्व में बिहार के अफगानों बंगाल के सुल्तान नुसरतशाह की संयुक्त सेना और बाबर के बीच

* बाबर की विजय। इस युद्ध के बाद बाबर द्वारा बिहार प्रान्त को दो भागो में विभक्त किया और पश्चिमी बिहार को मुगल साम्राज्य में और पूर्व बिहार को इस शर्त पर ~~छोड़~~ अफगानो के पास छोड़ा कि वे भविष्य में मुगल प्रदेशो पर आक्रमण नहीं करेंगे।
* बाबर द्वारा लड़ा गया अन्तिम युद्ध था।

इस प्रकार इन चार युद्धो में बाबर ने अफगानो, राजपूतो को पराजित करके पंजाब से बिहार तक के प्रदेश पर अधिकार करके मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

* बाबर द्वारा फारसी भाषा में नई काव्य शैली मुबाइयान का आविष्कार
* बाबर द्वारा भारत में ताश का खेल लाया गया, जिसे फारसी भाषा में गंजीफा कहते थे।

नासिरुद्दीन महम्मद हुमायूं [1530-40]

निजामुद्दीन मीर खलीफा का षड्यंत्र → बाबर के समय में वजीर नियुक्त था बाबर का घनिष्ठ मित्र था। बाबर के अन्तिम दिनो में बीमार हो जाने का लाभ उठाकर मीर खलीफा ने बाबर के बाद हुमायूं की जगह बाबर के बहनोई मेंहदी ख्वाजा को बादशाह बनाने का षड्यंत्र रचा था। यद्यपि बाद में मीर खलीफा ने षड्यंत्र को रद्द कर दिया और हुमायूं को बादशाह बनने में मदद की। इस षड्यंत्र का उल्लेख तबकाते अकबरी के लेखक निजामुद्दीन अहमद के द्वारा किया गया। उसे इसकी जानकारी अपने पिता मोहम्मद मुकीम से मिली थी, जो इसका प्रत्यक्षदर्शी था।

* हुमायूं को सिंहासन पर बैठने के बाद तीन प्रतिद्वन्द्वीयो का सामना करना पड़ा

1. हुमायूं द्वारा सर्वप्रथम महमूद लोदी पर आक्रमण किया गया जिसके फलस्वरूप अगस्त, 1532 में दौरोह / देवरिया (बाराबांकी, UP) का युद्ध हुआ। हुमायूं की विजय। अधिकांश अफगान सरदारो की मृत्यु

2. **हुमायूं और बहादुरशाह (मालवा, गुजरात का सुल्तान)**

हुमायूं को पराजित करके मुगल साम्राज्य पर अधिकार करना चाहता था। उसने रूमी खां ~~के~~ नामक तुर्की सेनानायक के ~~रूप~~ नेतृत्व में एक शक्तिशाली

तोपखाने का प्रबन्ध तथा खुले रूप से हुमायूँ के विरोधियों को अपने राज्य में शरण दे रहा था। किन्तु अन्त में हुमायूँ के द्वारा गुजरात पर आक्रमण का मुख्य कारण बहादुर शाह द्वारा मुगल विद्रोही सरदार मोहम्मद जमा मिर्जा को शरण देना था। जिसके फलस्वरूप हुमायूँ और बहादुरशाह के बीच अप्रैल 1535 में मन्दसौर का युद्ध हुआ। जिसमें हुमायूँ की विजय हुयी। बहादुर शाह को भागकर पुर्तगालियों के पास द्यू (दीव) बन्दरगाह में शरण ली।

चम्पानेर का युद्ध – हुमायूँ द्वारा बहादुरशाह को निष्कासित करने के बाद चम्पानेर के किले पर आक्रमण किया गया। चम्पानेर का किला बहादुर शाह के सेनानायक इख्तियार खां के अधिकार में था। अगस्त 1535 में चम्पानेर का युद्ध हुआ जिसमें हुमायूँ की विजय और चम्पानेर पर अधिकार।

* गुजरात मालवा पर अधिकार करने के बाद हुमायूँ द्वारा गुजरात का प्रबन्धक अपने छोटे भाई असकरी को नियुक्त किया गया। अपने विश्वासपात्र मुगल सरदार हिन्दु बेग को असकरी का सलाहकार नियुक्त किया। किन्तु असकरी द्वारा अपने उत्तरदायित्व उचित रूप से पूरा न करने तथा हुमायूँ के द्वारा माण्डू में भोग विलास में समय बर्बाद करना तथा प्रशासन की उचित व्यवस्था न करना, गुजरात की जनता को विश्वास में न लेना और जनता के मुगलों के विद्रोह के फलस्वरूप बहादुरशाह ने हुमायूँ को निष्कासित करके गुजरात पर पुनः अधिकार कर लिया।

3. हुमायूँ और शेर खाँ-

हुमायूँ का सबसे मुख्य प्रतिद्वन्द्वी शेर खां था। हुमायूँ और शेर खां के बीच उत्तर भारत में सर्वोच्चता स्थापित करने को लेकर दो युद्ध लड़े गये–

चौसा (बिहार) का युद्ध – 26 जून, 1539 में लड़ा गया। इसमें हुमायूँ की पराजय हुयी।

चौसा के युद्ध का महत्व → i. यह पहला युद्ध था जिसमें शेर खां के नेतृत्व में अफगानों द्वारा मुगलों को पराजित किया गया।

ii. इस युद्ध के बाद ही शेरखां द्वारा शेरशाह की उपाधि धारण की गयी।

iii. इस युद्ध के बाद ही शेरशाह ने अपना राज्याभिषेक चौसा में करवाया।

* हुमायूँ द्वारा चौसा के युद्ध के बाद निजाम नामक भिश्ती द्वारा जान बचाने के उपलक्ष्य में उसको एक दिन के लिए मुगल बादशाह बनाया। इस घटना का उल्लेख गुलबदन बेगम ने हुमायूँनामा में किया। निजाम द्वारा चमड़े के सिक्के जारी किए गए।

कन्नौज / बिलग्राम का युद्ध – 17 मई 1540 में, जिसमें एक बार पुनः शेरशाह द्वारा हुमायूँ को पराजित किया गया। युद्ध के बाद शेरशाह ने हुमायूँ को हिन्दुस्तान से निष्कासित कर दिया। कुछ वर्षों के लिए भारत में मुगल साम्राज्य समाप्त हो गया। शेरशाह द्वारा अफगान राज्य की पुनः स्थापना की जिसे सूर साम्राज्य के नाम से जाना जाता है।

सूर साम्राज्य (1540–55)

शेरशाह सूरी (1540–45)

वर्तमान इतिहासकारों ~~इस~~ में सबसे प्रमाणिक पुस्तक प्रो. कालिका रंजन कानूनगो के द्वारा लिखित शेरशाह एण्ड हिज टाइम्स – शेरशाह का जन्म 1486 में हिसार में हुआ। उसके बचपन का नाम फरीद था। उसके पिता हसन खां सूर थे, जिन्हें सुल्तान सिकन्दर लोदी के द्वारा बिहार प्रान्त में स्थित सासाराम का परगना जागीर में दिया गया। हसन खां सूर ने 1511–1518 तक फरीद को सासाराम का प्रबन्धक नियुक्त किया। शेर खां को सासाराम के प्रबन्धक के रूप में प्रशासन का जो प्रशिक्षण मिला, उसका बाद में शेरशाह के जीवन के उत्थान में मुख्य योगदान रहा।

* फरीद की शिक्षा जौनपुर में हुई।
* 1522–27 तक वह बिहार के शासक बहार खां की सेना में नियुक्त था। बहार खां द्वारा फरीद को शेर खां की उपाधि दी गयी।
* 1528–29 तक वह मुगल सम्राट बाबर की सेवा में नियुक्त रहा। बाबर के लिए चन्देरी के युद्ध में लड़ा था।
* 1529 के अन्त में शेर खां वापस बिहार लौट आया था। वह बिहार के सुल्तान जलाल खां का संरक्षक और प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ।
* शेर खां की अगली मुख्य उपलब्धि सूरजगढ़ का युद्ध था जो 1534 में इब्राहिम खां के नेतृत्व में बंगाल राज्य की सेना और शेर खां के बीच हुआ जिसमें शेर खां की विजय हुयी। इसके फलस्वरूप शेर खां को बंगाल की सेना का विशाल राजकोष, हथियार बड़ी संख्या में घोड़े प्राप्त हुये।

शेरशाह के प्रशासनिक सुधार

शेरशाह के प्रशासनिक सुधारों का उल्लेख अब्बास खां सारवानी ने अपनी पुस्तक तारीख-ए-शेरशाही में किया। यद्यपि शेरशाह द्वारा केवल पांच वर्ष शासन किया गया किन्तु इस अवधि में इतनी उत्कृष्ट शासन व्यवस्था लागू की कि उसके आधार पर शेरशाह की गिनती विश्व के महान्

शासकों में की जाती है।
किन्तु डॉ॰ आर॰ पी॰ त्रिपाठी कृत सम आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन में लिखा है कि शेरशाह एक सुधारक था, वह किसी मौलिक व्यवस्था का प्रवर्तक नहीं था। ऐसा लिखने के पीछे उनका यह अभिप्राय था कि शेरशाह द्वारा लागू की गयी शासन व्यवस्था उसकी मौलिक व्यवस्था नहीं थी बल्कि उसके कुछ सुधार सल्तनतकाल में प्रचलित रहे थे।
शेरशाह के प्रमुख सुधार→
1. केन्द्रीय मन्त्रीपरिषद → शेरशाह की केन्द्रीय शासन व्यवस्था प्रकृति: दिल्ली सुल्तानो की केन्द्रीय शासन व्यवस्था पर आधारित थी। क्योंकि सल्तनतकाल में केन्द्रीय सरकार में जिन छः मन्त्रियों की नियुक्ति की गई थी, वही छः मन्त्री शेरशाह के द्वारा भी केन्द्र में नियुक्त किए गए- i. वजीर ii. दीवाने-आरिज iii. दीवाने इंसा iv. दीवाने रसालात v. सद्र-उस-सुदुर vi. काजी-उल-कुजात
प्रान्तीय शासन व्यवस्था-
प्रो॰ कानूनगो का मानना है कि शेरशाह द्वारा अपने साम्राज्य को प्रान्तों जैसी बडी प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित न करके अपने साम्राज्य को सरकारो (जिलों) में विभक्त किया। अब्बास खां शरवानी ने शेरशाह के समय में कुल सरकारों की संख्या 66 बतायी है। प्रत्येक सरकार में प्रशासन चलाने के लिए दो अधिकारियों की नियुक्ति की → ।
1. शिकदार-ए-शिकदारान- सैनिक अधिकारी था और सरकार का अध्यक्ष था। इसका मुख्य कार्य अपनी सरकार में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना और आन्तरिक विद्रोह का दमन करना था।
2. मुन्सिफ-ए-मुन्सिफान- राजस्व विभाग का अध्यक्ष। मुख्य कार्य→ भू-राजस्व से संबंधित कार्यों को देखना था।
परगना - शेरशाह द्वारा प्रत्येक सरकार को अनेक परगनो में विभाजित किया गया था। अब्बास खां सारवानी ने शेरशाह के समय में कुल परगनो की संख्या 1 लाख 13 हजार बतायी है। उसके द्वारा प्रत्येक परगने में पांच अधिकारी नियुक्त किए गए-
शिकदार (1) - परगने का अध्यक्ष, परगने में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना
मुन्सिफ (1) - परगने का भू-राजस्व अधिकार
खजांची / फोतेदार (1) - परगने के खजाने का अध्यक्ष
कारकून (2) - लिपिक। क्लर्क। प्रत्येक परगने में दो कारकून

एक हिन्दी भाषा का ज्ञाता और दूसरा फारसी भाषा का ज्ञाता। मुख्य कार्य- अपने परगने के भू-राजस्व संबंधी रिकॉर्डस को हिन्दी और फारसी भाषा में लिखना था।

गाँव - प्रत्येक परगने में अनेक गांव सम्मिलित थे। गांव में दो मुख्य अधिकारी थे - I. मुकद्दम II. पटवारी

शेरशाह के भू-राजस्व सुधार

शेरशाह के प्रशासनिक सुधारो में सबसे प्रमुख भू-राजस्व सुधार माने जाते हैं उसके भू-राजस्व सुधारों की सबसे मुख्य विशेषता यह थी कि उसने भू-राजस्व सुधारो में किसानो के हितो को अधिक से अधिक महत्व दिया था क्योंकि शेरशाह ~~कहता~~ कहा करता था कि किसान किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के आधार स्तम्भ होते हैं। अतः हर शासक का यह मुख्य कर्त्तव्य होता है कि वह किसानो के हितो को अधिक महत्व दे। क्योंकि यदि किसान सन्तुष्ट होगा तो वह अधिक उत्पादन करेगा। जिससे व्यापार उद्योगो का विकास होगा।

I. शेरशाह ने स्थानीय जमींदारो द्वारा किसानो से भूमिकर वसूल करने की व्यवस्था को समाप्त कर दिया। अब उसने राजस्व अधिकारियों द्वारा किसानों से भूमिकर वसूल करने की व्यवस्था को लागू किया जिसे कुछ इतिहासकारो ने रैय्यतवाड़ी व्यवस्था के नाम से पुकारा।

II. शेरशाह द्वारा भूमिकर निर्धारण के लिए पैमाइश पद्धति को पुनः लागू किया गया। उसने पैमाइश की पद्धति को पूर्ण शक्ति के साथ अपने सारे साम्राज्य में लागू किया। किन्तु मुल्तान एकमात्र ऐसा अपवाद था जहां शेरशाह ने पैमाइश की पद्धति को लागू नहीं किया।

III. शेरशाह द्वारा विभिन्न फसलों की भूमिकर दरें स्थायी रूप से लागू करदी उनकी एक सूची तैयार करवायी गयी, जिसे अबुल फज़ल ने राय(रै) के नाम से पुकारा। फजल लिखता है कि भूमि कर की दरों को निर्धारित करने के लिए एक निश्चित पद्धति का अनुसरण किया गया। जैसे- शेरशाह द्वारा कृषि भूमि को तीन भागो में बांटा गया → उत्तम, मध्यम, निम्न ये तीनो प्रकार की भूमि की उपज को जोडकर उनकी औसत उपज मालूम की गयी। औसत उपज का 1/3 भाग भू-कर के रूप में निर्धारित किया गया।

IV. शेरशाह द्वारा भूमिकर की दर 1/3 निर्धारित की गयी किन्तु मुल्तान इसका अपवाद था जहां उसने भूमिकर की दर 1/3 की जगह 1/4 लागू की।

V. भूमि कर के अलावा शेरशाह द्वारा किसानो पर दो कर और लागू किए गए।
जरीबाना – एक कर था जो भूमि की नाप की एवज मे लिया जाता था।
महासिलाना – भूमि कर संग्रह किए जाने के एवज मे लिया जाता था। दोनों कर भूमिकर का 2.5 से 5 % तक लिया जाता था।

VI. शेरशाह द्वारा किसानो को उनकी भूमि के पक्के पट्टे दिए गए थे। जिसमें किसान की पूरी भूमि का ब्यौरा उल्लेखित होने के साथ भूमिकर की दर का भी उल्लेख

शेरशाह के सैनिक सुधार

शेरशाह के सैनिक सुधार पूर्णतः अलाउद्दीन खिलजी के सैनिक सुधारो पर आधारित थे। उदाहरण के लिए शेरशाह के द्वारा ही खिलजी की भांति एक स्थायी सेना का गठन किया गया। जिसमें 1,50,000 घुड़सवार, 25,000 पैदल, 50 हाथी थे।

* शेरशाह द्वारा भी सेना मे व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने के उद्देश्य से दाग और हुलिया प्रथा को पुनः प्रारम्भ किया गया।

मुद्रा सुधार

शेरशाह द्वारा सर्वप्रथम उसके पूर्ववर्ती मुस्लिम शासको के समय से जो भी सिक्के चले आ रहे थे उन सब को बन्द कर दिया। अब उसके द्वारा रुपया और दाम दो सिक्के जारी किए गए। रुपया चांदी का सिक्का –180 ग्रेन और दाम तांबे का सिक्का – दाम को पैसा। फुलुस भी कहते थे और एक रुपये में 64 दाम होते थे।

* शेरशाह द्वारा चांदी के रुपये के छोटे सिक्के जारी किए गए। जैसे- अठन्नी (अठगानी), दुवन्नी (दोगानी), चवन्नी (चौगानी), इकन्नी (ऐगानी)
* शेरशाह द्वारा सोने का सिक्का अशरफी जारी किया गया।
* शेरशाह द्वारा पहली बार अपने सिक्को पर फारसी के साथ देवनागरी हिन्दी में भी लेख लिखवाये।

शेरशाह की मुद्रा प्रणाली मुगलकाल में भी प्रचलित रही। किन्तु मुगल काल में अकबर द्वारा एक रुपये में 40 दाम कर दिए गए।

पुलिस सुधार

यद्यपि शेरशाह द्वारा एक अलग से पुलिस विभाग का गठन नहीं किया गया किन्तु उसके द्वारा शिकदार-ए-शिकदारान और शिकदारो को सैनिक कार्यों के साथ-2 पुलिस से संबंधित कार्य भी करने की जिम्मेदारी सौंपी। जैसे- चोरी-डकैती रोकना, अपराधियो को दण्डित करना

इसके साथ ही शेरशाह ने स्थानीय उत्तरदायित्व का सिद्धान्त लागू किया जिसके अनुसार यदि किसी गांव ~~के मुखिया~~ में या उसकी सीमा के अन्तर्गत कोई भी चोरी-डकैती होती थी तो उस गांव के मुखिया का ये उत्तरदायित्व होता था कि वह उस चोरी के माल को बरामद करे। यदि वह ऐसा करने में असफल होता था तो उसे सीधा मृत्यु दण्ड ही दिया जाता था। अब्बास खां सारवानी लिखता है कि शेरशाह द्वारा लागू इस व्यवस्था के फलस्वरूप मार्ग पूरी तरह सुरक्षित हो गए थे और चोरी-डकैती पूरी तरह समाप्त हो गयी।

डाक एवं गुप्तचर विभाग

शेरशाह द्वारा एक पृथक डाक एवं गुप्तचर विभाग की स्थापना की जिसका अध्यक्ष दरोगा-ए-डाक चौकी कहलाता था। उसके साम्राज्य के सभी भागो मे बड़ी संख्या में गुप्तचरों की नियुक्ति कर दी। जिनका कार्य अपने-2 प्रदेश में घटने वाली सभी प्रमुख घटनाओं की सूचना शेरशाह को भेजना था। शेरशाह ने प्रत्येक डाक चौकी पर दो घुड़सवार नियुक्त किए जिनका काम अपनी डाक चौकी से सरकारी डाक को अगली डाक चौकी पर पहुँचाना होता था। अब्बास खां लिखता है कि इस व्यवस्था के फलस्वरूप मुल्तान जैसे दूर-दराज प्रदेश से भी दो दिन में डाक आगरा सुल्तान के पास पहुंच जाती थी।

शेरशाह के निर्माण कार्य / स्थापत्य कला में योगदान

* शेरशाह द्वारा दो किलो का निर्माण किया गया – I. रोहतासगढ़ (पंजाब) में झेलम नदी के किनारे किया गया। II. शेरमण्डल (दिल्ली) में हुमायूं द्वारा निर्मित दीन पनाह नामक किले को गिरवाकर शेरमण्डल के नाम से नया किला बनवाया, जिसे दिल्ली के पुराने किले के नाम से जाना जाता है। उसने शेरमण्डल किले के अन्दर एक मस्जिद का निर्माण करवाया जिसे किला-ए-कुहना के नाम से जाना जाता है।

शेरशाह द्वारा अनेक सड़कों का निर्माण करवाया गया जिनमें 4 सड़के अधिक महत्वपूर्ण थी। 1. पंजाब के रोहतासगढ़ दुर्ग से प्रारम्भ होकर सुनारगांव (बांग्लादेश) तक जाती थी। इसे सड़क-ए-आजम कहा जाता था। यह 1500 कोस लम्बी थी। अब इसे जी.टी. रोड़ कहते है।

2. मुल्तान से लाहौर तक
3. आगरा से बुरहानपुर (m.p.) तक
4. आगरा से जोधपुर तक

* शेरशाह द्वारा निर्मित इमारतों में सबसे प्रमुख उसका स्वंय का मकबरा था जिसका निर्माण उसने अपने जीवनकाल में सासाराम में करवाया। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह मकबरा मध्यकालीन भारत की एक प्रमुख इमारत मानी जाती है। यहां तक कि कनिंघम का तो यहां तक मानना है कि तकनीकी दृष्टि से शेरशाह का मकबरा ताजमहल से भी अधिक महत्वपूर्ण है। शेरशाह का मकबरा झील के बीचो बीच बना है।
* शेरशाह द्वारा सभी प्रमुख सड़को पर प्रत्येक दो कोस के फासले पर कुल 1700 सरायों का निर्माण करवाया गया। जिनमें यात्रियो के खाने-पीने की मुफ्त व्यवस्था की गई। ये डाक चौकी का भी कार्य करती थी।

शेरशाह की मृत्यु मई 1545 में कालिंजर के घेरे के दौरान बारूद में विस्फोट हो जाने से हो गयी।

शेरशाह के उत्तराधिकारी हुमायूं की भारत पुनर्विजय

* शेरशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र इस्लाम शाह सिंहासन पर बैठा (1545-53) किन्तु 1553 मे इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद सूर साम्राज्य तीन सुल्तानो में विभाजित हो गया -

i. सिकन्दरशाह सूर - पंजाब से लेकर आगरा, दिल्ली तक के प्रदेश पर अधिकार किया
ii. आदिलशाह सूर (नृतक सम्राट) - बिहार का स्वतन्त्र शासक, हेमू इसका वजीर था
iii. मोहम्मद शाह सूर - बंगाल का स्वतन्त्र शासक

* 1540 मे जब शेरशाह के द्वारा कन्नौज के युद्ध में हुमायूं को पराजित कर हिन्दुस्तान से निष्कासित कर दिया गया तब हुमायूं द्वारा सिन्ध प्रान्त में स्थित अमरकोट राज्य के हिन्दु शासक राणा विरसाल के यहां शरण ली।
* अमरकोट में 15 अक्टूबर 1542 मे अकबर का जन्म हुआ। किन्तु जब हुमायूं के राणा वीरसाल के साथ संबंध खराब हो गए तब हुमायूं ने ईरान के सम्राट शाह तहमास के यहां शरण ली। बाद में हुमायूं द्वारा 1555 में पंजाब के शासक सिकन्दर सूर के साथ दो युद्ध लड़े गये -

i. मच्छीवाड़ा का युद्ध (मई 1555) → लुधियाना में, हुमायूं की विजय
ii. सरहिन्द (पंजाब) का युद्ध (जून 1555) → हुमायूं की विजय। हुमायूं द्वारा भारत में लड़ा गया अन्तिम युद्ध था। इस युद्ध के बाद हुमायूं ने अकबर को पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया तथा बैराम खां को अकबर का अतालीक (संरक्षक) बनाया।

* जुलाई 1555 में हुमायूं द्वारा आगरा और दिल्ली पर अधिकार कर लिया गया। किन्तु 6 महीने बाद जनवरी 1556 में हुमायूं की दिल्ली में स्थित शेरमण्डल दुर्ग के पुस्तकालय की सीढ़ियो से लुढ़क जाने से मृत्यु हो गयी।

इसकी मृत्यु पर लेनपूल ने लिखा है कि जिस प्रकार हुमायूं तमाम जिन्दगी भर गिरते-पड़ते चलता रहा, उसी प्रकार गिरते-पड़ते ही वह इस जीवन से मुक्त हो गया।

जन्म 15 Oct 1542 — पानीपत का द्वितीय युद्ध 5 Nov 1556

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर (1556 - 1605)

अकबर का राज्याभिषेक फरवरी 1556 मे कालानोर (गुरुदासपुर) में हुआ

बैराम खां का संरक्षण काल (1556-60) - बैराम खां अकबर का अतालिक (संरक्षक) होने के साथ-2 वह वकील (प्रधानमन्त्री) के पद पर नियुक्त था इस समय अकबर के वयस्क न होने के कारण 1556 से लेकर 1560 तक मुगल प्रशासन की वास्तविक बागडोर बैराम खां के हाथ में रही। इसलिए इस काल को मुगल इतिहास मे बैराम खां का संरक्षक काल कहा जाता है।

* किन्तु 1560 में बैराम खां और अकबर के बीच संबंध खराब हो जाने के कारण अकबर ने इसे दोनो पदों से हटा दिया
* 1560 - 62 तक मुगल प्रशासन की बागडोर माहम अनगा के हाथ में रही। इसलिए इस काल को स्मिथ ने अपनी पुस्तक अकबर द ग्रेट मुगल में पेटीकोट (पर्दा) शासन के नाम से पुकारा है।
* इस काल में वास्तव में प्रशासन की बागडोर माहम अनगा और उसके गुट के हाथ में रही। जिसमें चार व्यक्ति सम्मिलित थे—

i. माहम अनगा (अध्यक्ष) ii. आदम खां (पुत्र)
iii. शिहाबुद्दीन (दामाद) iv. मुनीम खां (हुमायूं का विश्वासपात्र सरदार)

किन्तु जब 1562 में अकबर और माहम अनगा के संबंध खराब हो गए तब अकबर ने सत्ता की बागडोर स्वंय अपने हाथ में ले ली।

अकबर की धार्मिक नीति

अकबर पहला मुस्लिम शासक था जिसने अपने पूर्ववर्ती मुस्लिम शासकों की कट्टर धार्मिक नीति का अनुसरण न करके और उसके विपरीत उदार धार्मिक नीति का अनुसरण किया जो सुलह-कुल (सबके साथ शान्ति सद्भाव से रहना) के सिद्धान्त पर आधारित थी।

* अकबर द्वारा उदार धार्मिक नीति के अनुसरण करने के पीछे दो मुख्य कारण थे – 1. अकबर का जिस प्रारम्भिक वातावरण में पालन-पोषण हुआ उसका अकबर के धार्मिक विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए ऐसा माना जाता है कि अकबर को सुलेह कुल का पाठ उसके शिक्षक अब्दुल लतीफ के द्वारा पढ़ाया गया।

2. अकबर भारत में मुगल साम्राज्य के स्थायित्व के लिए हिन्दुओं का समर्थन आवश्यक समझता था।

* अकबर के धार्मिक विचारों में समय-2 पर परिवर्तन होता रहा और उसके धार्मिक विचारों का धीरे-2 विकास हुआ। इसलिए इतिहासकारों द्वारा अकबर की धार्मिक नीति को तीन चरणों में विभाजित किया गया –

पहला चरण (1556–1575) – की सबसे मुख्य बात यह थी कि उसने हिन्दुओं की धार्मिक स्वतन्त्रता पर जो भी प्रतिबन्ध थे और हिन्दुओं के साथ धार्मिक आधार पर जो भी भेदभाव किया जाता था, उन सब को अकबर ने समाप्त करके हिन्दुओं को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की।

i. उसने 1562 में हिन्दु युद्धबन्दियों को बलपूर्वक मुस्लिम बनाने और दास बनाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।
ii. 1563 में तीर्थयात्रा कर को समाप्त करना।
iii. 1564 में जजिया कर को समाप्त किया (कश्मीर के जैनुअल आबीदीन (कश्मीर का अकबर) पहला, बहमनी राज्य के प्रथम सुल्तान अलाउद्दीन हसन बहमनशाह (1347) ने जजिया कर को समाप्त किया)
iv. बिना किसी धार्मिक भेदभाव के हिन्दुओं को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया। जैसे- टोडरमल को दीवान (वित्तमन्त्री), भगवंत दास को पंजाब का गवर्नर, मानसिंह को काबुल, बिहार, बंगाल का गवर्नर बनाया, बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का गवर्नर बनाया।
v. हिन्दुओं को उच्च मनसबे प्रदान की गयी। जैसे- मानसिंह को 7000 का मनसब

* अकबर द्वारा पूर्ववर्ती मुस्लिम शासकों की मन्दिरों को गिराने की नीति का अनुसरण नहीं किया
* अकबर द्वारा हिन्दु राजाओं की झरोखा दर्शन और तुलादान की परम्परा का अनुसरण करना प्रारम्भ किया।
* अकबर द्वारा अपनी किसी भी हिन्दु पत्नी का धर्म परिवर्तन नहीं किया गया।

दूसरा चरण (1575–1582)

इबादतखाने की स्थापना – 1575 में फतेहपुर सीकरी में की गयी।
(फतेहपुर सीकरी राजधानी 1569–1585 और लाहौर (1585–95))
इसके पीछे अकबर का मुख्य उद्देश्य धार्मिक विषयों पर विचार-विमर्श और विभिन्न धर्मों के बारे में जानकारी प्राप्त करना था। उसके द्वारा इबादतखाने में एक के बाद एक पांच विभिन्न धर्मों के विद्वानों को आमंत्रित किया गया

* सर्वप्रथम मुस्लिम विद्वानों को जिनमें दो मुस्लिम विद्वान मुख्य थे –
i. शेख अब्दुल नबी (सद्र-उल-सुदुर का अध्यक्ष) ii. मखदूम-उल-मुल्क (अब्दुल्ला सुल्तान पुरी)
* इन मुस्लिम विद्वानों के साथ-2 मुन्तखब-उत-तवारिख के लेखक बदायूनी ने भी इस वाद-विवाद में भाग लिया था।
* मुस्लिम विद्वानों के बाद इबादत खाना में हिन्दु विद्वानों को आमंत्रित किया जिनमें- पुरुषोत्तम और देवी प्रमुख थे
* हिन्दुओं के बाद उसने गोवा से ईसाई मिशनरियों को आमंत्रित किया जिनमें मोंसरेट, एक्वीविवा, एनरिक्वेज मुख्य थे।
* ईसाईयों के बाद जैन आचार्यों को आमंत्रित किया जिनमें हरि विजयसूरी और जिनचन्द्र सूरी प्रमुख थे। अकबर सबसे ज्यादा प्रभावित इन जैन आचार्यों से हुआ। इसलिए अकबर द्वारा हरि विजय सूरी को जगद् गुरु की उपाधि दी। जिनचन्द्र सूरी को युग प्रधान की उपाधि दी। इन जैन आचार्यों द्वारा ही अकबर को अहिंसा का पाठ पढ़ाया गया।
* जैन के बाद पारसी धर्म के आचार्य दस्तूरजी मेहरजी राणा को नवसारी से आमंत्रित किया। नवसारी पारसी धर्म का मुख्य केन्द्र था।

इन सब विद्वानों के विचार सुनने के बाद अकबर का कट्टर इस्लाम में विश्वास खत्म हो गया। अकबर का इस्लाम की श्रेष्ठता में विश्वास

नहीं रहा। उसका यह मानना था कि न केवल इस्लाम बल्कि कोई भी धर्म पूरी तरह से दोषरहित नहीं है और सभी धर्मों में अच्छाइयों के साथ अनेक अन्धविश्वास और आडम्बर मौजूद थे।

मजहर की घोषणा → मजहर जिसे अचूक आज्ञापत्र या इनफेलिबिलिटी डिक्री भी कहा जाता है। एक प्रपत्र था जिसे 1579 में शेख मुबारक नागौरी के द्वारा लिखा गया। जिस पर हिन्दुस्तान के कुछ प्रख्यात उलेमाओं द्वारा हस्ताक्षर करके इस बात के लिए अपनी स्वीकृति व्यक्त की गयी कि यदि किसी मुस्लिम कानून की व्याख्या को लेकर उलेमाओं में मतभेद हो जाता है। तब अकबर बादशाह को यह अधिकार होगा कि वह इन विभिन्न मतों में से किसी एक मत को स्वीकार करे। इस प्रकार मजहर के द्वारा अकबर ने मुस्लिम कानून की व्याख्या करने का अन्तिम अधिकार स्वयं ने प्राप्त कर लिया और इस मजहर पर पांच उलेमाओं द्वारा हस्ताक्षर किए गए- शेख मुबारक नागौरी, शेख अब्दुल नबी, अब्दुला सुल्तानपुरी, जलालुद्दीन (काजी-ए-ममालिक) गाजी खां (2000 का मनसबदार) के द्वारा किया गया।

* अकबर ने यह अधिकार इसलिए प्राप्त किया था कि कट्टर पंथी उलेमा अकबर के खिलाफ कोई अनुचित फतवा न जारी कर सके। इसलिए अकबर के शासनकाल में 1581 का वर्ष अत्यन्त संकटमय माना जाता है, क्योंकि इसी वर्ष अकबर के विरुद्ध कुछ कट्टरपंथी उलेमाओं और मुगल सरदारों के द्वारा विद्रोह करके उसे सत्ता से हटा देने का षड्यन्त्र रचा। किन्तु षड्यन्त्र के तहत एकमात्र जौनपुर के काजी मुल्ला मोहम्मद याजदी के द्वारा ही फतवा जारी किया गया।
* मजहर का उल्लेख केवल बदायूनी ने अपने ग्रन्थ में किया।

तृतीय चरण (1582-1605) →

1. दीन-ए-इलाही की स्थापना → दीन-ए-इलाही जिसे तौहिद-ए-इलाही भी कहा गया है, एक धर्म था। जिसकी स्थापना अकबर के द्वारा 1582 में फतेहपुर सीकरी में की गई।

* किन्तु विन्सेन्ट स्मिथ ने अपनी पुस्तक अकबर दी ग्रेट मुगल में दीन-ए-इलाही की स्थापना के लिए अकबर की कटु आलोचना की है और लिखा है कि दीन-ए-इलाही अकबर की बुद्धिमता का नहीं बल्कि उसकी मूर्खता का प्रतीक था। ऐसा लिखने के पीछे स्मिथ का यह मानना था कि अकबर ने दीन-ए-इलाही के रूप में एक नया धर्म स्थापित करके और स्वयं पैगम्बर बनने का प्रयास किया। अन्ततः अकबर का दीन-ए-इलाही असफल रहा। किन्तु स्मिथ के इस कथन को हम सही नहीं मान सकते क्योंकि पहली बात तो दीन-ए-इलाही वास्तविक रूप में एक धर्म नहीं था क्योंकि इसमें एक धर्म के लिए आवश्यक बातें विद्यमान नहीं थी यह वास्तव में एक धार्मिक सामाजिक संगठन था। जिसके पीछे अकबर का मुख्य उद्देश्य पैगम्बर बनना नहीं था बल्कि सभी धर्मों में सद्भाव और एकता स्थापित करना था। जैसा कि उसके सबसे कट्टर आलोचक बदायूनी ने भी अपनी पुस्तक में इस बात का उल्लेख किया है कि अकबर ने कभी भी दीन-ए-इलाही के सदस्य बनाने में अपने पद और शक्ति का कोई दुरूपयोग नहीं किया। जो व्यक्ति स्वेच्छा से दीन-ए-इलाही के सदस्य बने थे, उन्हें ही इसका सदस्य बनाया गया। बीरबल दीन-ए-इलाही का पहला सदस्य बना। इसके प्रथम श्रेणी के कुल 18 सदस्य बने थे। दीन-ए-इलाही अकबर के साथ ही समाप्त हो गया।

दीन-ए-इलाही के सिद्धान्त-

i. दीन-ए-इलाही के सदस्य आपस में मिलने पर एक सदस्य अल्लाहू अकबर (ईश्वर महान है) जबकि दूसरा सदस्य जिल्ले जलाल हू कहकर अभिवादन करेंगे।
ii. दीन-ए-इलाही के सदस्य जहां तक सम्भव होगा मांस का प्रयोग नहीं करे।
iii. अपने जीवनकाल में ही मृत्युभोज दे देंगे।
iv. अपने जन्म दिन पर अन्य सदस्यों को दावत देंगे।
v. अपने से बहुत अधिक आयु की स्त्री, कम आयु की लड़की से विवाह नहीं करेंगे

मुगलकालीन भू राजस्व व्यवस्था

अकबर के भू राजस्व सुधारों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का सबसे मुख्य स्रोत अबुल फजल कृत आइने अकबरी और समकालीन इतिहासकारों के फारसी ग्रन्थ है। जिनमें लाहौरी कृत बादशाहनामा, खाफी खां कृत मुन्तखब-उल-लुबाब इसके अलावा समकालीन भू-राजस्व अभिलेख जिनमें सबसे प्रमुख दस्तूर-उल-अमल को माना जाता है।

* मुगल काल में अकबर के समय से सरकारी समाचार पत्र प्रकाशित किया जाता था जिसे अखबार-ए-दरबार-ए-मुअल्ला कहा जाता था।

अकबर द्वारा सर्वप्रथम भू-राजस्व व्यवस्था में अनेक सुधार लागू करके भू-राजस्व व्यवस्था का पुनर्गठन किया गया। मुख्य सुधार इस प्रकार है-

1. 1564 में अकबर द्वारा मुजफ्फर खां तुरबाती को दीवान के पद पर नियुक्त किया गया था। मुजफ्फर खां तुरबाती का प्रमुख कार्य विभिन्न परगनो की जमा का नये सिरे से निर्धारण करना था। क्योंकि उसके पहले के समय में परगनों की जो जमा निर्धारित की गयी थी वह अतिश्योक्तिपूर्ण थी। किन्तु अब मुजफ्फर खां के द्वारा परगनो की जो नयी जमा निर्धारित की गयी थी वह वास्तविक जमा थी। मोरलैण्ड ने अपनी पुस्तक अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया में इस नई जमा को कानूनगो दर के नाम से पुकारा।

मोरलैण्ड → फ्रॉम अकबर टू औरंगजेब
③ इण्डिया एट द डेथ ऑफ अकबर

2. किरौडी प्रथा को लागू करना → अकबर द्वारा किरौडी प्रथा 1575 मे लागू की गई, जब उसने समस्त मुगल साम्राज्य को 182 डिविजन (सम्भाग) में बांट दिया और प्रत्येक सम्भाग में एक करोड दाम की आय का भू-भाग रखा गया। उसने प्रत्येक सम्भाग मे एक अधिकारी को नियुक्त किया जिसे किरौडी कहा जाता था। जिसका मुख्य कार्य अपने सम्भाग में सम्मिलित बंजर और कृषि भूमि का रिकॉर्ड रखना था। दोनो फसलो पर कितना उत्पादन हुआ है और दोनो फसलो पर सरकार को कितना भूमि कर प्राप्त हुआ है, इन सबका रिकॉर्ड रखना तथा भूमि से संबंधित मामलो को सुलझाना। अकबर द्वारा यह किरौडी प्रथा पूर्ण रूप से कृषि के उद्देश्य से लागू की गई।

3. दहसाला प्रथा को लागू करना → जिसे आईन-ए-दहसाला भी कहा जाता था इसका उल्लेख करते हुए अबुल फजल आईने अकबरी में कहता है कि अकबर द्वारा आईन-ए-दहसाला 1580 में लागू की गयी जिसके अन्तर्गत पिछले 10 वर्षों की अर्थात 1571-80 तक की भूमिकर की दरे मालूम की गयी और उनकी औसत दर निकाल कर उसी औसत दर को भविष्य में भूमि कर के रूप में लागू कर दिया गया। दहसाला प्रथा के अनुसार भूमिकर की जो दरे लागू की गई, उसमें बाद में कोई परिवर्तन नहीं ~~आना~~ किया गया। दहसाला प्रथा टोडरमल के बन्दोबस्त पर आधारित थी इसलिए दहसाला प्रथा को टोडरमल बन्दोबस्त के नाम से भी जाना जाता है।

4. भूमि कर निर्धारण के लिए तीन प्रकार की पद्धतियां लागू की गई-

i. जब्ती प्रथा- मुगलकाल में प्रचलित भूमिकर निर्धारण की एक पद्धति थी, जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम कृषि भूमि की नाप की जाती थी और उसके बाद भूमि की वास्तविक उपज के आधार पर भूमिकर का नगदी के रूप में निर्धारण किया गया। मुगल साम्राज्य के अधिकांश भागो में जब्ती प्रथा प्रचलित थी।

ii. नस्क / कनकूत → इसके अन्तर्गत भूमि की अनुमानित उपज के आधार पर भूमिकर का निर्धारण किया जाता था। यह पद्धति केवल कश्मीर प्रान्त में ही प्रचलित थी।

iii. गल्ला बख्शी → मध्यकालीन भारत में प्रचलित भू-राजस्व कर निर्धारण की पद्धति थी। जिसके अन्तर्गत सरकार द्वारा किसानो से उपज का एक निश्चित हिस्सा लगान के रूप में लिया जाता था। गल्ला बख्शी केवल राजपूत राज्यों में प्रचलित थी।

5. भूमि कर की दर- उपज का 1/3 निर्धारित किया गया। मुगल काल में भूमिकर को माल / माल वाजिब कहा जाता था।

6. अकबर द्वारा भूमिकर के अतिरिक्त किसानो पर दाहसेरी के नाम से एक कर और लागू किया गया। यह प्रति बीघा दस सेर की दर से वसूल किया जाता था।

7. अकबर द्वारा कृषि भूमि की नाप के लिए बांसो की → एक नयी जरीब तैयार करवायी गयी जिसे तनाब कहा जाता था।

8. कृषि भूमि का वर्गीकरण → अकबर द्वारा कृषि भूमि को चार भागों में विभाजित किया गया-

i. पोलज → उस भूमि को कहा जाता था, जिस पर नियमित रूप से खेती की जाती थी।

ii. परत / परौती → जिसे केवल एक वर्ष के लिए बिना जोते छोड दिया जाता था।

iii. चच्चर → जो लगातार तीन वर्षों तक बिना जोते छोड दी गयी।

iv. बंजर → जिस पर लगातार पांच वर्षों / उससे अधिक समय तक बिना जोते छोड दी जाती थी।

→ अकबर द्वारा भूमि का यह वर्गीकरण भूमि की उपज शक्ति के आधार पर नहीं किया गया बल्कि इसके पीछे अकबर का उद्देश्य

कृषि भूमि का विस्तार करना और बंजर तथा बंजर भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाया था।

जागीरो का वर्गीकरण → मुगलकाल में पांच प्रकार की जागीरे प्रचलित थी –

i. तनख्वाह जागीर → मनसबदारो। मुगल सरदारो को वेतन के बदले में दिया जाता था। तनख्वाह जागीरो को हस्तान्तरित किया जा सकता था।

ii. इनामी जागीर → जो इनाम के रूप में दी जाती थी।

iii. मदद – ए – माश (सुयुरगाल) → धार्मिक कार्यों के लिए दी जाने वाली जागीर। इनको आयमा भी कहा जाता था।

iv. वतन जागीर → राजस्थान के राजपूत राजाओ को उनकी अपनी स्वंय की रियासत का जो भू-भाग मुगल सम्राट द्वारा दिया जाता था उन्हें वतन जागीर कहा जाता था। वतन जागीरो को हस्तान्तरित नहीं किया जाता था।

v. अल तमगा जागीर → केवल जहांगीर के समय में दी गयी थी। अल तमगा जागीरें उनको कहा जाता था जिन्हें मुस्लिम सरदारो को उनके जन्म स्थान पर। नियुक्ति स्थान पर स्थायी रूप से दी जाती थी।

* अकबर द्वारा लागू की गयी यह भू-राजस्व व्यवस्था उसके उत्तराधिकारियो के समय में भी प्रचलित रही। किन्तु उसके उत्तराधिकारियो के समय में भू-राजस्व व्यवस्था में कुछ और बातें लागू की गयी –

i. जहांगीर के समय में अल तमगा जागीर दी गयी।

ii. शाहजहां के समय में उसने भूमिकर की दर उपज का 1/3 से बढ़ाकर 50% कर दिया।

शाहजहां के समय में इजारा प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इजारा प्रथा ठेकेदारी प्रथा को कहा जाता था। जब किसी भूमि का भूमिकर वसूली का कार्य किसी व्यक्ति को निश्चित धनराशि के बदले में ठेके पर दे दिया जाता था उसे ही इजारा प्रथा कहते थे।

औरंगजेब → के समय में भूमिकर की दर कुल उपज का 50% ही प्रचलित रही

औरंगजेब के समय में इजारा प्रथा का प्रचलन काफी बढ़ गया क्योंकि मुगल मनसबदारो द्वारा अपनी-2 जागीरो के भूमिकर वसूली का कार्य इजारा पर देना प्रारम्भ कर दिया और इजारेदारो द्वारा किसानो से मनमर्जी लगान वसूल किया गया। जिसके फलस्वरूप औरंगजेब के समय में किसानो का आर्थिक शोषण काफी बढ़ गया।

औरंगजेब के समय में भू-राजस्व अधिकारियों के द्वारा भी विभिन्न तरीको से किसानो का आर्थिक शोषण किया जाने लगा था। जैसे → निश्चित दर से ज्यादा लगान वसूल कर लेना, अनेक प्रकार के गैर-कानूनी करो को वसूलना, गैर-कानूनी कर – अबवाब कहलाते थे। किसानो ने कृषि कार्य करना बन्द कर दिया, खेतो को जोतने के लिए पर्याप्त मात्रा में किसान नहीं थे। कृषि भूमि बंजर भूमि में परिवर्तित होने लगी। इस प्रकार औरंगजेब के समय में कृषि संकट उत्पन्न हुआ।

मुगल कालीन केन्द्रीय व प्रान्तीय व्यवस्था

केन्द्रीय शासन व्यवस्था – सर जदुनाथ सरकार (मुगल एडमिनिस्ट्रेशन) ने मुगल राज्य के स्वरूप की विवेचना करते हुए लिखा है कि मुगल राज्य (सरकार) मूल रूप से एक फौजी सरकार थी। क्योंकि मुगलकाल में सभी उच्च अधिकारी मनसबदार कहलाते थे। प्रत्येक मनसबदार को सैनिक सेवा देना अनिवार्य होता था। मुगल राज्य का यह स्वरूप उसके अन्त तक प्रचलित रहा।

बाबर के द्वारा जो भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक था, राजत्व एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। जिसकी दो मुख्य बातें थी –

i. उसने अपने पूर्ववर्ती मुस्लिम शासको की तरह खलीफा के आधिपत्य को नहीं माना, बल्कि वह स्वंय को ही खलीफा मानता था।

ii. बाबर द्वारा अपने पहले के मुस्लिम शासको की सुल्तान की उपाधि धारण न करके बादशाह की उपाधि धारण की। बाबर द्वारा लागू की गई इन दोनो बातों को उसके उत्तराधिकारियों द्वारा भी अनुसरण किया गया।

मुगलकाल में सम्राट / बादशाह ही राज्य का सर्वोच्च अध्यक्ष होता था तथा शासन की समस्त शक्तियां मुगल सम्राट में निहित होती थी। इसके साथ ही मुगल सम्राट ही सेना का मुख्य सेनापति होता था।

केन्द्रीय मन्त्रीपरिषद - प्रशासन में सहयोग के लिए कुछ मन्त्रियों को नियुक्त किया गया, जो इस प्रकार है-

I. वकील (वकील-ए-मुतलक) → प्रधानमन्त्री को कहा जाता था। मुगल सम्राट के बाद मुगल साम्राज्य में वकील का पद ही सबसे महत्वपूर्ण होता था। किन्तु मुगलकाल में वकील का पद स्थायी नहीं रहा। क्योंकि बाद में शाहजहाँ के द्वारा वकील के पद को समाप्त करके उसकी जगह वजीर की नियुक्ति की गई।

II. मीर बख्शी → केन्द्रीय सैनिक विभाग का अध्यक्ष होता था। मुख्य कार्य → सेना में अनुशासन को बनाये रखना, सेना के लिए आवश्यक हथियारों और रसद आदि की व्यवस्था करना, समय-2 पर सभी मनसबदारों की सैनिक टुकड़ियों की जांच करना। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा मीर बख्शी को पे-मास्टर जनरल के नाम से पुकारा गया। क्योंकि सभी मुगल मनसबदारों के वेतन बिल मीर बख्शी के विभाग के द्वारा ही तैयार किए जाते थे।

III. दीवान - वित्त विभाग का अध्यक्ष। दीवान का पद सर्वप्रथम अकबर के द्वारा सृजित किया गया। मुख्य कार्य → भू-राजस्व से संबंधित नियम बनाना, दीवान ही शाही खजाने का अध्यक्ष होता था।

IV. खानसामा (मीर सामां) → शाही परिवार से संबंधित विभाग का अध्यक्ष। मुख्य कार्य - सम्राट की व्यक्तिगत सुरक्षा, शाही महल की सुरक्षा की व्यवस्था करना। मुगल सम्राट और उसके परिवार के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं की व्यवस्था करना। जैसे- आभूषण, वस्त्र आदि। खानेसामा शाही भोजनालय का अध्यक्ष भी था। इसलिए इस पद पर मुगल सम्राटों द्वारा अपने अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति को नियुक्त किया जाता था। इसलिए खानेसामा के पद के महत्व को देखते हुए जहांगीर द्वारा उसे मन्त्री का दर्जा दिया गया था।

V. सद्र-उस-सुदूर → धर्म एवं दान विभाग। अध्यक्ष → सद्रे जहां। मुख्य कार्य → धार्मिक मामलों में सम्राट को सलाह देना तथा मुगल सम्राट द्वारा दान में दी जाने वाली धनराशि और साथ में दी जाने वाली भूमि को लोगों में ~~किसी~~ वितरित करना था।

VI. काजी-उल-कुजात (काजी-ए-ममालिक) मुख्य न्यायाधीश। विभाग - दीवाने कजा। मुख्य कार्य → प्रान्तीय न्यायाधीशों के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनना, इसके साथ ही सभी महत्वपूर्ण मुकदमें उसी के द्वारा सुने जाते थे। सभी प्रान्तीय न्यायाधीशों और जिले के न्यायाधीशों की नियुक्ति मुगल सम्राट द्वारा उसी की सलाह पर की जाती थी।

इन छः मन्त्रियों के अलावा मीरे-बहर और मीरे आतिश इन्हें भी उत्तर मुगल काल में मन्त्री का दर्जा दिया गया।

मीरे-बहर - नौसेना का अध्यक्ष
मीरे-आतिश - तोपखाने का अध्यक्ष

प्रान्तीय शासन व्यवस्था - मुगलकाल में प्रान्त को सूबा कहते थे और सर्वप्रथम अकबर द्वारा 1580 में मुगल साम्राज्य को 12 प्रान्तों में विभाजित किया गया-

I. काबुल	II. पंजाब	III. मुल्तान
IV. दिल्ली	V. आगरा	VI. अवध
VII. इलाहाबाद	VIII. बिहार	IX. बंगाल
X. गुजरात	XI. मालवा	XII. अजमेर

किन्तु जब 1600 ई. में अकबर द्वारा दक्षिण भारत में स्थित

खानदेश राज्य और अहमदनगर राज्य का आधा भाग जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया। तब उसके द्वारा दक्षिण भारत में 3 नये राज्यों बना दिए गए-

XIII. खानदेश XIV. अहमदनगर XV. बरार

किन्तु शाहजहां के समय में प्रान्तो की संख्या बढ़कर 19 हो गयी। 4 नये प्रान्तों का गठन किया-

XVI. उड़ीसा (बंगाल का विभाजन करके) XVII. कश्मीर (काबुल का विभाजन करके)
XVIII. सिन्ध (मुल्तान का विभाजन करके) XIX. बीदर → 1636 में जब शाहजहां के अहमदनगर का शेष भाग जीतकर मुगल साम्राज्य में मिलाया गया तब उसने दक्षिण में बीदर का नया प्रान्त बनाया।

औरंगजेब द्वारा दक्षिणी भारत के दो राज्यो को जीतकर साम्राज्य में मिलाया तो से दो नये प्रान्त बनाये गये-

XX. बीजापुर XXI. गोलकुण्डा

* अकबर द्वारा शासन चलाने के लिए प्रत्येक प्रान्त में मुख्य रूप से दो अधिकारियो की नियुक्ति
1. सूबेदार → (नाजिम / सिपहसालार) प्रान्त का अध्यक्ष कार्य → शांति व्यवस्था बनाए रखना
II. दीवान → प्रान्त के भू-राजस्व, वित्त विभाग का अध्यक्ष। अकबर द्वारा प्रान्तीय शासन व्यवस्था में नियंत्रण एवं सन्तुलन का सिद्धान्त लागू किया गया। जिसके अन्तर्गत प्रान्तीय दीवान को सूबेदार का अधीनस्थ न बनाकर स्वतन्त्र अधिकारी बनाया। इन दोनो द्वारा एक-दूसरे के कार्यों के बारे में समय-2 पर गुप्त रिपोर्ट सम्राट को भेजनी पड़ती थी। इन दोनों के अतिरिक्त प्रान्त में तीन अधिकारी और होते थे-
III. बख्शी - प्रान्त के सैनिक विभाग का अध्यक्ष
IV. सद्र → प्रान्त के धर्म एवं दान विभाग का अध्यक्ष
V. काजी - प्रान्तीय न्यायाधीश

जिला (सरकार) → अकबर द्वारा प्रान्त को अनेक जिलो में विभाजित किया गया। प्रत्येक जिले में दो अधिकारी नियुक्त किए गए-
1. फौजदार - सैनिक अधिकारी, जिले का अध्यक्ष। कार्य → जिले में शांति व्यवस्था बनाए
II. अमलगुजार - भू-राजस्व संबंधी कार्य देखता था।

* परगना → जिले को कुछ परगनो में विभाजित किया गया। प्रत्येक परगने में अधिकारी नियुक्त किए गए-

1. शिकदार - परगने का अध्यक्ष। कार्य - शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना।
II. आमिल - भू-राजस्व अधिकारी। भू-राजस्व व्यवस्था का आधार स्तम्भ कार्य → कृषि भूमि की नाप करवाना, कर निर्धारण, कर वसूली, भूमि झगड़ो को सुलझाना, भूमि कर में छूट व ऋण देना। अमीन आमिल का सहायक होता था शाहजहां ने उसे स्वतन्त्र अधिकारी बना दिया। कार्य भूमि की नाप, कर का निर्धारण
III. खजांची (फोतेदार) → परगने के खजाने का अध्यक्ष।
IV. बितिकची → प्रत्येक परगने में दो। क्लर्क। लिपिक। कार्य → फारसी भाषा में अपने परगने के राजस्व रिकॉर्ड को लिपिबद्ध करना। अकबर द्वारा फारसी को राजभाषा घोषित किया गया।

इसके अतिरिक्त परगनेमें एक कानूनगो जो अर्द्ध सरकारी अधिकारी था। पद वंशानुगत होता था। परगने के राजस्व रिकॉर्ड रखना, इस कार्य के बदले में उसे वेतन के रूप में परगने के भूमिकर का एक प्रतिशत दिया जाता था। किन्तु बाद में अकबर ने उसका वेतन 100 रू वार्षिक निर्धारित किया।

गांव (मौजा - अरबी भाषा में) → प्रत्येक गांव में दो अधिकारी नियुक्त थे-
1. मुकद्दम → गांव का मुखिया
II. पटवारी → गांव के भू-राजस्व का रिकॉर्ड रखना

मुगलकालीन मनसबदारी प्रथा

अकबर द्वारा 1567 में लागू की गयी सैन्य व्यवस्था को ही मनसबदारी प्रथा के नाम से जाना जाता है। मनसबदारी प्रथा को कुछ इतिहासकार मंगोल सैन्य व्यवस्था पर आधारित मानते हैं किन्तु यह मत पूरी तरह उचित नहीं है। यद्यपि मनसबदारी प्रथा और मंगोल सैन्य व्यवस्था दोनो दशमलव पद्धति पर आधारित थी। इनमें मुख्य अन्तर यह था कि मंगोल सैन्य व्यवस्था में छोटा अधिकारी बड़े अधिकारी के अधीनस्थ होता था किन्तु मनसबदारी प्रथा में छोटे और बड़े सभी मनसबदार सीधे मुगल सम्राट के अधीनस्थ होते थे।

मनसब शब्द का अर्थ → मनसब से अभिप्राय किसी पद से नहीं था बल्कि मनसब का मतलब श्रेणी (RANK) होता था। मनसब से यह इंगित होता था कि मनसबदार द्वारा सैनिक सेवा के लिए कुल कितने घुड़सवार रखे जायें।

* अकबर द्वारा जब मनसबदारी प्रथा प्रारम्भ की गई तो सबसे छोटी मनसब 10 घुड़सवारो की, सबसे बड़ी मनसब 5000 घुड़सवारों की होती थी। किन्तु बाद में अकबर ने छोटी मनसब 10 से 20 तथा बड़ी मनसब को 5000 से 7000 कर दिया।
* अकबर के समय 7000 की मनसब दो व्यक्तियो के पास थी - 1. मानसिंह
II. मिर्जा अजीज कोका

* किन्तु पूरे मुगलकाल में सर्वोच्च मनसब 9000 थी जिसे शाहजहां ने अपने ससुर आसफ खां को दी गयी।
* मनसबदारो की नियुक्ति सामान्यतः मुगल सम्राट के द्वारा ही की जाती थी। नियुक्ति का मुख्य आधार → योग्यता का था। कम से कम 1000 के ऊपर की मनसबें उन्हीं व्यक्तियो को दी जाती थी जो अच्छे प्रशासक / सेनानायक माने जाते थे। प्रत्येक मनसबदार को अपनी मनसब के बराबर घुड़सवार रखने पड़ते थे। मनसबदार द्वारा ही अपने घुड़सवारो की नियुक्ति की जाती थी। घुड़सवारो को दाखिली कहा जाता था। मनसबदार ही उन्हें वेतन देता था। किन्तु सम्राट द्वारा मनसबदार तथा घुड़सवारो का वेतन मनसबदार को दिया जाता था। मनसबदार का वेतन खासा, घुड़सवार का वेतन तावीनान कहलाता था।
* मनसबदारो को वेतन नकद न देकर जागीर दी जाती थी जिन्हे तनख्वाह जागीर कहते थे।
* सभी मनसबदारो के वेतन से 10% से 25% कटौती की जाती थी। अधिकतम 25% औरंगजेब के समय दक्खिनी (दक्षिण) मनसबदारो के वेतन से की जाती थी।

imp. * अकबर द्वारा मनसबदारो की 66 रैंक बनायी गयी किन्तु वास्तव में 33 रैंक प्रचलित थी।
* अकबर द्वारा मनसबदारो की तीन श्रेणियां बनायी गई - I. 10 से 400 तक मनसबदार - मनसबदार, II. 500 - 2500 तक उमरा, III. 3000 से अधिक या उससे ऊपर वाले उमरा-ए-आजम / उम्दातुल-मुल्क कहा जाता था
* अकबर द्वारा जात और सवार दो रैंक देना प्रारम्भ किया गया तब उसके द्वारा मनसबदारो की तीन श्रेणियां बना दी गयी - I. प्रथम श्रेणी → जात और सवार रैंक बराबर (5000 ...)
II. द्वितीय श्रेणी → सवार रैंक, जात रैंक की आधी / अधिक (5000 जात 3000 सवार)
III. तृतीय श्रेणी → सवार रैंक, जात रैंक की आधी से कम (5000 जात 2000 सवार)

जात एवं सवार → प्रारम्भ में जब अकबर द्वारा मनसबदारी व्यवस्था शुरू की गई तब सभी मनसबदारो को केवल एक रैंक दी जाती थी जैसे पांच हजारी, चार हजारी किन्तु बाद में अकबर के द्वारा सभी मनसबदारो को जात एवं सवार दो रैंक देना प्रारम्भ किया जैसे 5000 जात, 5000 सवार। बदायूंनी द्वारा इसका यह कारण बताया गया कि कुछ मनसबदार अपनी मनसब के बराबर घुड़सवार नहीं रखते थे। इसलिए इस दोष को दूर करने के लिए अकबर ने जात, सवार रैंक देना प्रारम्भ किया। जहां तक जात, सवार के अर्थ का प्रश्न है, इसकी विभिन्न इतिहासकारो ने अलग-2 व्याख्या की है, किन्तु उनमें मोरलैण्ड की व्याख्या अधिक सही मानते हैं। मोरलैण्ड के अनुसार जात रैंक का अभिप्राय था - उस मनसबदार की व्यक्तिगत रैंक क्या होगी और उसे कितना वेतन मिलेगा जबकि सवार रैंक का अभिप्राय - उसके द्वारा सैनिक सेवा के लिए कितने घुड़सवार रखे जायें।

Date 22/4/14

अकबर द्वारा गठित की गयी मनसबदारी प्रथा उसके उत्तराधिकारियो के समय में भी प्रचलित रही। किन्तु उसके उत्तराधिकारियो के समय में मनसबदारी प्रथा में कुछ और नये नियमो का समावेश हुआ। जिनमें चार बातें प्रमुख थीं -

दुअस्पा सिंह अस्पा का नया नियम मनसबदारी प्रथा में जहांगीर के समय में लागू किया गया। इसका वास्तविक अर्थ दुगुने घुड़सवार से होता था। दुअस्पा सिंहअस्पा मनसबदार की सवार रैंक में जोड़ा जाता था। जब मनसबदार की सवार रैंक को दुअस्पा सिंहअस्पा कर देते थे तब उस मनसबदार द्वारा अपनी सवार रैंक का दुगुने घुड़सवार रखना पड़ता था।

1/3 एवं 1/4 का नियम - मनसबदारी प्रथा में यह नियम शाहजहां के समय में लागू किया गया। इसका उल्लेख करते हुए लाहौरी ने अपने बादशाहनामा में लिखा है कि ऐसे मनसबदार जिनकी नियुक्ति किसी एक प्रान्त में की जाती थी और उसी प्रान्त में उसे जागीर दी जाती थी। वह अपनी सवार रैंक का 1/3 घुड़सवार रखता था। किन्तु ऐसे मनसबदार जिनकी नियुक्ति किसी एक प्रान्त में की जाती थी और उसे जागीर दूसरे प्रान्त में दी जाती थी वह अपनी सवार रैंक का 1/4 घुड़सवार रखेगा।

Month scale का नया नियम मनसबदारी प्रथा में शाहजहां के समय में लागू हुआ। इसके अन्तर्गत अब शाहजहां द्वारा मनसबदारो के वेतन का नये सिरे से पुनर्निर्धारण किया गया। जिसके अनुसार अब किसी भी मनसबदार को पूरे 12 महीने का वेतन न देकर किसी को 8 महीने, किसी को 6, किसी को 4 महीने का वेतन दिया गया। इसका कारण प्रो॰ अतहर अली इन औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग में यह बताया है कि शाहजहां के समय में जमा और हासिल में बहुत अधिक अन्तर आ गया था।

मशरूत का नया नियम मनसबदारी प्रथा में औरंगजेब के समय में लागू हुआ। इसका यह अभिप्राय था कि जब किसी मनसबदार को किसी नये पद पर नियुक्त किया जाता था और यह महसूस किया जाता था कि उस नये पद का उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए उसे अपनी सवार रैंक से अधिक घुड़सवारों की जरूरत है तब उसकी सवार रैंक में ~~वृद्धि~~ अस्थायी वृद्धि कर दी जाती थी उसे ही मशरूत कहा जाता था। किन्तु जब उसे उस पद से हटा दिया जाता था तब उसकी सवार रैंक में की गयी वृद्धि को रद्द कर दिया जाता था।

मनसबदारी प्रथा के दोष-

i. कुछ मनसबदार अपनी मनसब के बराबर घुड़सवार नहीं रखते थे।

ii. मनसबदार के द्वारा ही अपने घुड़सवारों की नियुक्ति की जाती थी और वही वेतन देता था। इसलिए मनसबदार के घुड़सवारों की स्वामी भक्ति मुगल सम्राट के प्रति न होकर मनसबदार के प्रति होती थी।

iii. शाहजहां के समय तक मनसबदारों की नियुक्ति बहुत सीमित मात्रा में की गयी किन्तु औरंगजेब के समय में मनसबदारों की नियुक्ति इतनी अधिक मात्रा में कर दी गयी थी कि सारी जागीर भूमि समाप्त हो गयी थी और अब नवनियुक्त मनसबदारों को देने के लिए सम्राट (पैबाकी) के पास कोई जागीर भूमि (पैबाकी) नहीं बची। इसे ही जागीरदारी संकट के नाम से जानते हैं। यह मनसबदारों में असन्तोष का एक मुख्य कारण बना। प्रो॰ इरफान हबीब ने ~~इस~~ अग्रेरियन सिस्टम अण्डर द मुगल्स में जागीरदारी संकट को मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण माना।

पैबाकी - जो भूमि जागीर भूमि के लिए निर्धारित की गयी किन्तु जिसे जागीर में नहीं लिया गया था।

मुगल कालीन स्थापत्य कला

लगभग सभी मुगल बादशाहों की इमारतों के निर्माण में विशेष रूचि थी इसलिए मुगल काल में स्थापत्य कला के क्षेत्र में काफी विकास हुआ। उदाहरण के लिए जैसा कि बाबर ने स्वंय अपनी आत्मकथा बाबरनामा में लिखा है कि उसके द्वारा आगरा, दिल्ली, बयाना, धौलपुर में अनेक इमारतों का निर्माण करवाया गया। किन्तु उनमें से अब केवल दो मस्जिदें उपलब्ध हैं-

i. सम्भल (UP) में स्थित जामा मस्जिद

ii. पानीपत के काबुली बाग में स्थित बादशाही मस्जिद

बाबर का मुगल स्थापत्य कला को सबसे प्रमुख और स्थायी योगदान चार बाग पद्धति को लागू करना था। यह ईरानी स्थापत्य कला का एक मुख्य अंग था। मुगल के मकबरों का निर्माण चारबाग पद्धति से निर्मित है।

* हुमायूं द्वारा निर्मित इमारतों में सबसे प्रमुख दीन-पनाह को माना जाता है। दीन-पनाह महलनुमा किला था जिसका निर्माण दिल्ली में करवाया।

* मुगल स्थापत्य कला का वास्तविक विकास अकबर के समय से प्रारम्भ हुआ।
* अकबर का मुगल स्थापत्य कला को सबसे बड़ा योगदान स्थापत्य कला की ईरानी पद्धति और भारतीय पद्धति को मिलाकर एक नयी शैली का विकास करना था, जिसे इतिहासकारों द्वारा हिन्दु-मुस्लिम शैली के नाम से सम्बोधित किया गया। बाद में अकबर तथा उसके बाद के सभी मुगल सम्राटों के समय में सभी इमारतों का निर्माण इस मिश्रित शैली पर ही किया गया।
* अकबर के समय में निर्मित पहली इमारत हुमायूं का मकबरा माना जाता है जिसका निर्माण दिल्ली में अकबर की सौतेली मां हाजी बेगम के द्वारा करवाया गया। इसका डिजाइन ईरानी शिल्पकार मीरक मिर्जा गयास द्वारा तैयार किया गया। इसकी दो मुख्य विशेषताएं थी -

i. मुगलकाल में अकबर के समय निर्मित पहली ऐसी इमारत है जिसे हिन्दु मुस्लिम शैली पर बनाया गया

ii. यह एकमात्र मुगल मकबरा था जिसमें दोहरे गुम्बद का प्रयोग किया

* अकबर द्वारा अनेक किलों का निर्माण करवाया गया जिनमें आगरा का किला और लाहौर का किला अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इन दोनों किलों का डिजायन कासिम खां द्वारा तैयार किया गया। दोनों किले एक ही डिजायन पर बनाये गये और दोनों एक साथ 1565-1580 की अवधि में बने। दोनों में लाल पत्थर का प्रयोग किया गया।
* इसके अलावा अकबर ने इलाहाबाद का किला और अटक (पंजाब) का किला भी महत्वपूर्ण माने जाते थे।
* अकबर द्वारा 1569 में फतेहपुर सीकरी को बनाया। उसने 1569-1585 तक आगरा की जगह इसको राजधानी बनाया।
* सबसे प्रमुख इमारत फतेहपुर सीकरी के महल माने जाते हैं। जिनमें पांच महल अधिक महत्वपूर्ण थे-

i. पंचमहल ii. तुर्की सुल्ताना का महल iii. बीरबल का महल
iv. जोधा बाई का महल v. मरियम का महल

* अन्य प्रमुख इमारत - बुलन्द दरवाजा - इसका निर्माण अकबर ने 1572 में अपनी गुजरात विजय के उपलक्ष्य में करवाया। यह विश्व का सबसे ऊंचा दरवाजा माना जाता है। जमीन से इसकी ऊंचाई 176 फीट जबकि फर्श से 134 फीट।

* जहांगीर के समय में निर्मित दो ईमारते कुछ हद तक स्थापत्य कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती हैं –

I. अकबर का मकबरा → सिकन्दरा (आगरा), डिजाइन - स्वयं अकबर द्वारा अपने जीवनकाल में तैयार किया। किन्तु बाद में इसका निर्माण जहांगीर द्वारा 1605-1613 की अवधि में बनवाया गया इसकी दो मुख्य विशेषताएं हैं - 1. पहला मुगल मकबरा था जिस पर गुम्बद का निर्माण नहीं करवाया गया। यह पांच मंजिल का है। हिन्दु मुस्लिम शैली की तुलना में बौद्ध शैली के काफी नजदीक है।

II. एतमादुद्दौला का मकबरा → एत्मादुद्दौला नूरजहां के पिता थे। यह आगरा में स्थित है। इसका निर्माण नूरजहां बेगम के द्वारा 1626 में करवाया गया। यह पहली मुगल ईमारत थी जो पूर्णतः सफेद संगमरमर का बना था। इसमें नूरजहां द्वारा पहली बार पेट्रा (पित्राड्रा) ड्यूरा शैली का प्रयोग किया गया।

* शाहजहां - मुगलकाल में स्थापत्य कला सर्वाधिक विकास शाहजहां के समय में हुआ इसलिए शाहजहां के काल को मुगल स्थापत्य कला का स्वर्ण काल माना जाता है। उदाहरण के लिए शाहजहां द्वारा सर्वप्रथम आगरा के किले में कुछ नयी ईमारतो का निर्माण करवाया गया। जिसमें - दीवाने- आम, दीवाने खास, मोती मस्जिद, मुसम्मन बुर्ज प्रमुख है।

* शाहजहां द्वारा 1638 में दिल्ली के पास शाहजहांबाद के नाम से नया नगर बसाया गया। 1638 में ही दिल्ली में लाल किले का निर्माण करवाया। लाल किले का डिजायन हमीद अहमद ने तैयार किया। लाल किले में शाहजहां द्वारा निर्मित सबसे प्रमुख - दीवाने- आम, दीवाने खास, हीरा महल, रंगमहल दीवाने खास की दीवारो पर शाहजहां ने यह वाक्य लिखवाया कि अगर पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है।

* शाहजहां द्वारा 1644 में दिल्ली में जामा मस्जिद बनवायी।

* मयूर सिंहासन का डिजायन ईरानी शिल्पकार बेबादल खाँ द्वारा शाहजहां द्वारा ~~लाहौरी~~ लाहौरी के अनुसार इसके निर्माण पर एक करोड़ रू खर्च किए और इसी में कोहिनूर हीरा लगवाया गया।

ताजमहल- शाहजहां द्वारा निर्मित सबसे प्रमुख ईमारत है। जिसका निर्माण आगरा में अपनी पत्नी मुमताज बेगम की स्मृति में करवाया गया। इसके निर्माण में 1631-1653 तक कुल 22 वर्ष लगे। डिजायन - उस्ताद ईसा खाँ यह पूर्णतः सफेद संगमरमर का बना है। यह एकमात्र ऐसा मुस्लिम मकबरा है जिसका गुम्बद अण्डाकार रूप में बना है। इसके चारो कोनो पर जो मीनारे बनी है वो थोड़ी बाहर की तरफ झुकी हुई बनी है।

औरंगजेब के समय में निर्मित तीन ईमारते स्थापत्य कला की दृष्टि से कुछ हद तक महत्वपूर्ण मानी जाती हैं -

बादशाही मस्जिद (लाहौर) - 1674 में निर्माण करवाया।

रबिया उद् दौरानी का मकबरा → रबिया औरंगजेब की पत्नी थी और यह मकबरा औरंगजेब द्वारा औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में 1679 में निर्मित करवाया इसे भारत का दूसरा ताजमहल। दक्षिण का ताजमहल के नाम से जाना जाता है। क्योंकि इसे ताजमहल की डिजायन पर ही बनाया गया। इसे बीबी का मकबरा भी कहते हैं।

दिल्ली के लाल किले में मोती मस्जिद का निर्माण करवाया

मुगलकालीन चित्रकला

यद्यपि ~~कुरान~~ इस्लाम में चित्र बनाना वर्जित है। किन्तु मुगल सम्राटो द्वारा ईरानी परम्परा का अनुसरण करते हुए अपने दरबार में चित्रकारो को जो राजकीय संरक्षण प्रदान किया गया उसके फलस्वरूप मुगल काल में चित्रकला के क्षेत्र में भी काफी विकास हुआ। उदाहरण के लिए हुमायूं ने ईरान में अपने निवास के दौरान ईरानी चित्रकला का बहुत बारीकी अध्ययन किया और भारत लौटते समय वह दो ईरानी चित्रकारो को अपने साथ भारत लाया - I. ~~अब्दुस समद~~ अब्दुस्समद II. मीर सैयद अली। जिनका बाद में अकबर के समय में चित्रकला के विकास में मुख्य योगदान रहा था।

* मुगल काल में चित्रकला का वास्तविक विकास अकबर के समय से प्रारम्भ हुआ और अबुल फजल द्वारा अकबर के दरबार में रहने वाले प्रमुख चित्रकारो की संख्या 17 बतायी गयी है, जिनमें से 4 चित्रकार अधिक प्रख्यात थे - I. अब्दुस्समद II. मीर सैयद अली III. दसवन्त IV. बसावन। इनमें भी अकबर अब्दुस्समद से अधिक प्रभावित था इसीलिए उसने अब्दुस्समद को शीरी कलम की उपाधि दी गयी।

* अकबर द्वारा सर्वप्रथम अब्दुस्समद के नेतृत्व में आगरा में एक चित्रशाला स्थापित की गई। और उसने भारत के विभिन्न भागो से चित्रकारो को बुलाकर अब्दुस्समद के नेतृत्व में नियुक्त किया। जिन्हें अब्दुस्समद द्वारा ईरानी चित्रकला का प्रशिक्षण दिया गया।

अकबर के समय में मुख्य रूप से तीन प्रकार के चित्र बनाए गए-
1. [illegible] (अमीर) - मीर हम्ज़ा के जीवन से संबंधित 1400 चित्र बनाए
2. विभिन्न ग्रन्थों के अनुवाद - अकबर के आदेश पर मीर सैय्यद अली द्वारा हम्ज़ानामा में चित्र
3. भित्ति चित्र - अकबर के समय में निर्मित फतेहपुर सीकरी के भित्ति चित्र अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

* जहांगीर - मुगल काल में चित्रकला का सर्वाधिक विकास जहांगीर के समय में हुआ इसलिए जहांगीर के काल को मुगल चित्रकला का स्वर्ण काल कहा जाता है। जहांगीर स्वयं कुशल चित्रकार था। उसकी चित्रकला में उसकी दक्षता की प्रशंसा अंग्रेज यात्री सर टॉमस रो के द्वारा भी यात्रा वृत्तान्त में की गई।
* जहांगीर के समय के चित्रकारों में पांच चित्रकार अत्यन्त महत्वपूर्ण थे-
i. अबुल हसन ii. उस्ताद मंसूर iii. फर्रुख बेग
iv. बिशनदास v. मनोहर

किन्तु इनमें भी जहांगीर अबुल हसन और उस्ताद मंसूर से अधिक प्रभावित था। इसीलिए उसने ~~अबुल मंसूर~~ (अबुल हसन) को नादिर-उल-जमा की और उस्ताद मंसूर को नादिर-अल-असर की उपाधि दी।
* जहांगीर के समय में मुख्य रूप से तीन प्रकार के चित्र बने-
i. पशु पक्षियों के चित्र - इनको बनाने में उस्ताद मंसूर को दक्ष मानते थे।
ii. व्यक्ति चित्र - अकबर के शासनकाल की भांति जहांगीर के समय में भी बड़ी संख्या में व्यक्ति चित्र बनाए गए। व्यक्ति चित्र बनाने में बिशनदास और मनोहर को दक्षता प्राप्त थी। यहां तक कि जहांगीर के आदेश पर बिशनदास ने ईरान जाकर ईरान के सम्राट शाह अब्बास I और उसके परिवार के सदस्यों के बड़ी संख्या में व्यक्ति चित्र बनाकर भारत लाया।
iii. जहांगीर के आदेश पर बड़ी संख्या में प्राकृतिक दृश्यों के, दरबारी दृश्यों, शिकार दृश्यों के लघु चित्र बनाए गए। इन चित्रों को बनाने में अबुल हसन और फर्रुख बेग दक्ष माने जाते थे। अबुल हसन द्वारा जहांगीर के राज्याभिषेक का जो चित्र बनाया गया वह उसका सर्वश्रेष्ठ चित्र था, जिसे जहांगीर द्वारा अपनी आत्मकथा जहांगीरनामा के मुखपृष्ठ पर लगवाया था।
* जहांगीर के समय में मुगल चित्रकला पर यूरोपीय चित्रकला का प्रभाव पड़ा। यूरोपीय चित्रकला का अनुसरण करते हुए जहांगीर के समय के चित्रकारों द्वारा बड़ी संख्या में ईसाई धर्म से संबंधित चित्र बनाए गए। इसके अतिरिक्त चित्रकारों ने यूरोपीय चित्रकला का अनुसरण करते हुए चित्रों में हल्के रंगों का प्रयोग किया गया।

* मुगलकाल में जहांगीर के समय में अनेक [illegible] चित्र बनाए गए जैसे - जहांगीर द्वारा विश्व के बादशाहों की मीटिंग की अध्यक्षता का चित्र, जहांगीर और ईरान के सम्राट शाह अब्बास I को गले मिलते हुए चित्र

मुगल कालीन संगीत कला

मुगलकाल में संगीत कला का सर्वाधिक विकास अकबर के समय में हुआ। अबुल फजल ने आइने अकबरी में अकबर के समय के प्रमुख संगीतकारों की संख्या 36 बताई है। जिनमें से चार संगीतकार अधिक प्रसिद्ध थे।
1. तानसेन ii. बाज बहादुर iii. लाल कलावन्त iv. बाबा रामदास
* इनमें भी तानसेन सर्वाधिक प्रसिद्ध था। तानसेन मूलतः ग्वालियर का निवासी था। इनका प्रारम्भिक नाम रामतनु पाण्डे था। तानसेन ने ग्वालियर के महाराजा मानसिंह तोमर के द्वारा निर्मित संगीतशाला में संगीत का प्रशिक्षण प्राप्त किया। किन्तु बाद में वह रीवा के शासक रामचन्द्र भट्ट के द्वारा अपना दरबारी संगीतकार नियुक्त किया गया। बाद में तानसेन की ख्याति सुनकर अकबर ने उसे रीवा से बुलाकर अपना दरबारी संगीतकार नियुक्त किया। उसने तानसेन को कण्ठाभरणवाणी विलास की उपाधि दी। वह अकबर के नवरत्नों में एक गिना जाता था।
* बाज बहादुर मालवा का सुल्तान था, कुशल संगीतकार था। किन्तु जब अकबर द्वारा 1562 में मालवा पर अधिकार कर लिया गया तब ~~[illegible]~~ बाज बहादुर अकबर के दरबार में रहने लगा और उसे 1000 की मनसबदारी दी गई।
* अकबर के बाद शाहजहां के समय में भी संगीतकला के क्षेत्र में भी काफी विकास हुआ क्योंकि शाहजहां की संगीत कला में गहरी रूचि थी और वह ध्रुपद राग का बहुत अच्छा गायक था।
शाहजहां के समय के कुशल संगीतकारों में लाल खां, पण्डित जगन्नाथ, दुरंग खां, सुखसेन (सुरसेन) थे। लाल खां ध्रुपद राग का विशेषज्ञ था। शाहजहां द्वारा लाल खां को गुण समुद्र की उपाधि दी गयी।
पण्डित जगन्नाथ संस्कृत के महान विद्वान होने के साथ-साथ संगीत के विशेषज्ञ थे और इनके द्वारा संगीत कला पर संस्कृत भाषा में दो ग्रन्थों की रचना की गई-
1. रसगंगाधर ii. गंगालहरी

मुगलकालीन साहित्य

~~अकबर~~ अनुवादित ग्रन्थ (फारसी साहित्य का विकास) –

जब अकबर द्वारा फारसी को राजभाषा घोषित किया गया था तब अकबर ने संस्कृत, अरबी और तुर्की के कुछ प्रमुख ग्रन्थो का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया गया –

1. महाभारत – अब्दुल कादिर बदायूनी, नकीब खां, शेख सुल्तान
   फारसी नाम → रज्मनामा
2. वाल्मिकी कृत रामायण – बदायूनी, नकीब खां, शेख सुल्तान
   फारसी नाम – रामायण
3. विष्णु शर्मा रचित पंचतंत्र – अबुल फजल
   फारसीनाम – अनवर-ए-सुहैल
   अरबी भाषा में अनुवाद – अब्दुला इब्नुल मुकफ्फा
   अरबी नाम → कलिला वा दिमना
4. कल्हण रचित राजतरंगिणी – मुल्ला शाह मोहम्मद
5. ~~फैजी कृत~~ भास्कराचार्य कृत लीलावती – फैजी (गणित पर लिखा ग्रन्थ)
6. नल दमयन्ती की कथा – फैजी

* तारीखे अल्फी – अकबर के आदेश पर फारसी भाषा में नकीब खां, जफर बेग, मुल्ला मुहम्मद ने रचना की। इसमें पिछले 1000 वर्षो का इस्लाम का इतिहास लिखा गया।

हिन्दी साहित्य का विकास – मुगल काल में हिन्दी भाषा में सर्वाधिक साहित्य की रचना अकबर के समय में हुयी। सूरदास, तुलसीदास, रसखान, अब्दुल रहीम खानेखाना हिन्दी के चार महान् कवि थे।

सूरदास के द्वारा सूरसागर की रचना और तुलसीदास द्वारा रामचरितमानस की रचना अकबर के समय में की गई।

रसखान द्वारा प्रेमवाटिका की रचना की गयी।

अब्दुर्रहीम खानेखाना द्वारा रहीम के नाम से हिन्दी में दोहे लिखे गये

जहांगीर के समय में हिन्दी भाषा के सबसे प्रमुख कवि केशवदास थे। यद्यपि बुन्देलखण्ड के शासक वीरसिंह देव बुन्देला के दरबारी कवि थे किन्तु वह अधिक समय जहांगीर के दरबार में रहते थे। केशवदास द्वारा चार ग्रन्थो महत्वपूर्ण मा रचित

i. जहांगीर चन्द्रिका iii. वीरसिंह देव चरित्र
ii. कवि प्रिया iv. अलंकार मंजरी

शाहजहां के समय में हिन्दी भाषा अकबर के शासनकाल की भांति हिन्दी भाषा के अनेक विद्वान हुए। जिनमें सुन्दर कविराय, कवीन्द्र आचार्य, सेनापति, मतिराम और चिंतामणि मुख्य माने जाते है।

सुन्दरकविराय – सुन्दर श्रृंगार
कविन्द्र आचार्य – कविन्द्र कल्पतरू
सेनापति – कवित्त रत्नाकर

बिहारी – यद्यपि आमेर के शासक मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे और उन्होने शाहजहां के समय में बिहारी सतसई की रचना की।

अकबर के नवरत्न

i. अबुल फजल
ii. फैजी – अबुल फजल का बड़ा भाई, फारसी का महान् कवि था। इसके नेतृत्व में अकबर ने अनुवाद विभाग तथा उसका अध्यक्ष बनाया
iii. मिर्जा अजीज कोका – अकबर की दूसरी धाय जीजी अनगा का पुत्र था 7000 का मनसबदार, कुशल सेनानायक था।
iv. अब्दुर्रहीमखानेखाना – बैराम खां का पुत्र था। कुशल राजनीतिज्ञ, सेनानायक था। जहांगीर का राजनीतिक गुरु था। ~~सब~~ फारसी, तुर्की के साथ-2 हिन्दी भाषा का भी प्रमुख विद्वान था।
v. मानसिंह – आमेर के शासक, 7000 का मनसबदार था।
vi. टोडरमल – वित्त विशेषज्ञ, दीवान (वित्तमन्त्री) के पद पर नियुक्त
vii. तानसेन – महान् संगीतज्ञ
viii. बीरबल – वास्तविक नाम – महेशदास अकबर ने इसे राजा बीरबल की उपाधि दी। वह अपनी हाजिर जवाबी के लिए प्रसिद्ध था। अकबर का अंतरंग मित्र था। यह ओरछा (mp) का निवासी था।
ix. मुल्ला दो प्याजा →

अकबर की राजपूत नीति

अकबर की राजपूत नीति से अभिप्राय उसकी राजस्थान के राजपूत राजाओं के प्रति नीति से माना जाता है। अकबर के पहले लगभग सभी

दिल्ली सुल्तानो द्वारा राजपूत राज्यों को जीतकर स्थायी रूप से सल्तनत में मिलाया गया किन्तु राजपूत राजा सल्तनत काल में लगातार अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते रहे। जिसके फलस्वरूप दिल्ली सुल्तान स्थायी रूप से राजपूत राज्यों पर अधिकार नहीं रख सके। किन्तु अकबर ने दिल्ली सुल्तानों के विपरीत राजपूत राज्यों के प्रति उदारता, सहयोग और वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की नीति का अनुसरण किया। जिसके पीछे चार मुख्य कारण

I. अफगान अकबर के सबसे प्रबल शत्रु माने जाते थे। उनकी शक्ति का दमन करने के लिए अकबर राजपूत राज्यों का सहयोग आवश्यक समझता था।

II. मुगल अमीरवर्ग पर नियंत्रण बनाये रखने के लिए

III. अकबर भारत में मुगल साम्राज्य के स्थायित्व के लिए यहां के स्थानीय राजनैतिक शक्तियों का सहयोग आवश्यक समझता था और उस समय राजपूत उत्तर भारत की प्रमुख राजनैतिक शक्ति माने जाते थे। जिनके पास विशाल राज्य होने के साथ-2 बडी सेनायें भी थी।

IV. अकबर राजपूतों की वीरता के साथ-2 स्वामी भक्ति से भी काफी प्रभावित हुआ

* जब राजपूत राजाओं द्वारा अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली गयी तब उनके राज्य वापस लौटा दिये और उन्हे आन्तरिक शासन में पूरी छूट दे दी।
* इसके साथ ही उसने राजपूत राजाओ को बडी-2 मनसबे प्रदान की।
* अकबर ने राजपूत राजाओ को महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदो पर नियुक्त किया। मानसिंह को काबुल (1581-87), बिहार (1587-94), बंगाल (1594-16..) का गवर्नर नियुक्त किया, बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का गवर्नर बनाया

* अकबर के समय में 6 राजपूत राज्य प्रमुख माने जाते हैं -

I. मेवाड   II. आमेर
III. जोधपुर   IV. बीकानेर
V. जैसलमेर   VI. बून्दी

इन राज्यों में से कुछ राज्य ऐसे थे जिन्होंने बिना किसी विरोध के स्वैच्छा से अकबर की आधीनता स्वीकार की। आमेर पहला राजपूत राज्य था जहां के शासक राव भारमल ने 1562 में बिना किसी विरोध के अकबर की आधीनता स्वीकार की और अपनी पुत्री हरकाबाई का विवाह अकबर के साथ किया। जिसे अकबर द्वारा मरियम-उल-जमानी की उपाधि दी गई। भारमल को अमीर-उल-उमरा की उपाधि दी

* आमेर के बाद बीकानेर दूसरा राजपूत राज्य था जहां के शासक राव कल्याणमल ने अकबर के नागौर दरबार में उपस्थित होकर उसकी अधीनता को स्वीकार किया।
* जैसलमेर तीसरा राज्य था जहां के शासक हरराय भाटी ने भी नागौर दरबार में अकबर की अधीनता स्वीकार की।

कुछ राजपूत राज्य ऐसे थे जिन्होंने प्रारम्भिक विरोध के बाद अकबर की आधीनता को स्वीकार किया- बून्दी और जोधपुर राज्य
उदाहरण के लिए जब अकबर द्वारा 1569 में बून्दी राज्य के अधिकार में स्थित रणथम्भौर के किले पर आक्रमण किया तब बून्दी के शासक सुरजन राव हाडा के द्वारा उसका कड़ा विरोध किया गया किन्तु पराजित होने के बाद उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। अकबर द्वारा उसे 2000 की मनसब देकर बनारस का फौजदार नियुक्त किया गया।

* बून्दी के बाद जोधपुर जहां के शासक राव चन्द्रसेन ने भी अकबर के नागौर दरबार में उपस्थित हुआ किन्तु जब वह बिना आधीनता स्वीकार किए वहां से लौट गया तब अकबर ने जोधपुर को खालसा में मिला लिया और रायसिंह को वहां का गवर्नर बनाया। फलस्वरूप राव चन्द्रसेन ने 1571 से 1581 तक सिवाना और भाद्राजून (जालौर) को आधार बनाकर अकबर के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया। इसीलिए इतिहासकारो द्वारा चन्द्रसेन को मारवाड का प्रताप के नाम से सम्बोधित किया। किन्तु 1581 में चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद अकबर ने उसके भाई मोटा राजा उदयसिंह को 1583 में जोधपुर का शासक स्वीकार कर लिया। अकबर की आधीनता मानने के साथ-2 अपनी पुत्री जगत गुसाई (जोधाबाई) का विवाह अकबर पुत्र सलीम (जहांगीर) के साथ किया। जिससे खुर्रम (शाहजहां) का जन्म हुआ।

अकबर और मेवाड- अकबर के समय में मेवाड के तीन शासक हुए-

I. महाराणा उदय सिंह (1537-1572)
II. महाराणा प्रताप (1572-1597)
III. महाराणा अमरसिंह (1597-1620)

महाराणा उदयसिंह- अकबर द्वारा नवम्बर, 1567 में चित्तौड़ पर आक्रमण किया तब महाराणा उदयसिंह की अनुपस्थिति में जयमल और फत्ता (फतेहसिंह) के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना द्वारा अकबर के आक्रमण का प्रतिरोध किया।
* किन्तु अकबर फरवरी 1568 में चित्तौड़ पर अधिकार करने में कामयाब हुआ।
* 1572 में महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद महाराणा प्रताप मेवाड़ के शासक बने। महाराणा प्रताप के द्वारा भी अकबर के विरुद्ध प्रतिरोध की नीति का अनुसरण किया गया। अतः अकबर ने महाराणा प्रताप को समझाने के उद्देश्य से चार अलग-2 दूत उनके पास भेजे।

i. जलाल (जलालुद्दीन) खाँ कुर्ची (1572)
ii. मानसिंह (1573)
iii. भगवंत दास (1573)
iv. टोडरमल (1573)

* किन्तु जब चारो दूत अपने उद्देश्य में असफल रहे तब अकबर ने 1576 में मानसिंह और आसफ खाँ के नेतृत्व में एक मुगल सेना महाराणा प्रताप के विरुद्ध भेजी। जिसके फलस्वरूप 18 जून 1576 को मानसिंह के नेतृत्व में मुगल सेना और महाराणा प्रताप के बीच हल्दीघाटी का युद्ध हुआ। अबुल फजल ने इस युद्ध को खमनौर का युद्ध कहा। जबकि बदायूँनी ने इसे गोगुन्दा का युद्ध कहा। कर्नल टॉड ने इसे मेवाड़ का थर्मोपल्ली कहा।
* हाकिम खाँ सूर नामक मुगल सरदार राणा प्रताप के पक्ष में लड़ा।
* बदायूँनी भी इस युद्ध में मुगल सेना में उपस्थित था।
* महाराणा प्रताप का हाथी- रामप्रसाद था।
* महाराणा प्रताप की पराजय किन्तु उनके युद्ध से निकलकर भाग जाने के बाद झाला बीदा के द्वारा राजपूत सेना का नेतृत्व किया।
* युद्ध के बाद 1576-85 की अवधि में राणा प्रताप द्वारा कुम्भलगढ़ किले को आधार बनाकर अकबर के विरुद्ध संघर्ष किया गया। इस अवधि में ही
* 1582 में दिवेर (राजसमंद) के युद्ध में राणा प्रताप ने सुल्तान खाँ को पराजित करके उसका वध कर दिया।
* 1585 के बाद अकबर द्वारा मेवाड़ के विरुद्ध कोई सैनिक अभियान नहीं भेजा गया तब राणा प्रताप ने चावण्ड (उदयपुर) को अपनी राजधानी बनाया।
* 1597 में चावण्ड में राणा प्रताप की मृत्यु हो गयी।

महाराणा प्रताप की मृत्यु के बाद महाराणा अमरसिंह ने अकबर की अधीनता स्वीकार न करके प्रतिरोध की नीति अपनायी।

अकबर की दक्षिण नीति

अकबर की दक्षिण के दो मुख्य उद्देश्य थे-

1. दक्षिण भारत के राज्यों को जीतकर उन्हें स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य में मिला लेना चाहता था।
2. अकबर दक्षिण भारत के राज्यों पर पुर्तगालियों के प्रभाव को स्थापित होने से रोकना चाहता था।

अकबर के समय में दक्षिण भारत में 4 चार राज्य थे-

i. खानदेश iii. अहमदनगर
ii. बीजापुर iv. गोलकुण्डा

* अकबर द्वारा सर्वप्रथम 1591 में इन चारों राज्यों के पास इस उद्देश्य से चार अलग-2 राजदूत भेजे गये थे जिससे कि वे अकबर की अधीनता स्वीकार कर लें।

i. फैजी को खानदेश राजा- अली खाँ (अकबर ने राजा की उपाधि दी)
ii. अमीनुद्दीन अहमदनगर शासक- मुजफ्फर निजाम शाह
iii. मिर्जा अमीन मशहदी बिजापुर सुल्तान- इब्राहिम आदिलशाह II
iv. मिर्जा मसूद को गोलकुण्डा शासक- इब्राहिम कुतुबशाह

किन्तु केवल खानदेश के शासक अली खां के द्वारा ही अकबर की अधीनता स्वीकार की गई। बाकी तीनो राज्यों ने अधीनता मानने से इन्कार कर दिया तब अकबर द्वारा 1595 में अब्दुर्रहीम खानेखाना और प्रिंस मुराद के नेतृत्व में सैनिक अभियान अहमदनगर के खिलाफ भेजा। यद्यपि इस समय मुजफ्फर निजाम शाह सुल्तान था किन्तु उसके अल्पवयस्क होने की स्थिति में चाँद बीबी द्वारा सेना का नेतृत्व किया गया। चाँद बीबी मुजफ्फर निजाम शाह की बुआ और बीजापुर के सुल्तान अली आदिल शाह की पत्नी थी।
चाँद बीबी के कड़े प्रतिरोध के कारण जब मुगल सेना अहमदनगर पर अधिकार नहीं कर सकी तब 1596 में अहमदनगर के सुल्तान की मुगलों

महाराणा उदयसिंह- अकबर द्वारा नवम्बर, 1567 में चित्तौड़ पर आक्रमण किया गया तब महाराणा उदयसिंह की अनुपस्थिति में जयमल और पत्ता (फतेहसिंह) के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना द्वारा अकबर के आक्रमण का प्रतिरोध किया।

* किन्तु अकबर फरवरी, 1568 में चित्तौड़ पर अधिकार करने में कामयाब हुआ।
* 1572 में महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद महाराणा प्रताप मेवाड़ के शासक बने। महाराणा प्रताप के द्वारा भी अकबर के विरुद्ध प्रतिरोध की नीति का अनुसरण किया गया। अतः अकबर ने महाराणा प्रताप को समझाने के उद्देश्य से चार अलग-2 दूत उनके पास भेजे।

i. जलाल (जलालुद्दीन) खां कुर्ची (1572)
ii. मानसिंह (1573)
iii. भगवंत दास (1573)
iv. टोडरमल (1573)

* किन्तु जब चारो दूत अपने उद्देश्य में असफल रहे तब अकबर ने 1576 में मानसिंह और आसफ खां के नेतृत्व में एक मुगल सेना महाराणा प्रताप के विरुद्ध भेजी। जिसके फलस्वरूप 18 जून 1576 को मानसिंह के नेतृत्व में मुगल सेना और महाराणा प्रताप के बीच हल्दीघाटी का युद्ध हुआ। अबुल फजल ने इस युद्ध को खमनौर का युद्ध कहा। जबकि बदायूनी ने इसे गोगुन्दा का युद्ध कहा। कर्नल टॉड ने इसे मेवाड़ का थर्मोपल्ली कहा।
* हाकिम खां सूर नामक मुगल सरदार राणा प्रताप के पक्ष में लड़ा।
* बदायूनी भी इस युद्ध में मुगल सेना में उपस्थित था।
* महाराणा प्रताप के हाथी- रामप्रसाद था।
* महाराणा प्रताप की पराजय किन्तु उनके युद्ध से निकलकर भाग जाने के बाद झाला बींदा के द्वारा राजपूत सेना का नेतृत्व किया।
* युद्ध के बाद 1576-85 की अवधि में राणा प्रताप द्वारा कुम्भलगढ़ किले को आधार बनाकर अकबर के विरुद्ध संघर्ष किया गया। इस अवधि में भी
* 1582 में दिवेर (राजसमंद) के युद्ध में राणा प्रताप ने सुल्तान खां को पराजित करके उसका वध कर दिया।
* 1585 के बाद अकबर द्वारा मेवाड़ के विरुद्ध कोई सैनिक अभियान नहीं भेजा गया तब राणा प्रताप ने चावण्ड (उदयपुर) को अपनी राजधानी बनाया।
* 1597 में चावण्ड में राणा प्रताप की मृत्यु हो गयी।

महाराणा प्रताप की मृत्यु के बाद महाराणा अमरसिंह ने अकबर की आधीनता स्वीकार न करके प्रतिरोध की नीति अपनायी।

अकबर की दक्षिण नीति

अकबर की दक्षिण के दो मुख्य उद्देश्य थे-

1. दक्षिण भारत के राज्यों को जीतकर उन्हें स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य में मिला लेना चाहता था।
ii. अकबर दक्षिण भारत के राज्यों पर पुर्तगालियों के प्रभाव को स्थापित होने से रोकना चाहता था।

अकबर के समय में दक्षिण भारत में 4 चार राज्य थे-

1. खानदेश ii. अहमदनगर
iii. बीजापुर iv. गोलकुण्डा

* अकबर द्वारा सर्वप्रथम 1591 में इन चारो राज्यो के पास इस उद्देश्य से चार अलग-2 राजदूत भेजे गये थे जिससे कि वे अकबर की अधीनता स्वीकार कर ले।

i. फैजी को खानदेश राजा- अली खाँ (अकबर ने राजा की उपाधि दी)
ii. अमीनुद्दीन अहमदनगर शासक- मुजफ्फर निजाम शाह
iii. मिर्जा अमीन मसूदी बिजापुर सुल्तान- इब्राहिम आदिलशाह II
iv. मिर्जा मसूद को गोलकुण्डा शासक- इब्राहिम कुतुबशाह

किन्तु केवल खानदेश के शासक अली खां के द्वारा ही अकबर की आधीनता स्वीकार की गई। बाकी तीनो राज्यो ने आधीनता मानने से इन्कार कर दिया तब अकबर द्वारा 1595 में अब्दुर्रहीम खानेखाना और प्रिंस मुराद के नेतृत्व में सैनिक अभियान अहमदनगर के खिलाफ भेजा। यद्यपि इस समय मुजफ्फर निजाम शाह सुल्तान था किन्तु उसके अल्पवयस्क होने की स्थिति में चाँद बीबी द्वारा सेना का नेतृत्व किया गया। चांद बीबी मुजफ्फर निजाम शाह की बुआ और बीजापुर के सुल्तान अली आदिल शाह की पत्नी थी।
चांद बीबी के कड़े प्रतिरोध के कारण जब मुगल सेना अहमदनगर पर अधिकार नहीं कर सकी तब 1596 में अहमदनगर के सुल्तान की मुगलो

के साथ एक सन्धि हुई। जिसके अनुसार अहमदनगर के सुल्तान द्वारा मुगल आधीनता स्वीकार कर ली गयी।

ब. मुजफ्फर निजाम शाह की जगह बहादुर निजाम शाह को सुल्तान स्वीकार किया।

स. बरार का प्रान्त अहमदनगर के सुल्तान द्वारा मुगल सम्राट को सौंप दिया गया।

* इस सन्धि के बाद जब अहमदनगर के सुल्तान द्वारा इस सन्धि का उल्लंघन करके बरार पर अपना पुनः अधिकार करने का प्रयास किया तब 1599 में अकबर ने स्वंय अहमदनगर पर आक्रमण किया और 1600 ई. में उसने अहमदनगर राज्य का आधा जीतकर मुगलसाम्राज्य में मिला लिया। किन्तु इसी जब खानदेश के शासक राजा अली खां की मृत्यु हो जाने के बाद उसके पुत्र मीरन बहादुर शाह ने स्वंय को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया तब अकबर ने 1600 ई. में ही खानदेश राज्य को जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया ~~तथा अस~~

* असीरगढ़ विजय अकबर की अन्तिम विजय थी। असीरगढ़ खानदेश का महत्वपूर्ण किला था जिसे अकबर द्वारा 6 जनवरी 1601 को जीता गया। अकबर ने खानदेश का नाम बदलकर दानदेश कर दिया। अपने पुत्र दानियाल को खानदेश का गवर्नर नियुक्त किया।

* इसी समय अकबर के ज्येष्ठ पुत्र सलीम द्वारा इलाहाबाद में अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर देने के कारण अकबर दक्षिण भारत के अन्य राज्यों को नहीं जीत सका।

(औरंगजेब 1658-1707)

धार्मिक नीति → अकबर द्वारा जिस धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अनुसरण किया गया था उसे बाद में जहांगीर, शाहजहां द्वारा जारी रखा गया। किन्तु औरंगजेब ने अकबर की नीति के विपरीत कट्टर धार्मिक नीति का अनुसरण किया। जिसके पीछे दो मुख्य कारण थे-

I. औरंगजेब व्यक्तिगत रूप से एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह अकबर की नीति का कट्टर आलोचक था।

II. कुछ इतिहासकारो का यह मानना है कि औरंगजेब द्वारा कट्टर धार्मिक नीति का अनुसरण करने के पीछे राजनीतिक कारण थे क्योंकि उत्तराधिकार के युद्ध में उसने स्वयं को इस्लाम का रक्षक घोषित करके दारा के विरुद्ध जिन कट्टरपंथी मुगल सरदारो और उलेमा वर्ग का सहयोग प्राप्त किया था उनको सन्तुष्ट करने के लिए उसने यह नीति अपनायी।

* औरंगजेब द्वारा सर्वप्रथम दरबार में प्रचलित सभी गैर मुस्लिम यहां तक कि गैर सुन्नी परम्पराओ का अनुसरण करना बन्द कर दिया। उदाहरण के लिए उसने दरबार में नौरोज का त्यौहार मनाना बन्द कर दिया।
* औरंगजेब ने दरबार में संगीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया और दरबारी संगीतकारो को दरबार से निष्कासित कर दिया।
* औरंगजेब ने दरबार में हिन्दु त्यौहारो को मनाना बन्द कर दिया
* उसने झरोखा दर्शन, तुलादान को भी बन्द कर दिया।
* उसके द्वारा 1669 में सभी प्रान्तीय गवर्नरो के नाम इस बात के लिए फरमान (शाही आदेश) भेजे गए कि उनके द्वारा अपने-2 प्रान्तो में स्थित मन्दिरो की सूची तैयार की जाए और उन्हे तोडा जाए। मन्दिरो को तोडने के कार्यो की निगरानी के लिए प्रान्तो में मुहतसिब नियुक्त किए गए।

मुहतसिब - सदाचार ~~निरी~~ निरीक्षक। मुख्य कार्य - इस बात की जांच करना था कि मुसलमानो के द्वारा अपने दैनिक जीवन में कहां तक मुस्लिम परम्पराओ का

अनुसरण किया जाता था। यदि कोई मुस्लिम इस्लाम में वर्जित परम्पराओं का अनुसरण करता हुआ पाया जाता तो उसे वह दण्डित करता था। इसके साथ ही बाजारों में तौल-नाप की जांच करता था। किन्तु मुगल काल में औरंगजेब के समय में नियुक्त किए गए मुहतसिब औरंगजेब के समय में नियुक्त किए। उसने मुहतसिब को मुख्य कार्य मन्दिरों को तोड़ने का सौंपा।

* औरंगजेब के आदेश पर मुगल साम्राज्य के विभिन्न भागों में जिन मन्दिरों को तोड़ा गया उनमें तीन मन्दिर महत्वपूर्ण थे-

i. सोमनाथ का मन्दिर ii. बनारस का विश्वनाथ मन्दिर
iii. मथुरा का केशवराय का मन्दिर

* औरंगजेब द्वारा 1679 में जजिया कर को पुनः लागू किया गया।

औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह- धार्मिक कट्टर नीति के फलस्वरूप हुए जिनमें प्रमुख माने जाते हैं-

i. जाट विद्रोह → मथुरा के आस-पास 1670 में गोकुल जाट के नेतृत्व में हुआ। गोकुल के बाद विद्रोह का नेतृत्व राजाराम के द्वारा किया गया। राजाराम के बाद चूड़ामन ने नेतृत्व किया।

ii. सतनामी विद्रोह - सतनामी हिन्दू सम्प्रदाय था जिसकी स्थापना 16वीं शताब्दी में बीरभान के द्वारा की गयी। सतनामी दादू से प्रभावित थे। • मुख्य केन्द्र- नारनौल। सतनामी विद्रोह 1672 में नारनौल और उसके आस-पास हुआ।

iii. सिख विद्रोह → औरंगजेब के आदेश पर पंजाब और कश्मीर में सिख गुरुओं और मन्दिरों को नुकसान पहुंचाया जा रहा था तब इसका सिक्खों के 9वें गुरु तेगबहादुर के द्वारा कड़ा विरोध किया गया। फलस्वरूप तेगबहादुर को गिरफ्तार करके 1675 में दिल्ली में औरंगजेब के आदेश पर उनका वध कर दिया गया। गुरु तेगबहादुर के बाद उनके पुत्र गुरु गोविन्द सिंह (10वें गुरु) ने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए सिक्ख धर्म को खालसा में परिवर्तित कर दिया। 1699 में खालसा की स्थापना की।

औरंगजेब की दक्षिण नीति

औरंगजेब की दक्षिण नीति के प्रमुख उद्देश्य थे-

i. दक्षिण भारत के राज्यों को जीतकर उन्हें स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य में मिला लेना था।

ii. दक्षिण भारत में स्थित बीजापुर और गोलकुण्डा शिया मत के अनुयायी थे और वे मुगल सम्राट के बजाय ईरान के सम्राट के प्रति स्वामीभक्ति रखते थे। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था इसलिए वह इन शिया राज्यों के स्वतन्त्र को समाप्त कर देना चाहता था।

iii. औरंगजेब शिवाजी के नेतृत्व में दक्षिण में स्थापित नयी मराठा शक्ति का दमन कर देना चाहता था।

* औरंगजेब के समय में दक्षिण भारत में तीन राज्य शक्तिशाली माने जाते थे-

i. बीजापुर ii. गोलकुण्डा iii. मराठा राज्य

* औरंगजेब की बीजापुर गोलकुण्डा विजय → औरंगजेब द्वारा 1686 में व्यक्तिगत रूप से बीजापुर पर आक्रमण किया गया। बीजापुर के अन्तिम सुल्तान सिकन्दर आदिल शाह को पराजित करके बीजापुर को साम्राज्य में मिलाया।

* बीजापुर विजय के बाद 1687 में औरंगजेब द्वारा गोलकुण्डा के सुल्तान अबुल हसन पर आक्रमण किया गया। अबुल हसन को पराजित करके किया।

औरंगजेब के मराठों के साथ संबंध → औरंगजेब से मराठों के साथ संबंधों को इतिहासकारों द्वारा चार चरणों में विभाजित किया गया-

i. औरंगजेब एवं शिवाजी (1658-1680) → शिवाजी का जन्म 1627 ई. में शिवनेर के पहाड़ी किले में हुआ। शिवनेर जुन्नार (महाराष्ट्र) नगर के पास स्थित था। पिता → शाहजी भोंसले उस समय बीजापुर के सुल्तान मोहम्मद आदिल शाह के सैनिक सेवा में नियुक्त थे। उन्हें पूना का किला जागीर में मिला हुआ था। 1640 में शाहजी भोंसले ने शिवाजी को अपनी मां जीजाबाई के साथ पूना के किले में भेज दिया था। अपने एक विश्वासपात्र सरदार दादाजी कोण्डदेव को शिवाजी का संरक्षक नियुक्त किया। दादाजी कोण्डदेव के द्वारा ही शिवाजी को सैनिक, राजनीतिक प्रशिक्षण दिया (राजनीतिक गुरु)।

* शिवाजी के पहले महाराष्ट्र में कोई संगठित मराठा राज्य नहीं था और महाराष्ट्र के विभिन्न प्रदेश अलग-2 मराठा सरदारों के अधिकार में थे। ये मराठा सरदार बीजापुर की अधीनता में थे। किन्तु शिवाजी महाराष्ट्र के इन समस्त प्रदेशों को जीतकर एक स्वतन्त्र मराठा राज्य की स्थापना करना चाहते थे।

इस उद्देश्य से शिवाजी द्वारा तोरण पहला मराठा किला था जिसे शिवाजी द्वारा बीजापुर के सुल्तान से 1646 में छीना।

* इसके बाद पुरन्दर इसरा महत्वपूर्ण किला था जिसे 1648 में शिवाजी द्वारा मराठा सरदार नीलोजी नीलकण्ठ से छिना गया।
* इसके बाद शिवाजी ने जावली का किला 1656 में मराठा सरदार चन्द्रराव मोरे से छिना था। जावली विजय से शिवाजी की सैनिक और आर्थिक शक्ति काफी मजबूत हुई क्योंकि जावली के किले के साथ-2 इससे जुड़ा विशाल क्षेत्र शिवाजी को प्राप्त हुआ। इसके साथ ही जावली के किले में मौजूद मोरे मराठा सरदारो का विशाल राजकोष मिला।
* इसके बाद शिवाजी द्वारा मुगल प्रदेशो पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया गया शिवाजी द्वारा मुगल साम्राज्य पर पहला आक्रमण 1657 में जुन्नार नामक क्षेत्र पर हुआ।
* इस प्रकार जब 1658 में औरंगजेब मुगल सम्राट बना तबतक शिवाजी द्वारा महाराष्ट्र का विशाल प्रदेश जीतकर एक स्वतन्त्र मराठा राज्य की स्थापना की।
* औरंगजेब द्वारा शिवाजी के विरूद्ध प्रारम्भ में जो भी सैनिक अभियान भेजे गये उनमें सबसे प्रमुख 1660 में शाइस्ता खाँ के नेतृत्व में भेजा गया। जिसने पूना के किले के सहित अनेक मराठा किले शिवाजी से छिनकर अपने अधिकार में कर लिये।
* ~~xxx~~ फलस्वरूप शिवाजी ने पूना के किले में शाइस्ता खाँ पर रात्री आक्रमण करके उसे दक्षिण भारत से हटा दिए जाने में सफल हुए।
* शाइस्ता खाँ के असफल रहने पर औरंगजेब द्वारा मिर्जा राजा जयसिंह को दक्षिण भारत के भाए प्रान्तो का गवर्नर बनाकर शिवाजी की शक्ति का दमन करने का प्रयास में आदेश किया।
* मिर्जा राजा जयसिंह ने शिवाजी को पराजित करके उन्हें समर्पण करने के लिए मजबूर किया।
* अन्त में शिवाजी के अनुरोध पर जून, 1665 में दोनो के बीच पुरन्दर की संधि हुई जिसके मुख्य प्रावधान इस प्रकार है-

1. शिवाजी द्वारा 23 किले और 4 लाख हूण की आय का प्रदेश मुगलो को सौंप दिया गया। [1 हूण = 3.5 रुपये]
ii. 12 किले और 1 लाख हूण की आय का प्रदेश शिवाजी के पास रहा।
iii. शिवाजी के पुत्र शम्भाजी 5 हजार मराठा घुड़सवारो सहित मुगल सम्राट की सेवा में नियुक्त रहेंगे।
iv. शिवाजी द्वारा मुगल अधीनता स्वीकार करली गयी।
v. यदि मुगल सेना द्वारा भविष्य में बीजापुर पर आक्रमण किया जाता है तब शिवाजी द्वारा बीजापुर के विरूद्ध मुगल सेना की मदद की जायेगी।

शिवाजी की आगरा यात्रा - मिर्जा राजा जयसिंह की सलाह पर शिवाजी द्वारा औरंगजेब से मिलने के लिए आगरा की यात्रा की किन्तु जब मिर्जा राजा की सलाह के विपरीत औरंगजेब द्वारा शिवाजी को कैद कर लिया गया किन्तु शिवाजी मुगल कैद से निकलकर भागने में सफल हो गये।

* आगरा से शिवाजी मथुरा, मथुरा से इलाहाबाद, इलाहाबाद से बुन्देलखण्ड, बुन्देलखण्ड से गोण्डवाना, गोण्डवाना से गोलकुण्डा, गोलकुण्डा से पूना 25 दिन में आये।
* पूना लौटने के बाद शिवाजी द्वारा सर्वप्रथम मराठा राज्य के लिये प्रशासन का गठन किया गया। उसके बाद उन्होंने अपनी राजधानी रायगढ़ में 16 जून, 1674 को हिन्दु धर्मशास्त्रो के आधार पर अपना राज्याभिषेक सम्पन्न करवाया।
* शिवाजी का राज्याभिषेक काशी के पंडित विश्वेश्वर गागाभट्ट द्वारा किया।
* शिवाजी द्वारा छत्रपति की उपाधि धारण की गयी।
* यद्यपि शिवाजी का दूसरा राज्याभिषेक अक्टूबर 1674 में उनके राज-पुरोहित निश्चलपुरी गोस्वामी द्वारा तांत्रिक विधा से करवाया गया।
* शिवाजी की अन्तिम विजय कर्नाटक विजय थी। कर्नाटक का प्रदेश शिवाजी 1677 में बीजापुर के सुल्तान सिकन्दर आदिल शाह से छीना गया। जिसमें दो जिले सम्मिलित थे - i. जिंजी ii. वेलुर
* शिवाजी की मृत्यु 1680 में रायगढ़ में हुयी।
* इस प्रकार शिवाजी के जीवनकाल औरंगजेब मराठा शक्ति का दमन नहीं कर सका।

iii. औरंगजेब एवं शम्भाजी (1680 - 1689)

* शिवाजी के दो पुत्र थे - i. शम्भाजी ii. राजाराम
* शिवाजी की मृत्यु के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी मराठा छत्रपति बने। किन्तु शम्भाजी अपने उग्र स्वभाव के कारण शिवाजी के विपरीत महाराष्ट्र की जनता में काफी बदनाम थे। यहां तक कि शम्भाजी द्वारा शिवाजी के समय के अष्टप्रधान के अधिकारी मन्त्रीयो के साथ-2 अनेक महत्वपूर्ण मराठा सरदारो का वध करवा दिया गया।

अतः औरंगजेब ने इसका लाभ उठाकर उनके द्वारा बीजापुर, गोलकुण्डा को

जीत लेने के बाद 1689 में शम्भाजी को उनके मुख्य सलाहकार कवि कलश के साथ गिरफ्तार करके उन्हें घोर यातनाएं देकर उनका वध करवा दिया। इस प्रकार 1689 तक औरंगजेब की दक्षिण नीति काफी सफल रही।

3. औरंगजेब एवं राजाराम (1689-1700)

* 1689 में शम्भाजी की मृत्यु के बाद उनके पुत्र शाहू वयस्क नहीं थे। अतः शम्भाजी के छोटे भाई राजाराम को मराठा छत्रपति बनाया गया। राजाराम द्वारा औरंगजेब की अपार सैनिक शक्ति का मुकाबला करने के लिए जो व्यवस्था लागू की वह इस प्रकार है—

i. राजाराम ने शिवाजी के समय की राजतन्त्रात्मक व्यवस्था का त्याग करके सत्ता का विकेन्द्रीयकरण किया। राजाराम द्वारा जागीर प्रथा को लागू किया गया। महाराष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों को जागीरों के रूप में विभिन्न मराठा सरदारों में बांट दिया। सभी सरदारों को अपनी-2 जागीरों में पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की। जिसके फलस्वरूप महाराष्ट्र में विभिन्न मराठा सरदारों के रूप में सत्ता के अनेक केन्द्र बन गये। छत्रपति केवल नाममात्र का शासक रह गया। इस प्रकार राजाराम द्वारा लागू इस व्यवस्था के फलस्वरूप मराठा राज्य मराठा संघ में परिवर्तित हो गया।

ii. इसके अतिरिक्त राजाराम द्वारा मुगल आक्रमणों के विरुद्ध छापामार युद्ध नीति का प्रयोग किया गया। जिसके फलस्वरूप इसके समय में औरंगजेब मराठा शक्ति का दमन करने में असफल रहा।

औरंगजेब एवं ताराबाई (1700-1707)

* 1700 में राजाराम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शिवाजी II छत्रपति बना। किन्तु शिवाजी II अल्प वयस्क होने के कारण उसकी मां ताराबाई उसकी संरक्षक नियुक्त हुई। 1700-1707 तक ताराबाई के नेतृत्व में मराठों द्वारा मुगल आक्रमणों का प्रतिरोध किया गया।
* जिस समय ताराबाई के हाथ में मराठों का नेतृत्व आया उनके अधिकार में केवल 8 किले थे।
* i. सतारा, ii. पार्ली, iii. पन्हाला, iv. सिंहगढ़, v. विशालगढ़, vi. रायगढ़, vii. तोरणा, viii. वागिन खेड़ा
* ताराबाई के कड़े विरोध के कारण औरंगजेब व्यक्तिगत रूप से आक्रमण करने के बावजूद भी इन 8 किलों पर अधिकार नहीं कर सका।

वागिन खेड़ा अन्तिम मराठा किला था जिसका घेरा औरंगजेब द्वारा 1706 में डाला गया। किन्तु इस समय औरंगजेब के गम्भीर रूप से बीमार हो जाने के कारण यहां का घेरा उठाकर वापस अहमदनगर लौटना पड़ा। जहां बाद में 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गयी।

इस प्रकार औरंगजेब अपने जीवनकाल में मराठा शक्ति का दमन नहीं कर पाया और अन्ततः उसकी दक्षिण नीति असफल रही तथा मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण सिद्ध हुई।

* सर जदुनाथ सरकार ने (हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब) में लिखा है कि जिस प्रकार नेपोलियन बोनापार्ट के लिए स्पेन एक नासूर बन गया था उसी तरह औरंगजेब के लिए दक्षिण भारत एक नासूर सिद्ध हुआ।

शिवाजी की शासन व्यवस्था

1. केन्द्रीय शासन व्यवस्था

अष्टप्रधान → शिवाजी द्वारा केन्द्रीय सरकार में जिन 8 मन्त्रियों की नियुक्ति की गयी थी। उन्हें ही अष्ट प्रधान के नाम से जाना जाता है।

1. **पेशवा** → प्रधानमन्त्री को कहा जाता था और मराठा छत्रपति के बाद पेशवा का पद ही राज्य में सबसे महत्वपूर्ण था। उसका मुख्य कार्य सभी मन्त्रियों के कार्यों में समन्वय बनाये रखना था।

पहला पेशवा - शिवाजी ने श्यामराज नीलकंठ को राज्याभिषेक के बाद मोरोपंत पिंगले पहला महान् पेशवा -

2. **अमात्य (मजमुआदार)** - वित्त मन्त्री था।
3. **मन्त्री (वाकया नवीस)** - मराठा दरबार में व्यवस्था बनाये रखना और मराठा दरबार की दैनिक घटनाओं को लिखना, छत्रपति से मिलने वाले लोगों की सूची तैयार करना। इस प्रकार वह जनता और मराठा छत्रपति के बीच कड़ी का काम करता था।
4. **सचिव (शुरु नवीस)** - राजकीय पत्र विभाग का अध्यक्ष था और छत्रपति द्वारा अन्य राजाओं को जो भी पत्र लिखे जाते थे, राज्याधिकारियों को छत्रपति द्वारा दिए शाही आदेश इन सब को लिखना, प्रेषित करना और उनका ब्यौरा रखना मुख्य कार्य था।
5. **सुमन्त (दबीर)** → विदेश मन्त्री था।

6. सेनापति (सरे नौबत) → मराठा सेना का अध्यक्ष था।
7. पण्डितराव (दानाध्यक्ष) - धर्म एवं दान विभाग का अध्यक्ष
8. न्यायाधीश - न्यायपालिका का अध्यक्ष

(मराठा स्वराज्य)

* शिवाजी द्वारा सर्वप्रथम अपने समस्त राज्य को तीन सम्भागों में बांटा -

i. उत्तरी प्रान्त → अध्यक्ष - मोरोपन्त पिंगले
ii. दक्षिणी प्रान्त → "–" - अन्ना जी दत्तो
iii. दक्षिण-पूर्वी प्रान्त → "–" - दत्ता जी पंत

* शिवाजी द्वारा अपने समस्त राज्य को 14 प्रान्तो (जिलो) में विभाजित किया। प्रान्त का अध्यक्ष सूबेदार होता था। मुख्य कार्य - अपने प्रान्त में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना था।
* किन्तु बाद में पेशवा काल में सूबेदार को मामलातदार के नाम से सम्बोधित किया।
* सूबेदार के अतिरिक्त कमाविसदार अन्य अधिकारी था, जो भू-राजस्व संबंधी कार्यों को देखता था।

* प्रान्त (जिले) को कुछ परगनो में विभाजित किया गया और परगने को महाल भी कहा जाता था। प्रत्येक परगने में दो अधिकारी नियुक्त थे -

i. देशमुख - परगने का अध्यक्ष। मुख्य कार्य - शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना था।
ii. ~~देशपाण्डे~~ देशमुख को अपनी व्यक्तिगत जमीन पर सरकार कोई भूमिकर नहीं देना पड़ता था। ~~अ~~ इसके अतिरिक्त उसे परगने की आय का 5% और दिया जाता था। इसके अलावा इसे गांव के दस्तकारों से सभी प्रमुख त्यौहारों पर भेंट प्राप्त करने का अधिकार था।
ii. देशपाण्डे → परगने का भू-राजस्व संबंधी कार्य देखता था। वेतन के बदले परगने की आय का 2.5% दिया जाता था। उसकी व्यक्तिगत जमीन भी भूमिकर से माफ थी

गांव - प्रत्येक महाल में अनेक गांव सम्मिलित होते थे। गांव में 4 अधिकारी होते थे -

i. पटेल - (पाटिल) गांव का अध्यक्ष। पटेल को मुकदम भी कहते थे।
ii. कुलकर्णी - भू-राजस्व संबंधी कार्य देखता था।
iii. चौगुल - पटेल का सहायक।
iv. महार - गांव सुरक्षा व्यवस्था को देखना।

शिवाजी के भू-राजस्व सुधार

1. शिवाजी द्वारा जमींदारों के माध्यम से भू-राजस्व कर वसूल करने की व्यवस्था को समाप्त कर दिया तथा भू-राजस्व अधिकारियों द्वारा ही किसानों से भूमिकर वसूल किया जाता था।
2. शिवाजी द्वारा भूमिकर की दर उपज का $\frac{2}{5}$ या 40% लागू की।
3. भूमिकर निर्धारण के लिये पैमाइश की पद्धति प्रचलित की। भूमि की नाप के लिये छड़ी/काठी का प्रयोग किया जाता था।
4. महाराष्ट्र में किसान को मिरासदार कहा जाता था।
5. भूमिकर के अलावा शिवाजी के समय में आय के अन्य मुख्य स्रोत - चौथ एवं सरदेशमुखी थे।

चौथ - ~~भूमि~~कर था। जिसे मराठे द्वारा अन्य राज्यों से वसूल किया जाता था। यह उन राज्यों की आय का 25% होता था। इसके बदले में मराठों द्वारा उन राज्यों में भविष्य में लूटमार न करने की गारन्टी दी जाती थी।

सरदेशमुखी - कर था जो मराठे द्वारा केवल पड़ोसी राज्यों से वसूल किया जाता था। यह उन राज्यों की आय का 10% होता था। सरदेशमुखी इस बात का प्रतीक था, जो उन राज्यों द्वारा मराठों की सम्प्रभुता को स्वीकार कर लिया गया है। उन राज्यों में आन्तरिक शान्ति व्यवस्था बनाए रखना मराठों का उत्तरदायित्व था। उन राज्यों की अन्य राज्यों के आक्रमणों से रक्षा करना था।

शिवाजी की सैन्य व्यवस्था

शिवाजी द्वारा मराठा राज्य के लिए एक विशाल और शक्तिशाली सेना का गठन किया गया। जिसमें 1 लाख पैदल सैनिक (मावली सैनिक), 45 हजार पागा ~~के~~ घुड़सवार (बारगीर), 60 हजार सिलहदार घुड़सवार थे।

* पागा घुड़सवार सिलहदारों से श्रेष्ठ माने जाते थे। पागा घुड़सवारों को हथियार और घोड़ा राज्य द्वारा उपलब्ध कराया जाता था किन्तु सिलहदारों द्वारा हथियार और घोड़ा स्वयं को खरीदना पड़ता था।
* घुड़सवार सेना में शिवाजी के समय सबसे छोटी सैनिक टुकड़ी 25 घुड़सवारों की होती थी। इसका अध्यक्ष हवलदार (हवलदार) था।

5 हवलदारो पर एक जुमलादार (125 घुडसवार)
10 जुमलदारो पर एक हजारी (1250 ")
* घुडसवार सेना में सबसे बडा पद 5 हजारी होता था।
पैदल सैनिक (पायक)
पैदल सेना में सबसे छोटी टुकडी = 9 सैनिक। अध्यक्ष - नायक
5 नायक - एक हवलदार
2/3 हवलदारो पर - जुमलदार
10 जुमलदार पर - एक हजारी
पैदल सेना में सबसे बडा पद 7 हजारी होता था।

* शिवाजी के समय में उनके अधिकार में 240 किले थे। शिवाजी द्वारा एक नौसेना का गठन किया गया था।
* नौसेना अध्यक्ष को दरिया सारंग कहते थे।

मुख्य बाते -

1. मराठा स्वराज्य - शिवाजी के समय में उनके राज्य के अन्तर्गत जो प्रदेश सम्मिलित थे, उन्हे ही मराठा स्वराज्य कहा गया है।
2. जी. एस. सरदेसाई - "शिवाजी न केवल महाराष्ट्र में बल्कि सम्पूर्ण भारत में हिन्दू पदशाही (साम्राज्य) की स्थापना करना चाहते थे।" पुस्तक - मैन करेन्ट्स ऑफ मराठा हिस्ट्री में कहा।
3. मराठा स्वतन्त्रता संग्राम - 1689 - 1707 के काल को मराठा इतिहास में मराठा स्वतन्त्रता संग्राम के नाम से जाना जाता है। क्योंकि 1689 में शम्भाजी का वध करवा देने के बाद औरंगजेब ने अपनी समस्त सैनिक शक्ति महाराष्ट्र अधिकार स्थापित करने में लगा दी। किन्तु मराठे हरस्थिति में अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखना चाहते थे। इसलिए महाराष्ट्र की समस्त जनता ने मुगलो के खिलाफ विद्रोह कर दिया था। सारा महाराष्ट्र युद्ध क्षेत्र में परिवर्तित हो गया। प्रारम्भ में मराठों ने राजाराम के नेतृत्व में और फिर ताराबाई के नेतृत्व में अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया।
4. सर अजांम व्यवस्था - का उल्लेख पेशवा काल में मिलता है। मराठा सरदारो को उनके सैनिको के वेतन के बदले में जो जागीरे दी जाती थी उन्हें मोकासा कहते थे और मराठा सरदारों को व्यक्तिगत वेतन के बदले में जो जागीरे दी जाती थी उन्हे सर अजांम कहा जाता था।

पेशवाओं की शक्ति का उत्थान तथा मराठा शक्ति के उत्थान में पेशवाओं का योगदान

1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों में उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष हुआ (आजम एवं मुअज्जम)। आजम उस समय दक्षिण भारत में औरंगजेब के पास मौजूद था। अतः जब आजम आगरा पर अधिकार करने के उद्देश्य से उत्तर भारत के लिए रवाना हुआ तब उसने छत्रपति शम्भाजी के पुत्र शाहू को मुगल कैद से रिहा करके इस उद्देश्य से महाराष्ट्र भेज दिया गया था कि वह छत्रपति के पद के लिए अपना दावा प्रस्तुत करेगा और ताराबाई अपने पुत्र छत्रपति शिवाजी II के होते हुए शाहू को छत्रपति स्वीकार नहीं करेगी।

शाहू तथा ताराबाई के बीच सत्ता के लिए जो संघर्ष होगा उसके कारण मराठे गृहयुद्ध में उलझ जायेंगे और वे दक्षिण भारत में स्थित मुगल प्रान्तों पर आक्रमण नहीं कर सकेंगे।

शाहू के महाराष्ट्र पहुंचने पर ताराबाई के विरुद्ध अनेक मराठा सरदारों द्वारा शाहू का पक्ष लिया गया। जिनमें बालाजी विश्वनाथ प्रमुख थे। इन मराठा सरदारो की मदद से ही शाहू ने ताराबाई और उसके पुत्र छत्रपति शिवाजी II को सतारा से निष्कासित करके खुद को छत्रपति घोषित किया (1708 में)। शाहू 1708 से लेकर 1749 तक छत्रपति रहा।

छत्रपति शाहू द्वारा बालाजी विश्वनाथ की सेवाओ से खुश होकर उसे 1713 में पेशवा के पद पर नियुक्त किया। 1713 से 1720 तक पेशवा रहा। चूंकि शाहू को युद्धो का और प्रशासन का कोई अनुभव नहीं था। इसलिए उसके समय मे छत्रपति का पद कमजोर होता चला गया और पेशवा का पद शक्तिशाली होता चला गया। मराठा इतिहास में बालाजी विश्वनाथ प्रथम महान पेशवा माना जाता है।

पेशवा के रूप में बालाजी विश्वनाथ की मुख्य उपलब्धियां →

1. शाहू के विरोधियो की शक्ति का दमन → बालाजी विश्वनाथ ने महल षड्यन्त्र के द्वारा शाहू की सबसे मुख्य प्रतिद्वन्द्वी ताराबाई की शक्ति का दमन किया। क्योंकि सतारा से निष्कासित कर दिये जाने के बाद ताराबाई उसके पुत्र शिवाजी II के द्वारा कोल्हापुर के छत्रपति शम्भाजी II के पास शरण ली। बालाजी विश्वनाथ की सलाह पर छत्रपति शम्भाजी II ने एक षड्यंत्र के द्वारा ताराबाई और उसके पुत्र शिवाजी II को कोल्हापुर के किले में कैद किया।

2. शासन का पुनर्गठन करना - जब महाराष्ट्र पर मुगल आक्रमणो की सम्भावना समाप्त हो गयी तब शाहू की सलाह पर बालाजी विश्वनाथ ने मराठा राज्य के शासन का पुनर्गठन किया। जिसके अनुसार -

I. छत्रपति राजाराम के समय में मराठा सरदारो को जो अस्थायी जागीरे दी गयी थी अब उन पर सरदारो का वंशानुगत अधिकार स्वीकार।

II. छत्रपति के पास कोई खालसा भूमि नहीं थी अतः अब सभी मराठा सरदार अपनी-2 जागीरो की आय का 34% छत्रपति को देंगे 66% स्वयं रखेंगे।

इस प्रकार बालाजी विश्वनाथ ने जो यह वित्तीय व्यवस्था लागू की इसके द्वारा उसने मराठा छत्रपति को अपनी आय के लिए मराठा सरदारो पर निर्भर बना दिया।

Date______
Page______

iii. बालाजी विश्वनाथ के द्वारा सभी प्रमुख प्रशासनिक पदों को वंशानुगत बनाया।

iv. बालाजी विश्वनाथ का सबसे मुख्य कार्य 1719 की मुगल मराठा सन्धि को मानते है। यह सन्धि बालाजी विश्वनाथ और सैयद बन्धु हुसैन अली खां के बीच हुयी। सन्धि के प्रावधान -

i. दक्षिण के 6 मुगल प्रान्तो से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार मराठों को प्राप्त हो गया।

ii. इसके बदले में छत्रपति शाहू द्वारा 15 हजार मराठा घुड़सवार मुगल सम्राट की सैनिक सेवा में नियुक्त किए जाएंगे।

iii. छत्रपति शाहू द्वारा 10 लाख रु. मुगल सम्राट को दिए जाएंगे।

iv. शाहू की मां ~~यशोबाई~~ यसुबाई और उसकी पत्नी को मुगल कैद से रिहा कर दिया गया।

4. बालाजी विश्वनाथ के द्वारा ही अपने पुत्र बाजीराव प्रथम ~~के~~ के लिए उत्तर भारत में विस्तारवादी नीति का अनुसरण करने का मार्ग प्रशस्त किया।

पेशवा बाजीराव I (1720 - 1740) -

बालाजी विश्वनाथ के दो पुत्र थे - i. बाजीराव I ii. चिमनाजी अप्पा
छत्रपति शाहू ने बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव I को पेशवा नियुक्त किया। वह मराठा इतिहास में द्वितीय महान पेशवा माना जाता है। बल्कि शिवाजी के बाद मराठा इतिहास में दूसरा महान व्यक्ति बाजीराव I को ही मानते हैं। बाजीराव I मुख्य कार्य -

i. बाजीराव I के नेतृत्व में मराठों द्वारा पहली बार उत्तर भारत में विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया गया। उदाहरण के लिए पेशवा बाजीराव ने अपनी इस नीति की व्याख्या करते हुए कहा था कि अब समय आ गया है कि हमें विदेशियों को हिन्दुस्तान से निकालकर बाहर कर देना चाहिए। हमें सूखे वृक्ष ~~पर~~ के तने पर प्रहार करना चाहिए। शाखाएं तो स्वतः ही हमारे अधिकार में आ जाएगी। हमें मराठा झण्डे को कृष्णा नदी से लेकर अटक (पंजाब) तक फहरा देना चाहिए।

ii. बाजीराव I द्वारा उत्तर भारत पर निरन्तर आक्रमण करके और मालवा पहले मुगल प्रान्त था जिसे 1728 में बाजीराव I ने अम्झेरा के युद्ध में मालवा के गवर्नर गिरधर बहादुर को पराजित करके मालवा पर कब्जा कर लिया था।

(अम्झेरा → धार, MP)

Date______
Page______

~~आधुनिक काल~~ ~~Modern~~ History

~~भारत में यूरोपीय कम्पनियों का आगमन~~

iii. मालवा के बाद गुजरात दूसरा प्रान्त था जिसे 1731 में बाजीराव I ने जीतकर अपने अधिकार में किया।

iv. बाजीराव I द्वारा मालवा, गुजरात दोनो प्रान्त बाद में जागीरो के रूप में अपने चार सहायक मराठा सरदारो को सौंप दिये गये जो 4 मराठा राज्यो के संस्थापक बने। इन चारो को ही मराठा संघ के 4 सरदार माना जाता है।

i. दत्ताजी गायकवाड   iii. मल्हार राव होल्कर
ii. रघुजी भोंसले I   iv. रानोजी सिन्धिया

- दत्ताजी गायकवाड को उसने गुजरात का आधा प्रान्त जागीर में दिया था जिसने बड़ौदा को अपनी राजधानी बनाया।
- रघुजी भोंसले I को उसने गुजरात का शेष भाग जागीर में दिया जिसने बाद में नागपुर को अपनी राजधानी बनाया। नागपुर के भोंसले राज्य का संस्थापक था।
- मल्हार राव होल्कर को उसने मालवा का आधा भाग जागीर में दिया जिसने बाद मे इन्दौर को अपनी राजधानी बनाया।
- रानोजी सिंधिया को उसने मालवा का शेष भाग जागीर में दिया जिसने ग्वालियर को अपनी राजधानी बनाया।

v. बाजीराव I द्वारा बुन्देलखण्ड के शासक छत्रसाल बुन्देला के अनुरोध पर उसे इलाहाबाद के गवर्नर मोहम्मद खां बंगश की कैद से मुक्त करवाकर उसका राज्य उसे वापिस दिलवाया था और इस मदद की एवज में छत्रसाल बुन्देला के द्वारा बुन्देलखण्ड का आधा राज्य बाजीराव को सौंपा दिया। बाजीराव I ने उसका प्रशासक गोविन्द पन्त खरे को नियुक्त किया।

vi. बाजीराव I के आदेश पर उसके छोटे भाई चिमनाजी अप्पा के द्वारा बेसिन पर आक्रमण करके ~~बेसिन~~ पुर्तगालियो को पराजित करके सालसेट तथा बेसिन के दोनो बन्दरगाह अपने अधिकार में कर लिये।

vii. **बाजीराव के निजामुलमुल्क के साथ संबंध** - औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल अमीर वर्ग में सर्वाधिक योग्य अमीर निजामुलमुल्क आसफजाह था। जब मुगल सम्राट मोहम्मद शाह द्वारा निजामुलमुल्क को बाजीराव के विरुद्ध भेजा गया तब बाजीराव और निजामुलमुल्क के बीच दो युद्ध लड़े गये -

I. पालखेड का युद्ध -(औरंगाबाद, महाराष्ट्र) → पालखेड का युद्ध निजाम और बाजीराव के बीच मार्च, 1728 में लड़ा गया। जिसमें उसने निजाम को पराजित किया। उसके बाद निजाम और बाजीराव के बीच मार्च, 1728 में मुंगीशिवगांव की सन्धि हुयी। सन्धि के प्रावधान-

I. निजाम द्वारा शाहू को महाराष्ट्र का एकमात्र छत्रपति स्वीकार कर लिया। साथ ही उसने यह आश्वासन दिया कि वह भविष्य में शाहू के विरुद्ध कोल्हापुर के छत्रपति शम्भाजी II की मदद नहीं करेगा।

II. निजाम द्वारा दक्षिण के 6 मुगल प्रान्तो से मराठों का चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार स्वीकार किया।

II. भोपाल का युद्ध (दिसम्बर, 1737) - निजाम और बाजीराव I के बीच जिसमें एक बार पुनः बाजीराव ने निजाम को पराजित किया। इसके बाद निजाम और बाजीराव के बीच जनवरी, 1738 में दोराहा सराय की सन्धि हुयी। प्रावधान -

I. निजामुलमुल्क द्वारा मालवा और गुजरात पर मराठों का अधिकार स्वीकार किया गया।

II. भविष्य में इस सन्धि की पुष्टि वह मुगल सम्राट से करवायेगा।

पेशवा बालाजी बाजीराव (1740 - 1761)

पेशवा बाजीराव I के दो पुत्र थे- I. बालाजी बाजीराव, II. रघुनाथ राव राघोबा

छत्रपति शाहू के द्वारा बाजीराव I की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र बालाजी बाजीराव को पेशवा नियुक्त किया। वह मराठा इतिहास में तीसरा महान पेशवा माना जाता है। पेशवा के रूप में मुख्य कार्य -

I. बालाजी बाजीराव के द्वारा भी उत्तर भारत में अपने पिता की विस्तारवादी नीति का ही अनुसरण किया। उदाहरण के लिये उसने 1751 में रघुजी भोसले I के नेतृत्व में एक मराठा सेना बंगाल पर आक्रमण करने के लिए भेजी जिसने बंगाल के नवाब अली वर्दी खां को पराजित करके उड़ीसा का प्रान्त उससे छीनकर अपने अधिकार में कर लिया। अली वर्दी खां ने बंगाल और बिहार के लिए 12 लाख रु वार्षिक चौथ के रूप में देना स्वीकार कर लिया।

II. सांगोला समझौता (1751) → 1749 में छत्रपति शाहू की मृत्यु हो गयी थी और शाहू के कोई पुत्र नहीं था इसलिए उसकी मृत्यु के बाद ताराबाई का पौत्र रामराजा छत्रपति बना। किन्तु बालाजी बाजीराव रामराजा को छत्रपति मानने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए उसने 1751 में ताराबाई और रामराजा को वार्ता के लिए पूना आमंत्रित किया। और पूना में ही रामराजा बालाजी बाजीराव के बीच 1751 में सांगोला समझौता हुआ। जिसके अनुसार रामराजा द्वारा छत्रपति की सारी शक्तियां पेशवा को हस्तान्तरित कर दी गयी और इस प्रकार सांगोला समझौते के बाद छत्रपति का पद समाप्त हो गया। अब पेशवा ही मराठा संघ / राज्य का अध्यक्ष बन गया।

III. मराठों का पंजाब पर अधिकार (1757) - मुगल सम्राटों की दुर्बलता का लाभ उठाकर 1757 के प्रारम्भ में अहमदशाह अब्दाली के द्वारा पंजाब को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया गया। किन्तु इसके कुछ समय बाद 1757 में ही रघुनाथराव राघोबा के नेतृत्व में मराठों द्वारा पंजाब पर आक्रमण करके अहमदशाह अब्दाली की सेना को पंजाब से निकालकर पंजाब पर अधिकार कर लिया। दत्ताजी सिन्धिया को पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया।

IV. 1758 में मराठों द्वारा मुगल सम्राट आलमगीर II को अपने संरक्षण में ले लिया गया और अपने मित्र इमादुलमुल्क को वजीर के पद पर नियुक्त किया। इस प्रकार बालाजी बाजीराव के समय में मराठा शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी। किन्तु बालाजी बाजीराव के समय में मराठा शक्ति का पतन भी प्रारम्भ हो गया।

पानीपत का तृतीय युद्ध (1761) → 1759 में अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब से मराठों को निष्कासित करके पंजाब पर अधिकार कर लिया तथा दत्ताजी सिन्धिया का वध कर दिया गया। फलस्वरूप बालाजी बाजीराव द्वारा अपने चचेरे भाई सदाशिव राव भाऊ के नेतृत्व में एक लाख मराठा सेना अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध भेजी गयी। इस मराठा सेना के साथ बहुत बड़ी संख्या में प्रमुख मराठा सरदारों को भी भेजा गया। इस सेना के साथ पेशवा का ज्येष्ठ पुत्र विश्वास राव भी गया। इस मराठा सेना के तोपखाने का अध्यक्ष इब्राहिम शाह गार्दी था। किन्तु इस युद्ध में मराठों को किसी भी हिन्दु शासक का समर्थन नहीं मिला जबकि अहमदशाह को भारतीय

मुसलमानो का समर्थन प्राप्त था। मुख्य रूप से अवध का नवाब सुजाऊद्दौला और मुगल वज़ीर नजीबुद्दौला अहमदशाह के पक्ष में लड़े।
* इस युद्ध में अन्ततः मराठो की पराजय हुयी। सदाशिवराव भाऊ और पेशवा के पुत्र विश्वास राव सहित अधिकांश मराठा सरदार इस युद्ध में मारे गये। और 70 हजार मराठा सैनिक मारे गये।
इस युद्ध के बाद मराठा शक्ति का पतन प्रारम्भ हो गया।

अध्याय-13

मुगल राजनीति में नूरजहाँ जुन्ता की भूमिका

जहाँगीर

13 अगस्त, 1569 ई. को अकबर की कछवाहा रानी मरियम उज्जमानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम शेख मुहम्मद सलीम रखा गया। सोलह वर्ष की आयु में उसका विवाह आमेर नरेश भगवानदास की पुत्री मानबाई से कर दिया गया। राजकुमार खुसरो इसी दाम्पत्य की देन था। खुसरो के पितृ-भक्ति विहीन व्यवहार से दुःखी होकर मानबाई ने 1604 ई. में आत्महत्या कर ली थी। अकबर की मृत्यु के बाद 3 नवम्बर, 1605 ई. को सलीम नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी की उपाधि के साथ मुगल सिंहासन पर बैठा।

खुसरो का विद्रोह-अकबर के अन्तिम दिनों में सलीम के स्थान पर उसके बड़े पुत्र खुसरो को बादशाह बनाने का असफल षड्यन्त्र रचा गया था। जहाँगीर के बादशाह बनने के बाद भी पिता-पुत्र में तनाव बना रहा। जहाँगीर ने उसे बन्दी बना लिया। परन्तु खुसरो अपने साथियों सहित आगरा से निकल भागा। दिल्ली होते हुए वह लाहौर पहुँचा। तरनतारन में उसने सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुनसिंह का आशीर्वाद भी प्राप्त किया। जहाँगीर ने अपने जीवन में पहली बार तत्परता से कदम उठाते हुए खुसरो के विद्रोह को कुचल दिया। विद्रोही खुसरो को कारागार में डाल दिया गया। उसके साथियों को कठोर यातनाएँ देकर मार डाला गया। गुरु अर्जुन को भी मृत्युदण्ड दिया गया।

नूरजहाँ

प्रारम्भिक जीवन-नूरजहाँ का मूल नाम मेहरुन्निसा था, जो गयासबेग नामक एक फारसी की पुत्री थी। खुरासान में गयासबेग के पिता की मृत्यु हो जाने पर उसने अपने दो पुत्र और गर्भिणी स्त्री के साथ भारत की ओर प्रस्थान किया। कन्धार में उसकी पत्नी अस्मत बेगम ने 1578 ई. में एक कन्या को जन्म दिया जिसका नाम मेहरुन्निसा रखा गया। जिस कारवाँ के साथ गयासबेग आया था उसका स्वामी मलिक मसूद नामक व्यापारी था, जिसने गयासबेग को अकबर के दरबार में नौकरी दिलवा दी। गयासबेग अपनी योग्यता से उन्नति करता गया और उसे काबुल का दीवान बना दिया गया। इसी बीच मेहरुन्निसा एक मनोहारी युवती के रूप में विकसित हुई। अनुपम सौन्दर्य और स्त्री-सुलभ कमनीयता के कारण युवराज सलीम उस पर मोहित हो गया। किन्तु अकबर को यह सब पसन्द नहीं था। अतः मेहरुन्निसा का विवाह फारस के एक युवक

अलीकुलीखाँ के साथ कर दिया, जिसे बाद में सलीम ने 'शेर अफगान' की उपाधि दी। सम्राट बनने के बाद जहाँगीर ने शेर अफगान को बर्दवान का फौजदार बना दिया। सम्भवतः मेहरुन्निसा का मनोहारी सौन्दर्य अभी तक जहाँगीर के मन-मस्तिष्क पर छाया हुआ था। अतः शेर अफगान पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर, बंगाल के गवर्नर कुतुबुद्दीनखाँ को उसे दरबार में पेश करने का आदेश दिया। कुतुबुद्दीन ने शेर अफगान को बन्दी बनाने का प्रयास किया, तो दोनों में संघर्ष छिड़ गया, जिसमें शेर अफगान मारा गया। मेहरुन्निसा और उसकी पुत्री लाडली बेगम को दरबार में लाया गया। मेहरुन्निसा को अकबर की विधवा सलीमा बेगम की परिचारिका बना दिया। चार वर्ष बाद मार्च, 1611 ई. में जहाँगीर ने मेहरुन्निसा से विवाह कर लिया।

शेर अफगान की मृत्यु और जहाँगीर के इस विवाह के सम्बन्ध में अनेक विवादास्पद धारणाएँ पायी जाती हैं। डॉ. बेनीप्रसाद का मत है कि मार्च, 1611 ई. के पूर्व जहाँगीर ने मेहरुन्निसा को देखा तक नहीं था और न जहाँगीर का शेर अफगान की हत्या में कोई हाथ था। लेकिन डॉ. ईश्वरीप्रसाद का मत है कि युवक सलीम का मेहरुन्निसा के प्रति आसक्त होना सामान्य बात है और कदाचित शेर अफगान की हत्या में भी उसका हाथ था। समस्त घटनाचक्र के अध्ययन से स्पष्ट है कि युवक सलीम मेहरुन्निसा से प्रेम करता था। शेर अफगान की हत्या के सम्बन्ध में स्पष्ट है कि उस पर कोई निश्चित अभियोग नहीं लगाया गया और न उसे अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का अवसर दिया गया। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में इस घटना का संकेत मात्र भी नहीं दिया है, जिससे भी सन्देह उत्पन्न होता है। डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि, ''यदि प्रेमासक्ति की धारणा सत्य है तो शेर अफगान की हत्या का उद्देश्य भी स्पष्ट है।'' निःसन्देह मेहरुन्निसा को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा ही शेर अफगान की हत्या का मूल कारण था।

नूरजहाँ से विवाह के परिणाम-मेहरुन्निसा से विवाह होने पर जहाँगीर की चिर-अभिलाषा पूर्ण हुई। वह मेहरुन्निसा को पाकर इतना प्रफुल्लित हो उठा कि उसे 'नूरमहल' (प्रासाद की ज्योति) की उपाधि दे दी, जो बाद में 'नूरजहाँ' (विश्व की ज्योति) की उपाधि में परिवर्तित कर दी गई। नूरजहाँ अत्यन्त ही महत्त्वाकां णी रमणी थी। उसने राजकीय मामलों में हाथ बँटाना आरम्भ किया और धीरे-धीरे शासन की समस्त सत्ता अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया। जहाँगीर उसके सौन्दर्य एवं ताजगी के प्रभाव से अभिभूत हो गया। उसके सम्बन्धियों को दरबार में उच्च पद देकर विभिन्न उपाधियों से विभूषित किया गया। उसका पिता एतमादुद्दौला तथा भाई आसफखाँ दरबार के प्रभावशील व्यक्तियों में हो गये। जहाँगीर भी अपनी आयु और अस्वस्थता के कारण आलसी होता जा रहा था, अतः धीरे-धीरे राजसत्ता नूरजहाँ के हाथों में केन्द्रित होने लगी। शाही फरमानों में भी सम्राट जहाँगीर के नाम के साथ नूरजहाँ का नाम भी लिखा जाने लगा। वह सम्राट की भाँति प्रजा को झरोखा दर्शन देने लगी। नूरजहाँ इतनी शक्ति-सम्पन्न हो गई कि जहाँगीर केवल नाममात्र का शासक रह गया। स्वयं जहाँगीर कहने लगा कि, ''मैंने हिन्दुस्तान की बादशाहत नूरजहाँ बेगम को दे दी है।'' ऐसी स्थिति में सारा राजनैतिक वातावरण ही बदल गया। नूरजहाँ ने अपनी स्थिति को दृढ़ करने हेतु एक दल बना लिया, जिसे 'नूरजहाँ गुट' कहा जाता है। इस गुट में नूरजहाँ के माता-पिता, भाई और शाहजादा खुर्रम शामिल थे। उसने अपनी भतीजी (आसफ खाँ की पुत्री) का विवाह खुर्रम से कर अपने गुट को और अधिक मजबूत कर लिया। नूरजहाँ का पिता योग्य एवं निपुण शासक था तथा उसका भाई

असाधारण प्रतिभा का अर्थशास्त्री था। नूरजहाँ स्वयं भी बुद्धिमान स्त्री थी। उसमें प्रशासकीय एवं राजनैतिक समस्याओं के रहस्य को तुरन्त समझने और शीघ्र उनका समाधान निकालने की क्षमता थी।

मुगल राजनीति में नूरजहाँ जुन्ता की भूमिका

नूरजहाँ का मुगल दरबार में प्रभाव और प्रभुत्व असीम था। अतः सम्पूर्ण नूरजहाँ के काल (1611-1627 ई.) को 'नूरजहाँ प्रभाव-युग' की संज्ञा दी जाती है। नूरजहाँ प्रभाव-युग को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम तो 1611 ई. से 1622 ई. तक जिसमें नूरजहाँ पर अपने माता-पिता का नियन्त्रण था और वे उसकी महत्त्वाकांक्षा को संयमित करते रहे। अतः वह पूर्ण स्वतन्त्र होकर कार्य नहीं कर सकी। दूसरा 1622 ई. 1627 ई. तक, जिसमें उसके माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह अनियन्त्रित हो गयी। अतः उसने पूर्ण स्वच्छन्द होकर प्रशासनिक कार्य किये। इस नूरजहाँ प्रभाव-युग के परिणाम अत्यन्त ही घातक सिद्ध हुए थे।

नूरजहाँ प्रभाव-युग के प्रथम भाग में नूरजहाँ अपने गुट की अधिष्ठात्री और राजतन्त्र की एकमात्र स्वामिनी बनी रही। उसका अपने पति पर भी अच्छा प्रभाव था। इस प्रभाव के फलस्वरूप ही जहाँगीर का दैनिक मद्यपान उत्तरोत्तर कम होता गया था। उसने सम्राट को शासकीय चिन्ताओं से अधिकाधिक मुक्त रखने का प्रयास किया। अपने इस प्रभाव-युग में शक्ति-संग्रह तथा दलबन्दी के मामलों में वह असाधारण रूप से अनुरागशील बनी रही। अपने पिता, भाई तथा अन्य सम्बन्धियों को दरबार में उच्च एवं प्रभावशाली पदों पर प्रतिष्ठित करवाया। इस काल में उसने शाहजादा खुर्रम को अपना सहयोग एवं समर्थन देकर गौरव और समृद्धि के सर्वोत्कृष्ट शिखर पर पहुँचा दिया। उसका युवराज बनना एक निर्विवाद सम्भावना लगती थी। जिस किसी ने उसकी सत्ता व प्रभाव का विरोध किया उसे निकाल बाहर किया गया। उस समय दरबार में दो गुट बने हुए थे, एक नूरजहाँ के समर्थकों का था, जिसका नेतृत्व उसका भाई आसफ खाँ कर रहा था। दूसरा गुट नूरजहाँ के विरोधियों का था, जिसका नेतृत्व महाबत खाँ कर रहा था। 1612 ई. में आसफ खाँ ने अपनी पुत्री अर्जुमन्द बानू बेगम का विवाह शाहजादे खुर्रम से कर दिया। फलस्वरूप दरबार में आसफ खाँ का प्रभाव और अधिक बढ़ गया। जहाँगीर पर नूरजहाँ का इतना प्रभाव था कि वह उसकी इच्छा के बिना कोई निर्णय नहीं कर सकता था। नूरजहाँ के इस प्रभाव ने साम्राज्य की राजनीति में घातक परिणाम पैदा कर दिये। उसमें अनेक गुण होते हुए भी वह एक स्त्री थी। एक स्त्री की सत्ता में प्रभुता स्थापित होने से अनेक बुरी परम्पराएँ स्थापित हो गयीं। चूँकि अकेली नूरजहाँ राज्य के प्रत्येक मामले की देखभाल करने में असमर्थ थी, अतः प्रशासन में अकुशलता और अनैतिकता शामिल होना स्वाभाविक था। लेकिन इस प्रभाव-युग में नूरजहाँ की माता अस्मत बेगम उसकी मुख्य परामर्शदात्री थी, जिसने अपनी महत्त्वाकांक्षिणी और चंचल प्रकृति की पुत्री को संयमित बनाये रखने में श्रेयस्कर काम किया। अस्मत बेगम एक सुशिक्षित एवं सन्तुलित विचारों वाली महिला थी। अतः उसने नूरजहाँ के चंचल स्वभाव को पूर्ण नियन्त्रण में रखा।

नूरजहाँ प्रभाव-युग के दूसरे भाग में वह अधिक स्वच्छन्द होकर कार्य करने लगी, क्योंकि इस युग में उसके माता-पिता की मृत्यु हो गयी थी और अब उस पर नियन्त्रण रखने वाला

कोई नहीं रहा। फिर इस प्रभाव-युग में जहाँगीर भी बहुधा बीमार रहता था। अतः वह सभी ओर से मुक्त हो चुकी थी। जहाँगीर की बीमारी के कारण दरबार में अनेक गुट बन गये और नूरजहाँ के विरोधी शक्ति-सम्पन्न होने लगे। अपने प्रथम प्रभाव-युग में उसने शहजादे खुर्रम को अवलम्बन प्रदान कर उसके युवराज बनने की तीव्र सम्भावना उत्पन्न कर दी थी, लेकिन अपने प्रभाव-युग के दूसरे भाग में जब नूरजहाँ ने अपनी पुत्री लाडली बेगम का विवाह जहाँगीर के सबसे छोटे पुत्र शहरयार (जिसका उपनाम नैशुदनी अर्थात् निखट्टू था) से कर दिया तो खुर्रम के युवराज बनने की सम्भावना धूल में मिल गई क्योंकि अब वह अपने दामाद शहरयार का पक्ष लेने लगी और उसे युवराज बनाने का स्वप्न देखने लगी। नूरजहाँ के इस व्यवहार ने खुर्रम को विद्रोह के लिए विवश कर दिया। उसका भाई आसफ खाँ जो नूरजहाँ प्रभाव-युग के प्रथम भाग में नूरजहाँ-गुट का आधार स्तम्भ था, वह भी नूरजहाँ का विरोधी बन गया क्योंकि वह अपने दामाद खुर्रम को युवराज बनाने के पक्ष में था, अतः उसने खुर्रम का पक्ष ग्रहण कर लिया। इस प्रकार इस दूसरे भाग में नूरजहाँ की नीतियों ने साम्राज्य में गृह-कलह के बीज बो दिये। समस्त साम्राज्य गृह-युद्धों एवं विद्रोहों से परिप्लावित हो उठा। नूरजहाँ की सत्ता के प्रति अनुरागशीलता ने उच्च अधिकारियों को स्वामिभक्तिपूर्ण सेवाओं के प्रति उदासीन बना दिया। नूरजहाँ का विरोध करने वाले स्वामिभक्त अमीर-उमरावों को भी सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा। फलस्वरूप सत्ताप्रिय इस रमणी और स्वामिभक्त सरदारों के बीच असहयोग की खाई और गहरी होती गई। खुर्रम के विद्रोह के चिन्ह पूरी तरह से समाप्त भी नहीं हुए थे, कि महाबत खाँ को, जिसने अपने शौर्य और स्वामिभक्ति के कारण 'अमीर-उल-उमरा' की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, विद्रोह का झण्डा फहरा कर सम्राट को भी बन्दी बनाने के लिए विवश होना पड़ा, क्योंकि नूरजहाँ की नीतियों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि बेगम इसी प्रकार अपनी मनमानी करती रही तो उसे सपरिवार नष्ट होना पड़ेगा। नूरजहाँ ने जनसाधारण एवं राज्यकर्मचारियों को बहुमूल्य भेंट देकर उन्हें प्रसन्न करने का मार्ग अपनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य में घूसखोरी और दुराचार फैल गये। इस प्रकार नूरजहाँ की नीतियों ने न केवल दरबार को दलबन्दी और षड्यन्त्रों का अड्डा बनाया, बल्कि साम्राज्य की ठोस नींव को भी डगमगा दिया।

नूरजहाँ का मूल्यांकन–जहाँगीर से विवाह होने के समय नूरजहाँ की आयु 34 वर्ष की थी और वह एक बच्ची की माँ भी बन चुकी थी। किन्तु पूर्ण वय का मनोहारी सौन्दर्य और उसकी ताजगी अभी भी उसमें विद्यमान थी। शृंगार और आभूषण तो उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते थे। वह उच्च शिक्षा प्राप्त थी तथा संगीत, चित्रकला तथा काव्य में उसे विशेष रुचि थी। वह स्वयं भी फारसी में पद्य रचना किया करती थी। उसके द्वारा प्रचलित वेशभूषा की प्रणाली का प्रभाव औरंगजेब के समय तक बना रहा। नूरजहाँ बड़ी उदार हृदय स्त्री थी। निर्धन व असहाय व्यक्तियों की सहायता करना तथा अनाथ कन्याओं के विवाह का व्यय भार वहन करने का तो उसने नियम बना रखा था। उसमें पुरुषोचित मेधा और महत्त्वाकांक्षा थी। अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को शीघ्र ही प्रभावित करने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। वह गम्भीर और धैर्यवान थी। आवेश में उसने कभी अपने मस्तिष्क का सन्तुलन नहीं खोया। 1613 ई. में वह 'पट्टमहिषी' बनायी गयी थी और अन्त तक उसने इस पद के गौरव को बनाये रखा। वह अपने पति की बड़ी सावधानी से देखभाल करती थी। मुगल दरबार की वैभव-समृद्धि के लिए उसने सफल प्रयत्न किये। जहाँगीर

अध्याय-21

मुगल साम्राज्य का पतन

बाबर ने जिस मुगल साम्राज्य की स्थापना की थी, वह अकबर के काल में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। जहाँगीर ने उस साम्राज्य को वैभवपूर्ण बनाया और शाहजहाँ ने उसे ऐश्वर्यता प्रदान की। इस विपुल और अपार ऐश्वर्य ने विदेशी यात्रियों की आँखों को भी चकाचौंध कर दिया। लेकिन इस वैभव और ऐश्वयं में घुन लगे हुए थे जो साम्राज्य की नींव को खोखला कर रहे थे। अत: औरंगजेब के शासनकाल में यह वैभव और ऐश्वर्य धूमिल पड़ने लगा और औरंगजेब की नीतियों ने तो यह स्पष्ट कर दिया कि अब मुगल साम्राज्य का अन्त निकट आ गया है। इसलिए कुछ विद्वान औरंगजेब को मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। औरंगजेब का उत्तरदायित्व सिद्ध करते हुए इसके निम्नलिखित कारण बताये हैं–

(1) **औरंगजेब की धर्मान्धता**–औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी और धर्मान्ध शासक था। वह अपने आपको केवल सुन्नी मुसलमानों का बादशाह मानता था। फलस्वरूप उसने देश में कुरान द्वारा निर्देशित नियम बनाये और लोगों को इन नियमों का पालन करने के लिए बाध्य किया। भारत को इस्लामी राज्य में परिवर्तित करने की प्रबल इच्छा के कारण उसे गैर-मुसलमानों को इस्लाम धर्म में दीक्षित कराने का एक सुनियोजित अभियान छेड़ना पड़ा। दूसरी ओर देश की गैर-मुस्लिम प्रजा अपने धर्म और संस्कृति को बनाये रखने हेतु दृढ़ संकल्प थी। अत: दोनों में पारस्परिक विरोध होना तो स्वाभाविक ही था। औरंगजेब ने इस बात पर कभी ध्यान ही नहीं दिया कि उसकी इस धर्मान्ध नीति के परिणाम क्या होंगे? उसकी धर्मान्धता ने समस्त हिन्दू जाति को क्रुद्ध कर दिया; जिससे जाटों, सतनामियों, सिक्खों, मराठों आदि के विद्रोह फूट पड़े और समस्त साम्राज्य विद्रोहों की आग से झुलसने लगा। उसकी धर्मान्ध नीति ने स्वामिभक्त राजपूतों को जो साम्राज्य के आधार स्तम्भ माने जाते थे, क्रुद्ध कर साम्राज्य के आधार स्तम्भों को ही गिरा दिया। उसका विनाश तो उसी समय आरम्भ हो गया था जबकि उसने मारवाड़ के स्वामिभक्त वीर राठौड़ों से संघर्ष मोल लिया। हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त कर वहाँ की देव मूर्तियों को अपमानजनक ढंग से नष्ट करना तथा हिन्दुओं पर जजिया-कर लगाने से तो साम्राज्य के विनाश की पुष्टि होने लग गयी। उसने शिया मुसलमानों को भी नष्ट करने का प्रयास किया। फलस्वरूप देश की न केवल हिन्दू प्रजा ही उसकी शत्रु बनी बल्कि शिया मुसलमान भी उसके कट्टर शत्रु बन गये।

(2) **औरंगजेब की शंकालु प्रवृत्ति**–अपनी शंकालु प्रवृत्ति के कारण औरंगजेब की शासन-व्यवस्था अत्यन्त केन्द्रित थी और सारे अधिकार वह अपने हाथ में रखता था। सम्राट अपने पुत्रों को प्रशासन के कार्य में शिक्षित कर उन्हें शासन-व्यवस्था का दायित्व सौंप सकता था,

लेकिन उसे सदैव यह भय बना रहता था कि उसके पुत्र उसे कहीं बन्दी बनाकर साम्राज्य पर अधिकार न कर लें, क्योंकि स्वयं औरंगजेब ने अपने पिता को बन्दी बनाकर साम्राज्य पर अधिकार किया था। अपनी इस शंकालु प्रवृत्ति के कारण वह अपने पुत्रों को न केवल प्रशासन से दूर रखता था, बल्कि उनके पीछे गुप्तचर भी लगाये रखता था। इसका परिणाम यह निकला कि उसके पुत्र आदेशों व नीतियों का विरोध करने को तत्पर रहते थे। इतना ही नहीं, उसके पुत्र उसके विरुद्ध षड्यन्त्र और विद्रोह करने को भी इच्छुक रहते थे। शाहजादा अकबर इस प्रवृत्ति से नाराज होकर राजपूतों से जा मिला था और उसके विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था। अपनी शंकालु प्रवृत्ति के कारण ही वह अपना कोई योग्य उत्तराधिकारी भी तैयार न कर सका। औरंगजेब अपने मन्त्रियों, अधिकारियों व सेनापतियों को भी शंका की दृष्टि से देखता था। इसलिए राज्य के छोटे-से-छोटे काम भी वह स्वयं करने का प्रयत्न करता था। फलतः उसके मन्त्री और अधिकारी मात्र क्लर्क बनकर रह गये और सेनापति घोर संकट के समय भी असहाय होकर सम्राट के आदेशों के लिए मुँह ताकने लगे। इससे प्रशासन में दायित्व की भावना ही समाप्त हो गयी। अतः जब तक सम्राट में शारीरिक योग्यता रही, साम्राज्य को नियन्त्रित रखा, किन्तु उसकी वृद्धावस्था और मृत्यु के बाद साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा।

(3) औरंगजेब के प्रशासन में दोष–जैसाकि ऊपर बताया गया है, औरंगजेब ने अत्यन्त ही एकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था स्थापित की थी। ऐसी शासन-व्यवस्था की सफलता सम्राट की शक्ति एवं योग्यता पर निर्भर करती है। जब तक औरंगजेब में शारीरिक योग्यता बनी रही, प्रशासन का काम ठीक-ठाक चलता रहा। वृद्धावस्था में भी वह दरबार में उपस्थित होकर प्रशासन का कार्य करने का प्रयत्न करता रहा, लेकिन उस समय ऐसा लगने लगा था कि अब सम्राट का वृद्ध जर्जर शरीर सदा के लिए अवकाश माँग रहा है। उस समय सर्वत्र साम्राज्य में यह अनुभव किया जाने लगा था कि प्रशासन की बागडोर उसके हाथ से निकली जा रही है। इसके अतिरिक्त उसके विचारों में धार्मिक पक्षपात का रंग चढ़ा हुआ होने के कारण उसके निर्णय सदा दोषपूर्ण रहते थे। ऐसी स्थिति में प्रशासन में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार ने साम्राज्य को खोखला करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। ''मआसिर-ए-आलमगीरी'' में हमें ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं कि औरंगजेब के शासन में छोटे-बड़े सभी अधिकारी भ्रष्ट आचरण से धन कमाते थे। इतना ही नहीं, स्वयं सम्राट बड़ी-बड़ी रकमें अथवा भेंटें ग्रहण कर अपने अधिकारियों के इच्छित स्थानों पर तबादले करता था। इस प्रकार प्रशासन में कोई भी व्यक्ति भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं था। ऐसे प्रशासन की सफलता संदिग्ध तो थी ही, उसका विनाश भी अवश्यम्भावी था।

(4) औरंगजेब की दक्षिण नीति–औरंगजेब की दक्षिण नीति न केवल साम्राज्य के लिए बल्कि स्वयं उसके लिये भी विनाशकारी सिद्ध हुई। दक्षिण भारत में मुख्यतः तीन शक्तियाँ थीं–बीजापुर, गोलकुण्डा और मराठा। ये तीनों शक्तियाँ पारस्परिक संघर्षरत रहने के कारण न तो मुगलों से लड़ने का साहस जुटा पा रही थीं और न उन्हें इसके लिए अवकाश ही मिल पा रहा था। फलस्वरूप दक्षिण में शक्ति-सन्तुलन बना हुआ था। लेकिन औरंगजेब ने इस शक्ति-सन्तुलन को नष्ट कर दिया। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा को मात्र इसलिए नष्ट कर दिया, क्योंकि वे शिया राज्य थे इसलिए औरंगजेब की दृष्टि में अपराधी थे। जब बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्य समाप्त हो गये तब उसकी सीधी टक्कर मराठों से होने लगी। औरंगजेब ने नवोदित मराठा शक्ति

को नष्ट करने हेतु सब कुछ लुटा दिया। लेकिन वह मराठा शक्ति को नहीं दबा सका, बल्कि
उसने तो मराठों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित कर दिया। अन्तिम 25 वर्ष उसने दक्षिण के युद्धों
में ही व्यतीत किये, फलस्वरूप बड़े-बड़े अधिकारी भी दक्षिण पहुँच गये और केन्द्रीय शासन
दूसरी श्रेणी के लोगों के हाथ में आ गया, जिनमें प्रशासनिक क्षमता नाममात्र की भी नहीं थी।
फलस्वरूप प्रशासन में अराजकता के साथ-साथ उत्तर भारत में अनेक विद्रोह उठ खड़े हुए।
दक्षिण के लम्बे युद्धों के कारण साम्राज्य का राजकोष रिक्त हो गया। वस्तुतः दक्षिण औरंगजेब
के लिये ऐसा विषैला फोड़ा सिद्ध हुआ जिससे उसका सर्वनाश हो गया। दक्षिण के निरन्तर युद्धों
के कारण लम्बे समय तक उत्तर भारत में उसकी अनुपस्थिति से न केवल केन्द्रीय सत्ता कमजोर
हुई बल्कि सारे साम्राज्य की शासन-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। ऐसे साम्राज्य के स्थायित्व की
तो कल्पना ही नहीं की जा सकती।

(5) औरंगजेब द्वारा कर-वृद्धि–अकबर के समय जो कर-निर्धारण का तरीका था,
औरंगजेब ने उसे बन्द कर दिया। औरंगजेब के पूर्व सरकार की देखरेख में सरकारी अधिकारी
लगान वसूल किया करते थे। किन्तु औरंगजेब ने ठेकेदारी प्रथा प्रारम्भ कर दी अर्थात् किसानों से
लगान वसूल करने का ठेका दिया जाने लगा जो मनमानी दर से भू-लगान वसूल करते थे।
फलस्वरूप लाखों किसानों की दशा बिगड़ गई। निरन्तर युद्धों के कारण कृषि और व्यापार
नष्टप्राय हो गये। अकाल, महामारी आदि के कारण तो स्थिति ने विकराल रूप धारण कर लिया।
चूँकि युद्धों में अत्यधिक जन-धन की हानि उठानी पड़ी, अतः इस क्षति को पूरा करने के लिए
उसने किसानों व जनसाधारण पर कर-भार बढ़ा दिया। तात्कालिक परिस्थितियों में साधारण
कर-वसूली भी बड़ी कठिनाई से हो रही थी और जब करों में वृद्धि कर दी गई तो सर्वत्र
साम्राज्य में असन्तोष और विद्रोह की भीषण अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। स्वयं औरंगजेब ऐसी
स्थिति देखकर कहा करता था उसकी मृत्यु के बाद कैसा प्रलय आयेगा? वास्तव में जिस प्रलय
की कल्पना औरंगजेब ने की थी, उस प्रलय की पृष्ठभूमि का निर्माण तो उसने स्वयं ही कर
दिया था।

(6) औरंगजेब की अन्य त्रुटियाँ–यद्यपि औरंगजेब बड़ा विद्वान् और बुद्धिमान शासक
था, लेकिन चालाकी और मक्कारी भी उसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। अपने लक्ष्य को प्राप्त
करने के लिए वह निम्नतम साधन अपनाने में भी नहीं चूकता था। षड्यन्त्र और चालाकी से शत्रु
को जीतना उसका स्वभाव था, जिसमें वह पारंगत था। उसके इस स्वभाव के कारण उसने अपने
अनेक पदाधिकारियों को अपना शत्रु बना लिया। उसने शियाओं और विशेषकर इस्लामी और
दाऊदी बोहरों पर भीषण अत्याचार किये तथा उनके उपदेशों व रीति-रिवाजों को नष्ट कर दिया।
शाही नौकरियों में पक्षपात किया। औरंगजेब ने सबसे बड़ी गलती यह की कि उसने राजपूतों को
शत्रु बनाकर उनकी सहानुभूति खो दी, जबकि साम्राज्य को उनकी सेवाओं की बड़ी आवश्यकता
थी। उसने यह मानकर भी गलती की कि राजनैतिक, सैनिक और धार्मिक शासन प्रबन्ध की
कुशलता से राज्य सफल हो जाता है, इसलिये उसने देश की सांस्कृतिक विधाओं को विकसित
करने का कोई प्रयास नहीं किया। यहाँ की ललित कलाओं की ओर ध्यान न देने से भारतीय
सभ्यता का ही पतन हो गया। वह तो अपने दीर्घ शासनकाल में प्रजा को जीवन व सम्पत्ति की
सुरक्षा का आश्वासन भी न दिला सका। ऐसी व्यवस्था का तो अन्त निश्चित ही था।

अन्य कारण–उपर्युक्त कारणों से औरंगजेब को मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। लेकिन औरंगजेब तो केवल आंशिक उत्तरदायी था। वस्तुत: मुगल साम्राज्य के पतन के कुछ मौलिक कारण थे जो औरंगजेब के पूर्व भी विद्यमान थे और कुछ नये कारण उसकी मृत्यु के बाद उत्पन्न हो गये थे। इसलिये केवल औरंगजेब को मुगल साम्राज्य के पतन के लिये उत्तरदायी नहीं माना जा सकता। मुगल साम्राज्य के पतन के लिये अन्य निम्नलिखित कारण भी थे–

(1) मुगल सम्राटों की दुर्बलताएँ–मध्ययुगीन साम्राज्य मात्र सम्राटों की योग्यता पर टिका हुआ था। यदि सम्राट योग्य और चरित्रवान होता था तो साम्राज्य को स्थायित्व प्राप्त होता था। किन्तु औरंगजेब के उत्तराधिकारी न तो योग्य थे और न चरित्रवान्। वे अब तलवार के स्थान पर स्त्री और शराब से अधिक लगाव रखने लगे। औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह प्रथम को तो लोग "मस्त राजा" ही कहा करते थे। जहाँदारशाह अपनी प्रेयसी लालकुंवर के प्रेम में ही डूबा रहता था। फर्रुखसियर के समान तो मुगल वंश में कोई डरपोक शासक हुआ ही नहीं था। अहमदशाह और उसके उत्तराधिकारी तो सर्वथा निकम्मे व पथ-भ्रष्ट थे। फुलस्वरूप साम्राज्य की शक्ति स्वार्थी और षड्यन्त्रकारी लोगों के हाथ में चली गई, जिन्होंने साम्राज्य का सर्वनाश कर दिया। मुगल सम्राटों ने अपने जीवन के आदर्श और यहाँ तक कि दीवानी व फौजदारी कानून अरब, बगदाद और काहिरा से आयात किये, जो भारतीय सिद्धान्तों से भिन्न थे। अत: मुगल सम्राटों को लोकमत का समर्थन नहीं मिल सका और न उन्होंने इसके लिए कभी प्रयास ही किया। जन-समर्थन खोकर कोई सत्ता स्थायी नहीं रह सकती। इसके अतिरिक्त अकबर को छोड़कर सभी मुगल सम्राटों में धार्मिक कट्टरता विद्यमान थी। इस धार्मिक कट्टरता के कारण साम्राज्य के समस्त गैर-मुसलमान साम्राज्य के कट्टर शत्रु बन गये और उन्होंने जमकर मुगलों से लोहा लिया, जिससे साम्राज्य का अन्त में पतन हो गया।

(2) मुगल सामन्तों का नैतिक पतन–जिस प्रकार मुगल सम्राटों का नैतिक पतन हो चुका था, उसी प्रकार उनके सामन्तों का भी नैतिक पतन हो गया। सामन्तों में राजभक्त और कर्त्तव्यपरायणता लोप हो गयी और वे स्वार्थी एवं विलासी हो गये। यदि कोई सामन्त योग्य भी होता तो वह स्वार्थी भी होता और राज्य के प्रति वफदार नहीं होता। सैयद बन्धु, अवध का सूबेदार, सफदरजंग और दक्षिण का सूबेदार निजाम यद्यपि योग्य थे, किन्तु वे अत्यधिक स्वार्थी भी थे और उन्होंने मुगल बादशाहों को केवल अपनी स्वार्थसिद्धि का साधन बना दिया। सम्राट के साथ-साथ सामन्तों में विलासिता बढ़ गई और उनके रनिवासों में भी सुन्दर स्त्रियों की भीड़ रहने लगी। वे युद्धक्षेत्र में भी अपना रनिवास साथ रखने लगे और शराब के आदी हो गये। ऐसे सामन्तों के युवक पुत्रों का दुश्चरित्र होना तो स्वाभाविक ही था। फलस्वरूप समस्त सामन्तीय व्यवस्था का ही नैतिक पतन हो गया। सर जदुनाथ सरकार ने ठीक ही लिखा है कि, "कोई भी मुगल सामन्त एक या दो पीढ़ियों से अधिक समय तक अपना महत्त्व बनाये नहीं रख सका था। यदि किसी सामन्त की वीरता के विषय में इतिहासकार ने तीन पृष्ठ लिखे तो उसके पुत्र के कार्यों का वर्णन केवल एक ही पृष्ठ में हुआ और उसके पौत्र का वर्णन केवल कुछ इस प्रकार के शब्दों में, 'उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया' समाप्त हो जाता।" मुगल सामन्त तो साम्राज्य की शक्ति के आधार थे और जब सामन्तों का नैतिक पतन हो गया तो साम्राज्य का आधार ही समाप्त हो गया।

---

(3) दोषपूर्ण सैनिक प्रणाली–मुगल सेना का मौलिक संगठन दोषपूर्ण था। इसकी अलग-अलग टुकड़ियाँ अलग-अलग मनसबदारों द्वारा भरती की जाती थीं और वे उसी की देखरेख में कार्य करती थीं। सैनिकों को शाही खजाने से वेतन न मिलकर मनसबदारों द्वारा चुकाया जाता था। अत: सम्राट और सिपाही में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रह गया था। सैनिक अपने मनसबदार को ही अपना सरदार मानते थे। अत: अपने मनसबदार के हितों के लिए शत्रु से घूस लेकर सम्राट से विश्वासघात करना साधारण बात थी। इससे मुगल सेना का नैतिक पतन हो गया। सम्राट की कोई सुदृढ़ सेना नहीं रह गई थी जिस पर वह अपना अधिकार रख सके। मनसबदारों की पारस्परिक ईर्ष्या के कारण वे कभी-कभी तो तीन-चौथाई जीते हुए युद्ध को या घेरे को इसलिए सफल नहीं होने देते थे कि विजय का श्रेय किसी अन्य मनसबदार को प्राप्त न हो जाय। सैनिक अपराधों तक को औरंगजेब माफ कर देता था, जिससे सेना में अनुशासन नाम की कोई चीज नहीं रह गई। इसके अतिरिक्त मुगलों ने बदलती हुई नवीन सैनिक प्रणाली के प्रति उदासीनता दिखाई। अकबर के काल में ही भारतीय तोपों की अपेक्षा पाश्चात्य तोपों का महत्त्व स्पष्ट हो गया था, क्योंकि पाश्चात्य तोपें हल्की होने से बड़ी सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जा सकती थीं। लेकिन मुगल शासक ऐसी तोपों का महत्त्व नहीं समझ सके। मुगलों ने सामुद्रिक शक्ति की भी अवहेलना की, इसलिए जहाजी बेड़ों की लड़ाई से वे सर्वथा अनभिज्ञ रहे। अत: आगे चलकर यूरोपीय शक्तियों ने सामुद्रिक युद्धों में मुगलों को करारी मात दी। प्राश्चात्य हथियारों और नवीन युद्ध प्रणाली के प्रति उपेक्षा मुगलों के लिए घातक सिद्ध हुई।

(4) मुगलों की क्षीण आर्थिक स्थिति–अकबर ने जिस पक्षपातरहित नीति का अवलम्बन किया था, उससे देश समृद्ध हुआ और सरकार की आय में भी वृद्धि हुई थी। किन्तु उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में आर्थिक ढाँचा बिल्कुल बिगड़ने लग गया। सरकार ने उत्पादकों पर कर का इतना बोझ लाद दिया कि उससे वे बिल्कुल दब गये। अकबर के काल में भू-लगान सीधा किसानों से लिया जाता था, किन्तु उसके पुत्र और पौत्र के शासनकाल में यह पद्धति समाप्त कर दी गई और औरंगजेब तथा उसके उत्तराधिकारियों के काल में तो यह प्रथा लगभग समाप्त कर इसके स्थान पर ठेकेदारी प्रथा जारी कर दी गई, जिससे किसानों का शोषण भी हुआ और सरकारी आय में भी कमी हुई। देश के आय के साधनों को देखते हुए मुगल सम्राटों की फिजूलखर्ची ने देश को रसातल में भेज दिया। मुगल सम्राटों ने अपने वैभव और ऐश्वर्य के लिए धन का अपव्यय भी किया। शाहजहाँ ने न केवल कन्धार और मध्य एशिया के युद्धों में निरर्थक धन खर्च किया बल्कि अपनी इमारतों व शौक पर भी अत्यधिक धन खर्च किया। औरंगजेब के काल में तो विद्रोहों और दक्षिण युद्धों के कारण मुगल सरकार बिल्कुल दिवालिया हो गयी। अत: बहादुरशाह प्रथम के समय तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि वह न तो अच्छी सेना रख सकता था और न ठीक प्रकार से शासन ही चला सकता था। आलमगीर द्वितीय के शासनकाल में तो स्वयं सम्राट भूखा मरने लगा और शाही परिवार के जेब खर्च को वजीर हड़पने लगा। सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि एक बार तो तीन दिन तक जनानखाने के रसोई घर में चूल्हा तक नहीं जला। आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसी दिवालिया मुगल सरकार भी पचास वर्ष तक चलती रही। लेकिन ऐसी सरकार का अन्त तो निश्चित ही था।

सूफी मत

सूफी मत पर लिखा गया साहित्य मलफ्फुजात के नाम से जाना जाता था। सूफीमत को तसवुफ भी कहा जाता था।

* सूफी मत की उत्पत्ति इस्लाम धर्म से हुई। इसकी उत्पति मध्य एशिया से हुई है।
* सूफीमत का पहला संत अबु हाशिम था, जो 8 वीं शताब्दी में हुआ। वह इराक में कूफा नामक नगर का निवासी था।
* सूफीमत की प्रथम महिला सन्त राबिया को माना जाता है, जो अबुहाशिम की समकालीन तथा इराक के बसरा की निवासी थी।
* सूफीमत वहादत-उल-वुजुत के सिद्धान्त को मानता है। इसका अर्थ है- आत्मा का परमात्मा के साथ एकीकरण हो जाना। आत्मा का परमात्मा के साथ एकीकरण को (मोक्ष) वसल। मारिफत कहते हैं।
* वहादत-उल-वुजुत का सिद्धान्त 10 वीं शताब्दि के मुहीउद्दीन इब्नुल अरबी के द्वारा प्रतिपादित
* सूफी मत में गुरु को पीर तथा मुर्शिद कहा जाता था तथा शिष्य को मुरीद कहा जाता था।

खानकाह → यह सूफी सन्तों का निवास स्थान होता था।
जमैयतखाना → बड़ा कमरा, जो सूफी सन्तों की खानकाह से जुड़ा होता था जिसमें सूफी सन्त अपने शिष्यों को उपदेश देते थे
समा → दरगाह पर की गयी संगीत सभाएँ

ऐसे मुस्लिम सन्त जिन्होंने अपने-आप को सांसारिक जीवन से अलग कर लिया था और सदैव ईश्वर भक्ति में लीन रहते थे तथा सादा व सरल जीवन व्यतीत करते थे। जो सूफ नामक ड्रेस पहनते थे। उन्हें सूफी कहा जाता था।

सूफी मत में प्रारम्भ में कुछ ऐसे सन्त हुए जिनका सूफीमत के विकास में मुख्य योगदान रहा तथा जिनके द्वारा सूफी मत के नये विचारो, सिद्धान्तो व दर्शन का प्रतिपादन किया गया। ऐसे सन्तों में अल-गजाली, अल हुजवीरी का मुख्य योगदान रहा।

अल हुजवीरी → द्वारा 10 वीं शताब्दी में एक ग्रन्थ की रचना की गई जिसे काशफ-उल-महबूब के नाम से जानते हैं और यह सूफीमत पर लिखा गया पहला प्रभावी ग्रन्थ माना जाता है।

अलगजाली का मुख्य योगदान यह था - उसने इस्लाम धर्म का गहन अध्ययन किया तथा इस्लाम के सिद्धान्तो की नये ढंग से व्याख्या की। उसने इस्लाम व सूफी मत के बीच समन्वय करके अलगाव को समाप्त किया।

बाद में सूफीमत अनेक सिलसिलो में विभाजित हो गया था। अबुल फजल ने कुल 14 सिलसिलो का उल्लेख किया है, जिनमें सूफी मत का विभाजन हुआ। जिनमें से भारत में चार सिलसिले काफी लोकप्रिय हो गए

चिश्ती सिलसिला → संस्थापक → 10वीं शताब्दी में अबु ईशाक चिश्ती द्वारा ईरान में

भारत में चिश्ती सिलसिले का आगमन 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। भारत में आने वाले प्रथम चिश्ती सन्त शेख मुइनुद्दीन चिश्ती को माना जाता है। वह मूल रूप से ईरान स्थित संजर नामक नगर के निवासी थे।

मोहम्मद गौरी के द्वारा जब 1192 में तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद अजमेर पर कब्जा कर लिया उसके पहले वे अजमेर आकर बस गये थे। गौरी द्वारा उन्हें सुल्तान-उल-हिन्द की उपाधि दी गयी। इनके गुरु का नाम उस्मान-हारून था जो जनता में गरीब नवाज के नाम से जाने जाते थे। इनकी मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

i. सभी चिश्ती सन्त किसी प्रकार का सरकारी पद तथा सरकारी भेंट प्राप्त करना उचित नहीं मानते थे।
ii. व्रत / उपवास के द्वारा अपने शरीर को अधिक कष्ट देने में विश्वास था।
iii. यह एकमात्र सिलसिला था जो हिन्दु धर्म के काफी नजदीक माना जाता है। चिश्ती सन्तो ने हिन्दु धर्म की अनेक बातों को ग्रहण किया।

मोइनुद्दीन चिश्ती के बाद भारत में चिश्ती सिलसिले के प्रमुख सन्त →

हमीदुद्दीन नागौरी → यह मोइनुद्दीन चिश्ती के प्रमुख शिष्य थे तथा नागौर जाकर बस गये थे। इनकी आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित होकर गुरु मोइनुद्दीन चिश्ती के द्वारा सुल्तान-उत-तारीकिन की उपाधि दी। यही एकमात्र सूफी सन्त थे जिन्होंने कृषि को अपना व्यवसाय बनाया

कुतुबद्दीन बख्तियार काकी → ये मोइनुद्दीन के शिष्य थे तथा दिल्ली में जाकर बस गये थे। यह इल्तुतमिश के गुरु थे। यही एक मात्र सूफी सन्त थे जिनकी समा के दौरान मृत्यु हुई।

शेख फरीदुद्दीन गंज-ए-शक्कर → ये कुतुबद्दीन बख्तियार के शिष्य थे तथा इनके द्वारा अजोधन में अपनी खानकाह बनाई। फरीद का मुख्य रूप से पंजाब में सूफी मत को लोकप्रिय बनाने में योगदान रहा तथा गुरुनानक पर उनका गहरा प्रभाव था। गुरु ग्रन्थ साहिब में गोबिन्द सिंह ने इनकी शिक्षाओं को शामिल किया। ये सुल्तान बलबन के दामाद थे।

निजामुद्दीन औलिया → ये फरीद के शिष्य थे तथा दिल्ली में अपनी खानकाह स्थापित की। सुल्तान नासिरुद्दीन से लेकर ग्यासुद्दीन तुगलक तक सात दिल्ली सुल्तानों का समय देखा।

ये जनता में महबूब-ए-इलाही के नाम से प्रसिद्ध थे। चिश्ती सिलसिले को लोकप्रिय बनाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। इन्हीं के द्वारा सूफी मत पर एक पुस्तक की रचना की गई जो रहतुल कुलुब के नाम से जानी जाती है।

अमीर खुसरो, जियाउद्दीन बरनी, अमीर हसन देहलवी ये तीनों इनके प्रमुख शिष्य थे तथा अमीर हसन देहलवी के द्वारा सूफीमत पर एक ग्रन्थ जिसे फवायद - उल - फुवैद कहा जाता है। अमीर खुसरो द्वारा अफजल - उर - फौद ग्रन्थ की रचना की।

निजामुद्दीन औलिया के दो प्रमुख शिष्य → ① नासिरुद्दीन चिराग देहलवी
② बुरहानुद्दीन गरीब

बुरहानुद्दीन गरीब मोहम्मद तुगलक के आदेश से दक्षिण भारत जाकर दौलताबाद में अपनी खानकाह स्थापित की तथा दक्षिण भारत में सूफी मत को स्थापित करने का श्रेय इन्ही को दिया जाता है।

नासिरुद्दीन चिराग देहलवी द्वारा दिल्ली में खानकाह स्थापित की। इनके द्वारा सूफीमत पर दो ग्रन्थो की रचना की गई-

① खैरुल मजलिस ② मिफ्ता - उल - आशिकीन

शेख हुसेनी गेसुदराज → ये देहलवी के शिष्य थे तथा दिल्ली पर तैमूरलंग के आक्रमण के बाद दक्षिण भारत में स्थित गुलबर्गा में बस गये। इनके द्वारा दक्षिण भारत में सूफी मत को काफी लोकप्रिय बनाया गया तथा गुलबर्गा सूफीमत का सबसे प्रमुख केन्द्र बन गया।

गेसुदराज पहले सूफी सन्त थे जिन्होंने सरकारी भेंट स्वीकार की। इन्हें बहमनी राज्य के सुल्तान ताजुद्दीन फिरोजशाह के द्वारा चार गांव जागीर में दिए गए।

हुसेनी गेसुदराज के बाद चिश्ती सिलसिले का लगभग पतन हो गया। लेकिन बाद में अकबर के समय शेख सलीम चिश्ती के नेतृत्व में चिश्ती सिलसिले को दोबारा लोकप्रियता मिली।

सोहरावर्दी सिलसिला

सोहरावर्दी मत की स्थापना 12 वीं शताब्दी में बगदाद में शिहाबुद्दीन सोहरावर्दी के द्वारा की गई। किन्तु भारत में इस सिलसिले का प्रथम सन्त बहाउद्दीन जकारिया को माना जाता है। जिन्होंने मुल्तान में अपनी खानकाह स्थापित की। वह सुल्तान इल्तुतमिश के समकालीन थे। इल्तुतमिश द्वारा उन्हें शेख - उल - इस्लाम के पद पर नियुक्त किया गया।

* इस मत के सन्त सरकारी पद / भेंट प्राप्त करना अनुचित मानते थे।
* ये वृहत्त उपवास करने व शरीर को कष्ट देने में विश्वास नहीं करते थे बल्कि वे एक सन्तुलित एवं आरामदायक जीवन पसन्द करते थे।
* इनमें वंशानुगत उत्तराधिकारी की प्रथा विद्यमान थी।

बहाउद्दीन जकारिया के बाद भारत में इसके प्रमुख सन्त

1. शेख सदरुद्दीन आरिफ (मुल्तान) → ये बहाउद्दीन जकारिया के पुत्र थे जो उनकी मृत्यु के बाद मुल्तान की खानकाह के अध्यक्ष बने।
2. जलालुद्दीन सुर्ख बुखारी → जकारिया के सबसे प्रिय शिष्य माने जाते थे इनके द्वारा अपनी खानकाह उच्छ में स्थापित की। इस प्रकार भारत में सोहरावर्दी मत के मुल्तान व उच्छ दो मुख्य केन्द्र बन गए।
3. रुकनुद्दीन अबुल फथ → सदरुद्दीन आरिफ के पुत्र थे तथा अपने पिता के बाद मुल्तान के खानकाह को ग्रहण किया।
4. जलालुद्दीन मखदूम - ए - जहानियां → बुखारी के बाद उच्छ खानकाह को ग्रहण किया। मुहम्मद - बिन - तुगलक ने इन्हे शेख - उल - इस्लाम के पद पर नियुक्त किया।

शियाउद्दीन सोहरावर्दी द्वारा एक पुस्तक जिसको अवारिफ - उल - मवारिफ कहा जाता है। भारत में इनके अलावा इस मत को लोकप्रिय बनाने में जलालुद्दीन तबरीजी का भी मुख्य योगदान है। ये शियाउद्दीन के शिष्य थे। इन्होंने लखनऊ में अपनी खानकाह स्थापित की।

बाद में ये मत दो शाखाओं में विभाजित हो गया-

① बा शरा ② बे शरा

बाशरा शाखा के सन्त इस्लामी प्रथा में विश्वास करते थे, जबकि बेशरा मत वाले इस्लामी परम्परा में विश्वास नहीं था।

कादरी सिलसिला

इसकी स्थापना 12 वीं शताब्दी में बगदाद में अब्दुल कादिर जिलानी के द्वारा किया गया तथा भारत में इसका आगमन 15 वी शताब्दी में आने वाले प्रथम कादिर सन्त मोहम्मद गौस को माना जाता है। इनकी खानकाह उच्छ में थी तथा सिकन्दर लोदी इनका अनुयायी था। अपनी पुत्री का विवाह इनके साथ किया।

इनके बाद भारत में इसे लोकप्रिय बनाने में नासिरुद्दीन महमूद जिलानी

का मुख्य योगदान रहा लेकिन बाद में यह सिलसिला कुछ शाखाओं में विभाजित हो गया, जिनमें मीर खैल शाखा सबसे प्रमुख थी।

* मीर खैल शाखा के संस्थापक शेख मियां मीर खैल थे, जिन्होंने लाहौर में अपनी खानकाह स्थापित की। ये अकबर, जहांगीर, शाहजहां तीन मुगल सम्राटों के समकालीन थे। शाहजहां का ज्येष्ठ पुत्र दारा इनके विचारों से काफी प्रभावित था। वह इनके शिष्य मुल्ला शाह बदख्शी को अपना गुरु मानते थे। दारा के द्वारा सूफी मत पर दो ग्रन्थों की रचना की गई – ① सकीनात - उल - औलिया
② सफीनात - उल - औलिया
सकीनात औलिया में शेख मियां मीर की जीवनी लिखी है तथा सफीनात में कुछ प्रमुख सूफी सन्तों की जीवनियां लिखी।

नक्शबन्दी सिलसिला

* इसकी स्थापना 13वी शताब्दी में बगदाद में बहाउद्दीन नक्शबन्दी द्वारा की गई। इसी सिलसिले को ख्वाजगा के नाम से भी जानते हैं। इसके सन्त कट्टर इस्लाम में विश्वास करते थे। वे हजरत मोहम्मद के इस्लाम को ही मानते थे। हजरत मोहम्मद के बाद जो परिवर्तन हुए उनके वे कट्टर विरोधी थे।
* भारत में इसका आगमन 16वी शताब्दी में अकबर के समय हुआ। भारत आने वाला प्रथम सन्त ख्वाजा बाकी बिल्ला को मानते हैं।
* किन्तु भारत में इस मत को लोकप्रिय बनाने में प्रमुख योगदान शेख अहमद सरहिन्दी का माना जाता है। वह अकबर व जहांगीर के समकालीन अकबर की उदार धार्मिक नीति के कट्टर आलोचक थे। इसलिए अकबर व बाद में जहांगीर ने दो बार जैल में बन्द किया।
* शेख अहमद सरहिन्दी वहादत - उल - वुजूद के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते थे इसकी जगह वहादत उल शुहुद का नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया।
इनके अनुसार आत्मा व परमात्मा में समानता का सम्बन्ध नही है तथा आत्मा परमात्मा का अंश नही है। इनमें स्वामी व सेवक का संबंध है।
* सरहिन्दी स्वंय को मजतदिद व कय्यूम मानते थे। मजतदिद → इस्लाम का उद्धारक, कय्यूम → ईश्वर का पैगम्बर

* इनका सूफी मत पर लिखा गया ग्रन्थ मुक्तूबात रब्बानी था।
सरहिन्दी के बाद भारत में इस मत के प्रमुख सन्त →
मोहम्मद मासूम → औरंगजेब के गुरु थे। ऐसा माना जाता है कि औरंगजेब द्वारा इन्ही की सलाह पर मुगल दरबार में संगीत पर प्रतिबन्ध लगाया व जजिया कर पुनः लागू किया।
शाह वली उल्ला → 18वी शताब्दी के प्रारम्भ में मुगल सम्राट बहादुरशाह के समकालीन थे। उनका मुख्य योगदान वहादत - उल - वुजूद व शुहुद में सांमजस्य स्थापित करना था।
ख्वाजा मीर दर्द → भी 18वी शताब्दी में हुए। वे उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे। इनके द्वारा एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसको इल्मे इलाही मुहम्मदी के नाम से जाना गया। वे हजरत मुहम्मद की शिक्षाओं का पालन करना ही मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन मानते थे।

इन चार सिलसिलो के अतिरिक्त कुछ ओर मत भारत में विकसित हुए →

फिरदौसी सिलसिला का भारत में मुख्य केन्द्र राजगीर को माना जाता है, जो बिहार प्रान्त में है। इसकी स्थापना शरफुद्दीन मनेरी द्वारा की गई
ऋषि सिलसिला की उत्पति व प्रसार कश्मीर में हुआ। इसके संस्थापक शेख नुरुद्दीन को माना जाता है। इस पर शैव मत का प्रभाव था।

यद्यपि सूफी मत के विभिन्न सिलसिलो में कुछ अन्तर मिलता है, किन्तु फिर भी कुछ ऐसी मौलिक सिद्धान्त जिन पर सभी एक मत है –

I. सभी सूफी सन्त ईश्वर की एकता में विश्वास करते थे।
II. सभी सन्तो का मानना था कि प्रेम के द्वारा ही ईश्वर प्राप्ति सम्भव। इसलिए सृष्टि के प्रत्येक जीव के प्रति दया भाव रखने पर बल देते थे तथा मांस भक्षण नहीं करते थे
III. यद्यपि ईस्लाम में संगीत वर्जित था लेकिन ये सन्त संगीत को ईश्वर प्राप्ति का मुख्य माध्यम मानते थे। उदाहरण के लिए औलिया का यहां तक मानना था कि संगीत से हृदय को असीम शक्ति प्राप्त होती है जिससे ईश्वर के साथ साक्षात्कार हो जाता है।
IV. ये ईश्वर की प्राप्ति के लिए गुरु / पीर का निर्देशन आवश्यक मानते थे।

5. बलूतेदार → महाराष्ट्र में ग्रामीण दस्तकार व अन्य ग्राम सेवक बलूतेदार होते थे इनकी संख्या 12 होती थी।

भक्ति आन्दोलन

अभिप्राय → हिन्दु धर्मशास्त्रो के अनुसार मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति माना जाता है। हिन्दु धर्म शास्त्रों में मोक्ष प्राप्ति के 3 मुख्य माध्यम माने गये हैं -

i. ज्ञान ii. कर्म iii. भक्ति

* सल्तनत काल के दौरान अनेक ऐसे हिन्दु सन्त हुए जिन्होने हिन्दु धर्म एवं समाज में सुधार के लिए जो आन्दोलन चलाया। उसमें उन्होने पूर्ण समर्पण के भाव से ईश्वर की भक्ति पर विशेष बल दिया। इसलिए इतिहासकारो द्वारा इस सुधार आन्दोलन को भक्ति आन्दोलन की संज्ञा दी गयी

उत्पत्ति के कारण -

i. कुछ इतिहासकारो जिनमें डॉ. ताराचन्द (इनफ्लेन्स आफ इस्लाम इन इण्डियन कल्चर), डॉ. युसुफ हुसैन (द गलिम्पस ऑफ मिडवाइल इण्डियन कल्चर) इनका मानना है कि भक्ति आन्दोलन की उत्पति हिन्दु धर्म पर इस्लाम के प्रभाव के फलस्वरूप हुई किन्तु इन इतिहासकारो के इस मत को पूरी तरह सही नहीं माना जाता क्योंकि भारत में भक्ति की परम्परा इस्लाम धर्म के आगमन से पहले ही प्रचलित रही।

ii. अधिकांश इतिहासकारो का मत मानना है कि भक्ति आन्दोलन की उत्पति वास्तव में दक्षिण भारत में हुई और दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में आलवार सन्तों (वैष्णव) का मुख्य योगदान था। जिनकी कुल संख्या 12 थी।

* जिनमें प्रमुख थे - i. पेरियालवार ii. मम्मालवार iii. तिरुमल शाई iv. कुलशेखर v. भूतम् vi. आंडाल (महिला) → (दक्षिण की मीरा)
* ये सभी वैष्णव मत के अनुयायी थे।
* इनमें से अधिकांश आलवार सन्त निम्न जाति के थे किन्तु इन सन्तों ने पूर्ण समर्पण और श्रद्धा के भाव से ईश्वर की भक्ति पर बल दिया तथा उनका जीवन अत्यन्त सरल, पवित्र जीवन का निर्वाह किया,

उसके फलस्वरूप इन्होंने दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन को काफी लोकप्रिय बनाया। अलवार सन्तो द्वारा ईश्वर की भक्ति के लिए तमिल भाषा में अनेक पदों की रचना की गयी थी। जिन्हे बाद में 10 वीं शताब्दी में नाथ मुनि के द्वारा एक ग्रन्थ के रूप में संकलित कर लिया गया था जिसे नालियार दिव्य प्रबन्धम् के नाम से जाना जाता है। यह भक्ति मत पर लिखा गया पहला प्रमाणिक ग्रन्थ था।

बाद में दक्षिण भारत से ही भक्ति आन्दोलन का प्रसार उत्तर भारत में रामानन्द के द्वारा किया गया। बाद में उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में रामानन्द के अतिरिक्त कबीर, नानक, वल्लभाचार्य, चैतन्य आदि सन्तो का मुख्य योगदान रहा है।

बाद में जाकर भक्ति आन्दोलन सगुण और निर्गुण दो विचारधाराओं में विभाजित हो गया।

सगुण विचारधारा के सन्तो का यह मानना था कि एक ईश्वर का एक निश्चित स्वरूप होता है और उसे विष्णु, राम, कृष्ण किसी भी नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। रामानन्द, वल्लभाचार्य, चैतन्य आदि सगुण विचारधारा के प्रमुख सन्त थे।

निर्गुण विचारधारा के सन्तो का यह मानना था कि ईश्वर निर्गुण और निराकार होता है और उसे किसी भी नाम से सम्बोधित नहीं किया जाता। कबीर तथा नानक निर्गुण विचारधारा के प्रमुख सन्त थे।

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त-

1. रामानुज - जन्म 11 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में तिरुपति (AP) में हुआ। वह विष्णु के उपासक थे। रामानुज द्वारा प्रतिपादित मत विशिष्टाद्वैत था। विशिष्टाद्वैत से उनका यह अभिप्राय था कि ईश्वर सर्व शक्तिमान है और ईश्वर से ही जगत की उत्पत्ति हुयी है और वही जगत का पालन और विनाश करता है। आत्मा और जगत ईश्वर के ही विभिन्न रूप हैं। किन्तु आत्मा भी निरन्तर ईश्वर भक्ति द्वारा उसे प्राप्त कर सकती है।

रामानुज के द्वारा श्रीसम्प्रदाय की स्थापना की गयी।

रामानुज द्वारा संस्कृत में श्रीभाष्य की रचना की गयी।

यद्यपि रामानुज ने निम्न वर्ग के लोगों को अपना शिष्य नहीं बनाया था किन्तु पहली बार यह घोषित किया कि यदि निम्न वर्ग के लोग भी पूर्ण समर्पण और श्रद्धा के भाव से ईश्वर की भक्ति करें तो वे भी मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

गुरु → यमुनाचार्य

2. निम्बार्क - रामानुज के समकालीन थे और वह तैलंग ब्राह्मण थे। किन्तु बाद में उत्तर भारत आकर वृंदावन में बस गये।
निम्बार्क कृष्ण के उपासक थे। निम्बार्क राधा और कृष्ण के सामूहिक रूप को ही कृष्ण का वास्तविक रूप मानते थे।
निम्बार्क द्वारा प्रतिपादित मत द्वैताद्वैत था।
द्वैताद्वैत से उनका अभिप्राय था कि ईश्वर, आत्मा और जगत तीनों में एकता होते हुये भी परस्पर विभिन्नता विद्यमान है। उनमें भिन्नता इस रूप में है, क्योंकि ईश्वर के साथ-2 आत्मा और जगत का भी एक पृथक अस्तित्व है। किन्तु उनमें एकता इस रूप में विद्यमान है क्योंकि आत्मा और जगत अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर पर निर्भर करते हैं।
निम्बार्क द्वारा स्थापित सम्प्रदाय सनकादि सम्प्रदाय था।
राजस्थान में निम्बार्क सम्प्रदाय की पीठ अजमेर में स्थित सलेमाबाद है जिसे स्वामी परशुनाथ (परशुराम) के द्वारा स्थापित की गयी।

3. मध्वाचार्य - जन्म 1199 में कर्नाटक में स्थित वेजली नामक गाँव में। मध्वाचार्य विष्णु के उपासक थे। उनके द्वारा प्रतिपादित मत द्वैतवाद। द्वैतवाद से उनका यह अभिप्राय था कि ईश्वर का आत्मा और जगत से पृथक अस्तित्व है, किन्तु ईश्वर ही आत्मा और जगत को नियंत्रित करता है। ईश्वर और आत्मा में बराबर का संबंध न होकर स्वामी और सेवक का संबंध होता है।
मध्वाचार्य द्वारा स्थापित सम्प्रदाय ब्रह्म सम्प्रदाय था।
मध्वाचार्य द्वारा संस्कृत में रचित पुस्तक - पूर्णप्राज्ञ भाष्य

4. रामानन्द - जन्म 14 वीं शताब्दी के अन्त में इलाहाबाद में हुआ किन्तु रामानन्द की अधिकांश शिक्षा बनारस में हुयी।
रामानन्द भक्ति आन्दोलन के अत्यन्त प्रगतिशील सन्त माने जाते हैं

जिन्होंने भक्ति आन्दोलन को लोकवादी रूप प्रदान किया। रामानन्द प्रारम्भ में रामानुज द्वारा स्थापित श्रीसम्प्रदाय के अनुयायी बने किन्तु बाद में वह श्रीसम्प्रदाय के अध्यक्ष बने। रामानन्द रामानुज द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत के मत में ही विश्वास करते थे। किन्तु वह रामानुज के विपरीत विष्णु की जगह राम के उपासक थे।

रामानन्द पहले भक्ति सन्त थे जिन्होंने संस्कृत की जगह हिन्दी को अपने उपदेशों का माध्यम बनाया। इसलिए उनके उपदेशों का आम जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा।

रामानन्द जातिगत भेदभाव के कट्टर विरोधी थे और उनका मानना था कि जन्म के आधार पर ही किसी भी व्यक्ति को मोक्ष प्राप्ति से वंचित नहीं किया जा सकता।

रामानन्द ने उच्च वर्ग के साथ-2 निम्न वर्ग के लोगों को अपना शिष्य बनाया उनके 12 प्रमुख शिष्यों में से रैदास, कबीर, सेना (नाई) निम्न जाति के थे। रामानन्द द्वारा स्त्रियों को भी अपना शिष्य बनाया और सुरसरी तथा पद्मावती उनकी प्रमुख शिष्याएं थी।

रामानन्द के द्वारा भक्ति मत पर हिन्दी भाषा में आनन्द भाष्य ग्रन्थ लिखा।

5. वल्लभाचार्य - जन्म 1479 में बनारस में हुआ। किन्तु वह मूलतः तेलंगाना के निवासी थे। कुछ समय के लिए वे विजयनगर के सम्राट कृष्णदेवराय के दरबार में भी रहे। किन्तु बाद में वृंदावन में बस गये।

बाद में वृंदावन को छोड़कर इलाहाबाद में रहने लगे। इलाहाबाद में इन्होंने जल समाधि ले ली।

वल्लभाचार्य श्रीनाथ जी के उपासक थे और श्रीनाथ जी कृष्ण के बाल रूप को माना जाता है।

वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित सम्प्रदाय वल्लभ सम्प्रदाय / पुष्टिमार्गीय था। वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त शुद्धाद्वैत था। शुद्धाद्वैत से उनका अभिप्राय यह था कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और वही जगत की उत्पत्ति और विनाश करता है। जगत ही ईश्वर का प्रत्यक्ष रूप है। जगत आत्मा और तत्वों से मिलकर बना है। उन्होंने आत्मा की परमात्मा के साथ एकता पर विशेष बल दिया।

वल्लभाचार्य का U.P., राजस्थान, गुजरात में भक्ति आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में मुख्य योगदान रहा।

वल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ का भी वल्लभ सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने में मुख्य योगदान रहा था। उनकी भक्ति भाव से प्रभावित होकर अकबर ने उन्हें जतीपुरा का गांव धार्मिक जागीर के रूप में दिया गया।

अष्टछाप → वल्लभसम्प्रदाय में 8 ऐसे सन्त कवि हुए जिन्हें अष्टछाप के नाम से जाना जाता है। I. कुम्भनदास II. कृष्णदास III. परमानन्ददास IV. सूरदास V. चतुर्भुजदास VI. गोविन्द दास VII. नन्ददास VIII. छीतस्वामी

(प्रथम 4 वल्लभाचार्य अन्तिम 4 विट्ठलनाथ के अनुयायी। कुल - 84 थी)

6. चैतन्य → जन्म 1486 में नदिया / नवद्वीप (बंगाल) में हुआ।

बचपन का नाम - विश्वम्भर

उनका नाम गौरांग भी था। सम्प्रदाय - चैतन्य सम्प्रदाय

गुरु - ईश्वर पुरी (गौड़ीय परम्परा पर)

ईश्वरपुरी ने ही उनमें कृष्ण के प्रति भक्ति का भाव जागृत किया। किन्तु चैतन्य बाद में स्थायी रूप से जगन्नाथ पुरी में बस गये। बंगाल तथा उड़ीसा में भक्ति आन्दोलन को लोकप्रिय बनाया।

उन्होंने बांग्ला भाषा को उपदेशों का माध्यम बनाया। चैतन्य का भक्ति आन्दोलन का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने कीर्तन और नृत्य को ईश्वर की प्राप्ति का मुख्य माध्यम माना क्योंकि उनका मानना था कि श्रद्धा और ~~समर्पण~~ भक्ति के साथ-2 कीर्तन, नृत्य के द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि व्यक्ति का परमात्मा के साथ साक्षात्कार हो जाता है।

चैतन्य ने बिना किसी जातिगत और धर्म के भेदभाव के निम्न वर्ण के साथ-2 मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाया था और उनका प्रमुख शिष्य हरिदास इस्लाम का अनुयायी था।

7. कबीर → जन्म 1440 में बनारस में माना जाता है। कबीर प्रसिद्ध भक्ति सन्त रामानन्द के शिष्य थे। किन्तु रामानन्द के विपरीत

गोपालदास - सुखनिधान ग्रन्थ
बीजक का संकलन भागोदास ने किया

निर्गुण परम्परा के सन्त थे। (शिष्यों द्वारा पदों को संकलित किया जिसे दासग्रन्थ कहते हैं
कबीर का धार्मिक कर्मकाण्डो और आडम्बरो मे विश्वास नहीं था। उन्होंने
न केवल हिन्दु धर्म बल्कि इस्लाम धर्म में भी व्याप्त धार्मिक आडम्बरो की
भी कटु आलोचना की थी।
कबीर ~~प्रथम~~ पहले भक्ति सन्त थे जिन्होंने ईश्वर की भक्ति के लिए
गृहस्थ जीवन का परित्याग आवश्यक नहीं माना।
कबीर ईश्वर की भक्ति के लिए गुरू का निर्देश आवश्यक मानते थे बल्कि वह
गुरू का दर्जा ईश्वर से भी बड़ा मानते हैं।
कबीर पर सूफी मत का गहरा प्रभाव था और उन्हे फारसी ग्रन्थ
सिरातुल असर में फिरदौसी सिलसिले का अनुयायी माना गया है।
तीन प्रमुख शिष्य → गोपालदास, धर्मदास, भागोदास

8. नानक → जन्म 1469 में तलवण्डी में हुआ। (पाकिस्तान के शेखुपुरा में)
इसे अब ननकाना साहिब कहते हैं। नानक भी कबीर की भाँति निर्गुण सन्त थे।
नानक पर भी सूफी मत का गहरा प्रभाव था तथा उन पर चिश्ती सिलसिले
के प्रमुख सन्त शेख फरीद का गहरा प्रभाव था।
शिक्षाएं संकलित - गुरुग्रन्थ साहिब

पेशवाओ की शक्ति का उत्थान तथा मराठा शक्ति के उत्थान में पेशवाओं का योगदान

1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रो में उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष हुआ (आजम एवं मुअज्जम)। आजम उस समय दक्षिण भारत में औरंगजेब के पास मौजूद था। अतः जब आजम आगरा पर अधिकार करने के उद्देश्य से उत्तर भारत के लिए रवाना हुआ तब उसने छत्रपति शम्भाजी के पुत्र शाहू को मुगल कैद से रिहा करके इस उद्देश्य से महाराष्ट्र भेज दिया गया था कि वह छत्रपति के पद के लिए अपना दावा प्रस्तुत करेगा और ताराबाई अपने पुत्र छत्रपति शिवाजी II के होते हुए शाहू को छत्रपति स्वीकार नहीं करेगी।

शाहू तथा ताराबाई के बीच सत्ता के लिए जो संघर्ष होगा उसके कारण मराठे गृहयुद्ध में उलझ जायेंगे और वे दक्षिण भारत में स्थित मुगल प्रान्तों पर आक्रमण नहीं कर सकेंगे।

अध्याय-23

अर्थव्यवस्था : कृषि, उद्योग, व्यापार, बैंकिंग और नगरीय केन्द्र

आलौच्य काल की अर्थव्यवस्था के विषय में हमें तत्कालीन फारसी और अरबी ग्रन्थों में बहुत ही कम जानकारी मिलती है। किन्तु उपयोगी सामग्री उस काल के संस्कृत तथा क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य में उपलब्ध है। कुछ विदेशी पर्यटकों के विवरणों से भी उस समय में हमारे देश की आर्थिक स्थिति का पता चलता है। मुसलमानों ने भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने के बाद यहाँ की सम्पन्न अर्थव्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। फलस्वरूप 1526 ई. से 1556 ई. तक यहाँ परम्परागत अर्थव्यवस्था प्रचलित रही। आज की भाँति उस समय भी भारत एक कृषि प्रधान देश था। खेती भी प्राचीन ढंग से की जाती थी। हल, कसी, खुरपी, पटेला हंसिया, बैलों की जोड़ी अन्नोपार्जन के काम में लिए जाते थे। सिंचाई के लिए नहरें बहुत कम थी। खेती वर्षा पर निर्भर थी। वर्षा के अभाव में जन-जीवन संतप्त हो जाता था। अन्यथा जीवन बड़ा सरल, परिवर्तनशून्य तथा अनुन्नतिशील था। किन्तु ग्राम समुदाय अपने में पूर्ण थे। ग्रामवासियों की आवश्यकताएँ गाँव में ही पूर्ण हो जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति का एक नियत कार्य था। किसान खेत जोतता, बोता तथा काटता था। स्त्रियाँ घर का काम-काज करती थी तथा पशुओं की सेवा करती थी। बढ़ई, लौहार औजार बनाते थे। किसान उन्हें भोजन देता था। मोची जूते बनाते थे। धोबी, नाई, चरवाहा, ग्वाला, भंगी, पुजारी, ज्योतिषी, वैद्य आदि सभी अपने-अपने निश्चित कार्य करते थे। खेती के साथ-साथ कुछ ग्रामीण उद्योग-धन्धे भी पनपते थे, जैसे-रस्सी और टोकरी बनाना, शक्कर गुड़, इत्र, तेल आदि बनाना। गाँव में छोटे-छोटे बाजार लगते थे, जहाँ कपड़ा, मिठाइयाँ तथा अन्य दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ बिक्री के लिए आती थी। बाजार में कभी-कभी एक आदमी सिक्कों की ढेरी लगाकर बैठता था, जिसका काम एक सिक्के के बदले दूसरे सिक्के देना था।

उपज-यह बताना कठिन है कि उन दिनों खेती का क्षेत्रफल कितना होता था। मुख्य फसलों में गेहूँ, बाजरा, मक्का, चावल, मटर, तिलहन, गन्ना, रुई आदि थी। फलों में आम, अंगूर, केले, खरबूजा, अंजीर, नीबू, खिरनी, जामुन आदि थे। औषधिक जड़ी-बूटियाँ, मसाले और सुगन्धित काष्ठ काफी मात्रा में पैदा किये जाते थे तथा भारत के बाहर उनका विक्रय होता था। अनाज भण्डारण करने का सामान्य तरीका गड्ढों या खत्तियों में रखने का था जिससे बहुत

समय तक अनाज सुरक्षित रखा जा सकता था। दिल्ली के शासकों ने भारतीय फलों की उपज में वृद्धि और किस्म में तरक्की करने के प्रयास किये थे। उन्होंने बागवानी को भी प्रोत्साहन दिया। फीरोजशाह तुगलक ने तो दिल्ली क्षेत्र में 1200 बाग लगवाये थे। प्रथम मुगल सम्राट बाबर को बागों में विशेष रुचि थी। उसने अनेक बागों का निर्माण ईरानी शैली के अनुसार करवाया, जिसमें कृत्रिम झरने तथा ढलुआ जमीन पर चबूतरे आदि होते थे।

प्रौद्योगिकी–प्राचीनकाल से भारत में जो प्रौद्योगिकी का विकास आरम्भ हुआ, वह मध्यकाल में भी चलता रहा। मध्यकाल में भी भूमि की कमी नहीं थी तथा अनेक क्षेत्रों में दो अथवा तीन फसलें हो जाती थीं, बशर्ते कि सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध हो। यद्यपि मध्यकालीन शासक सिंचाई के साधनों पर पर्याप्त ध्यान देते थे, फिर भी अधिकांश खेती वर्षा पर निर्भर करती थी। मध्ययुगीन शासकों ने उन्नत प्रौद्योगिकी की सहायता से बांध बनवाये और बड़े-बड़े जलाशयों से सिंचाई के लिए नहरें निकाली गई। सिंचाई प्रौद्योगिकी के तीन पक्ष थे–नहरों की खुदाई, कुओं और नदियों से पानी को खींचकर खेतों तक पहुँचाने के लिए नालियाँ बनवाना तथा पुराने जल–स्रोतों की मरम्मत कर उपयोगी बनाना। मुसलमानों के आने के बाद मुस्लिम शासकों ने यहाँ मध्य एशिया में पैदा किये जाने वाली फसलें भारत में विकसित कीं। उन्होंने नये फल-फूलों को पैदा करने की तकनीकी विकसित की। इसके लिए खेती के कुछ नये उपकरणों का भी विकास किया गया। इन नये उपकरणों की सहायता से आलू की फसल तैयार की जाने लगी, अँगूरों की उपज करवाई तथा भारत में पहली बार तरबूज पैदा किये गये। यद्यपि खेत जोतने के लिए हल का ही प्रयोग किया जाता था, लेकिन अब हल के नीचे लोहे के तीखे फलक लगाये जाने लगे जिससे भूमि को अधिक गहराई से खोदा जा सके। फसल काटने के लिए लोहे की दरांती का प्रयोग किया गया। तैयार फसल को खलिहान में उसे साफ करने तथा उससे भूसा निकालने की परम्परागत पद्धति ही काम में ली जाती थी। इस विवरण से स्पष्ट है कि कुछ नई फसलें पैदा करने के अलावा खेती की प्रौद्योगिकी में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई थी।

आलोच्यकाल में युद्ध प्रौद्योगिकी का निरन्तर विकास होता गया। अब सैनिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। मुसलमानों ने युद्धों में तोपें और बन्दूकों का प्रयोग आरम्भ किया। अतः भारत में तोपें और बारूद बनाने की प्रौद्योगिकी का विकास हुआ। सर्वप्रथम मुगल सम्राट बाबर ने युद्ध में तुलुगमा पद्धति का प्रयोग किया, जो अधिक कारगर सिद्ध हुई। फलस्वरूप अब शत्रु सेना को घेरने की नई रणनीतियों का प्रयोग किया जाने लगा। अब सैनिकों की सुरक्षा के लिए धातु–निर्मित कवचों का प्रयोग अत्यधिक बढ़ गया। परन्तु इस काल में अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की प्रौद्योगिकी में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

इस युग में वस्त्र–प्रौद्योगिकी, विशेषकर सूती कपड़ा बुनने की प्रौद्योगिकी का अभूतपूर्व विकास हुआ। सूती और रेशमी दोनों तरह के कपड़े बुनने की उन्नत तकनीक विकसित हुई। फलस्वरूप आलौच्यकाल में वस्त्र उद्योग भारत का सबसे बड़ा उद्योग बन गया। नये प्रकार के कपड़े तैयार होने लगे। ढाका की बनी हुई मलमल तो पूरे विश्व में अपनी बारीकी के लिए प्रसिद्ध हो चुकी थी। ढाका में ऐसे करघे बनाये गये जिनसे बना हुआ कपड़ा अधिक कीमत का होता था। सुल्तानों और सम्राटों के वस्त्रों के लिए लाहौर और लखनऊ में 'चीकन' का वस्त्र तैयार किया

जाता था। कालीकट के सिरोंज का कपड़ा तो अत्यन्त बारीक होता था। रेशमी वस्त्रों पर सोने-चाँदी के तारों से कसीदाकारी की उन्नत तकनीक भी विकसित हुई। सूती और रेशमी वस्त्रों के अतिरिक्त ऊनी वस्त्र–प्रौद्योगिकी का भी विकास हुआ। कश्मीर में ऊनी शाल बहुत ही मुलायम बनाये जाते थे। वस्त्रों की रंगाई और छपाई प्रौद्योगिकी भी विकसित हुई। अनेक रसायनों से भाँति-भाँति के रंग तैयार किये जाते थे। सूती वस्त्र रंगने में, विशेष रूप से बांधनू की रंगाई की प्रौद्योगिकी अत्यन्त प्रसिद्ध थी।

इस युग में धातु–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई। कांसे, पीतल, लोहे, सोना और चाँदी के बर्तन, आभूषण, मूर्तियाँ और अस्त्र–शस्त्र बनाने की प्रौद्योगिकी में काफी विकास हुआ। मुगल सम्राट आभूषणों के बड़े शौकीन थे, अतः आभूषण बनाने वाले शिल्पकार नई–नई डिजाइन के आभूषण तैयार करते थे जिसमें शिल्पकारों की तकनीक-कुशलता स्पष्ट दिखाई देती थी। पीतल और कांसे के बर्तन बनाने की प्रौद्योगिकी अत्यन्त विकसित हुई। धातु को गर्म करके उसे पीट–पीटकर चदरें बनाई जाती थीं और फिर उन चदरों से तश्तरियाँ, थालियाँ, कटोरियाँ आदि बनाई जाती थीं। इस काल में पीतल की सुन्दर कलात्मक सुराहियाँ बनाने की तकनीक भी विकसित हुई। धातु के बर्तनों पर सुन्दर नक्काशी का काम होता था। लोहे को शुद्ध करने की प्रौद्योगिकी से भारतवासी परिचित थे तथा शुद्ध लोहे व सर्वोत्तम इस्पात से तलवारें व बरछे बनाये जाते थे। धातु–प्रौद्योगिकी के अलावा काष्ठ–प्रौद्योगिकी भी काफी विकसित हुई। यद्यपि इस समय तक युद्धों में रथों का प्रयोग कम हो गया था, फिर भी काष्ठ–प्रौद्योगिकी से रथों का निर्माण होता रहा। यद्यपि इस समय तक नौ–सेना विकसित नहीं हुई थी, फिर भी यत्र–तत्र जहाजों का निर्माण होने लगा। व्यापार–वाणिज्य के विकास के साथ ही नावें बनाने की उच्च तकनीक विकसित हुई। माल ढोने के लिए मालवाहक जहाजों का भी निर्माण किया जाने लगा। इनके अलावा लकड़ी का सुन्दर सजावटी सामान भी बनाने की तकनीक विकसित हुई।

यद्यपि आलोच्यकाल में कागज–प्रौद्योगिकी सुविकसित नहीं थी, फिर भी दिल्ली में शमी तथा सीरियन कागज बनाये जाने का उल्लेख मिलता है। बहुसंख्यक हस्तलेखों से भी कागज की उपलब्धता प्रमाणित होती है। लाहौर तथा आगरा के शाही कारखानों में कागज तैयार किया जाता था। विभिन्न प्रयोगों के लिए विभिन्न प्रकार के कागज बनाने की प्रौद्योगिकी भी विकसित हुई, जैसे शाही फरमानों के लिए शोभायुक्त कागज तथा व्यापारियों और दलालों के लिए टिकाऊ प्रकार का कागज बनाया जाता था। जिल्दसाजी के लिए मजबूत कागज बनाया जाता था। इस काल में चमड़े से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाने की तकनीक का भी विकास हुआ। घोड़ों के लिए काठी, लगाम, तलवार के लिए म्यान, जूते, पानी के मशक आदि अत्यधिक मात्रा में बनाये जाते थे। गुजरात में चमड़े की वस्तुएँ बड़ी मात्रा में बनती थी, जिनका अरब देशों में निर्यात किया जाता था। इस काल में गन्ने से चीनी बनाने की तकनीक भी विकसित हुई। लाहौर, दिल्ली, आगरा आदि स्थान चीनी–उद्योग के प्रसिद्ध केन्द्र थे।

आलोच्यकाल में भवन निर्माण, नगर–नियोजन एवं मूर्तियाँ बनाने की प्रौद्योगिकी भी काफी विकसित हुई। भवन निर्माण प्रौद्योगिकी में इस्लामिक शैली का प्रयोग किया गया। अधिकतर इमारतें लाल पत्थर की बनाई गई थीं। बड़े–बड़े पत्थरों को काटकर उन्हें उचित आकार देना

तथा उन्हें आकर्षक बनाने के लिए पत्थरों पर विभिन्न आकृतियाँ ऊकेरना शिल्पकारों की उच्च तकनीक का प्रमाण है। दिल्ली का लाल किला और फतेपुर सीकरी की इमारतें इस युग की उच्च प्रौद्योगिकी के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। कुछ मुस्लिम शासकों तथा उनकी बेगमों के मकबरे संगमरमर पत्थर के बनाये गये थे। संगमरमर के पत्थरों पर की गई नक्काशी देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों पत्थर को कैंची से काटकर नक्काशी की गई हो। मुमताज महल का मकबरा ताजमहल, आबू का देलवाड़ा मन्दिर और फतेपुर सीकरी में शेख सलीम चिश्ती का मकबरा, संगमरमर के भवन-निर्माण प्रौद्योगिकी के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। यद्यपि मुस्लिम शासक मूर्ति बनाना इस्लाम धर्म के विरुद्ध समझते थे, फिर भी विभिन्न प्रान्तों में देव प्रतिमाओं का निर्माण होता रहा। संगमरमर के बड़े-बड़े शिलाखण्डों को उचित आकार में काटकर अपनी छैनी और हथोड़े से प्रतिमा-निर्माण की प्रौद्योगिकी का भी विकास हुआ। हाथी दाँत के सुन्दर खिलौने और कंगन बनाने की तकनीक विशेष रूप से विकसित हुई। हाथी दाँत से सुन्दर कलाकृतियाँ बनाने की तकनीक का विकास आगरा में विशेष रूप से हुआ।

चूँकि इस युग में अफीम का चलन बढ़ने लगा था, इसलिए अफीम के पौधे के फूलों से रस निकालकर अफीम तैयार करने की तकनीक भी विकसित हुई। कश्मीर में तथा कुछ अन्य स्थानों पर तिल तथा अरण्डी के बीज से तेल निकालने की तकनीक भी विकसित हुई। बंगाल और उड़ीसा में पैदा होने वाली लाख से स्त्रियों के लिए चूड़ियाँ, कंगन-कड़े आदि बनाये जाने लगे। इन कंगनों और कड़ों पर रंगीन कांच के टुकड़े लगाकर उन्हें आकर्षक बनाने की तकनीक मुख्य रूप से गुजरात में अधिक विकसित थी। बेंत और बांस के वृक्षों से बांस आदि को छीलकर टोकरी, चटाइयाँ आदि बनाई जाती थीं। मुसलमानों ने यहाँ शतरंज का खेल प्रचलित किया था, अतः अब यहाँ शतरंज के पट्टे भी बनाये जाने लगे। शतरंज के मुहरे भी लकड़ी को काट-छाँटकर बनाने की उच्च तकनीक भी इसी युग में विकसित हुई। लकड़ी व हाथी दाँत से चौपड़ की गोटियाँ बहुत ही सुन्दर बनाई जाने लगीं। इन सभी वस्तुओं को बनाने वाले शिल्पकार उस समय प्रचलित तकनीक से परिचित ही नहीं थे, बल्कि प्रचलित तकनीक का विकास भी कर रहे थे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आलोच्यकाल में खेती, वस्त्र, मकान, नगर-नियोजन, धातु-उद्योग, काष्ठ उद्योग, हाथी दाँत उद्योग आदि क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का पर्याप्त विकास हुआ। यह विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही, जिसका परिणाम हमें आज देखने को मिल रहा है।

कृषि

मध्यकालीन भारत में भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध में विद्वानों ने अलग-अलग मत व्यक्त किये हैं। समकालीन यूरोपियन यात्री सम्राट को भूमि का स्वामी मानते हैं। लेकिन डॉ. इरफान हबीब का मत है कि भूमि का स्वामी न तो सम्राट था और न किसान। कुछ परिस्थितियों में उसका अधिकार मिलकियत का था अर्थात् सिद्धान्ततः भूमि का स्वामी सम्राट था, परन्तु व्यवहारिक रूप से भूमि पर काश्त करने वाले जब तक भू-लगान देते रहते थे, तब तक वे भूमि के मालिक बने रहते थे। सामान्य रूप से किसान न तो भूमि को बेच सकता था और न उससे अलग हो सकता

था। डॉ. नोमान अहमद सिद्दीकी का कहना है कि कृषकों को जमीन बेचने और बन्धक रखने जैसे अधिकार नहीं थे। फिर भी कृषकों का एक वर्ग जिसे मौरुसी कहा जाता था, इस प्रकार के अधिकारों का दावा करता था, जिन्हें दखलदारी का अधिकार (ओक्यूपेंसी राइट्स) कहा जा सकता है। सामान्यतः उन्हें बेदखल नहीं किया जा सकता था और उनके वंशजों का उनके खेतों पर उत्तराधिकार होता था। साथ ही ऐसे किसान भी थे जो जमींदारों की अनुमति से खेत जोतते थे और उन्हें जमींदार इच्छानुसार कभी भी बेदखल कर सकते थे। वस्तुतः कृषकों का वर्गीकरण कई स्तरों एवं श्रेणियों में हो सकता था। किसान यदि अपनी भूमि को छोड़कर अन्यत्र चला जाता तो सरकारी कर्मचारियों को आदेश थे कि उन्हें समझा-बुझाकर वापस ले आयें। औरंगजेब के काल में बहुत-से किसान ताल कोंकण से भागकर जमींदार के पास चले गये। उनको जबरदस्ती वापस लाकर छः सौ गाँवों में बसाया गया था।

मुगलकाल में भूमि को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–एक खालसा भूमि और दूसरी गैर-खालसा (जागीर, साराण आदि)। अकबर के शासनकाल में जागीरदार अर्द्ध-स्वतन्त्र शासक थे। सम्राट का उनके आन्तरिक शासन में अधिकार नहीं था और वह उसमें हस्तक्षेप भी नहीं करता था। खालसा भूमि सीधी सम्राट के नियंत्रण में थी। मालगुजारी निश्चित करने के लिए भूमि को सोलज, परती, चाचर व बंजर में बाँटा गया था। यह वर्गीकरण भूमि को जोतने पर आधारित था। पोलज वह भूमि थी जिसे प्रत्येक वर्ष जोता जाता था। परती को कुछ समय के लिए बिना जोते ही छोड़ दिया जाता था। चाचर भूमि तीन-तीन, चार-चार साल के लिए अनजुती छोड़ दी जाती थी और बंजर भूमि वह थी जिस पर पाँच साल से अधिक समय तक कोई उपज नहीं होती थी। प्रथम दो प्रकार की भूमियों (पोलज तथा परती) को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया–अच्छी, मध्यम और खराब। इन तीन श्रेणियों की प्रति बीघा औसत उपज को पोलज अथवा परती के प्रति बीघा की सामान्य उपज मान लिया गया था। इन दोनों श्रेणियों की भूमि में विशेष अन्तर नहीं था, क्योंकि जिस वर्ष भी परती भूमि पर खेती की जाती थी, उसकी उपज पोलज के समान ही हुआ करती थी। चाचर भूमि में जब पहले साल खेती होती थी तो निश्चित दर का 2/5 भाग लिया जाता था और पाँच साल खेती होने के पश्चात् उस पर सामान्य दर से मालगुजारी वसूल की जाती थी। इसी प्रकार बंजर भूमि पर भी पाँच साल के बाद पूरी दर से मालगुजारी वसूल की जाती थी।

भारत प्रारम्भ से ही कृषि प्रधान देश रहा है। खेती प्राचीन ढंग से ही की जाती थी। हल, कसी, खुरपी, पटेला, हंसिया, बैलों की जोड़ी अन्नोपार्जन के काम में लाये जाते थे। सिंचाई के लिए नहरें बहुत ही कम थी। खेती वर्षा पर निर्भर थी। अतः भगवान इन्द्रदेव की कृपा के सभी अभिलाषी थे। वर्षा के अभाव में प्रजा संतप्त हो जाती थी। अन्यथा जीवन बड़ा सरल, परिवर्तनशून्य तथा अनुन्नतिशील था। किन्तु ग्राम समुदाय अपने में पूर्ण थे। ग्रामवासियों की आवश्यकताएँ गाँव में ही पूर्ण हो जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति अपना नियत कार्य करता था। किसान खेत जोतता, बोता तथा काटता था। उस समय खेतों का क्षेत्रफल कितना होता था, यह बताना बहुत मुश्किल है। मुख्य फसलों में गेहूँ, बाजरा, मक्का, चावल, मटर, तिलहन, गन्ना, रुई आदि थी। फलों में आम, अंगूर, अनार, केले, खरबूजा, अंजीर, नीबू, खिरनी, जामुन आदि थे। औषधिक जड़ी-

इसलिए शोषण होने पर भी वह खेती करता रहता था, जब तक कि शोषण की सीमा उसकी सहनशीलता की भावनाओं का गला न घोंट दें। ऐसी स्थिति तब आती थी जब भू-राजस्व की दर प्रतिवर्ष बढ़ते-बढ़ते इतनी हो जाती थी कि किसान का जीना भी दूभर हो जाता था।

उद्योग-धन्धे

गाँवों तथा शहरों में कारीगर तथा शिल्पी अपने पुराने पेशे को कायम रखे हुए थे। उनके औजार भी वही थे और उसमें कोई विशेष तकनीकी विकास नहीं हुआ था। उस समय में बड़े पैमाने पर किसी उद्योग का विकास नहीं हुआ था। अधिकांश उद्योग स्थानीय रूप में थे जो पिता से पुत्र को कई पीढ़ियों तक हस्तान्तरित किये जाते रहते थे। इस प्रकार देश के कई शहर और क्षेत्र अपने विशिष्ट और श्रेष्ठ उत्पादों के लिए मशहूर हो गये थे। इसके अतिरिक्त कई शाही कारखाने भी थे जो फारस देश के ढंग के अनुसार दिल्ली के शासकों द्वारा स्थापित किये गये थे। इन कारखानों में शाही तथा दरबारी लोगों की जरूरत की चीजें बनाई जाती थीं। इनमें सुनार, किमखाव या रेशम तैयार करने वाले, कसीदाकारी करने वाले, चित्रकार, दर्जी, मलमल तथा पगड़ी बनाने वाले आदि अनेक प्रकार के कारीगर होते थे, जो साथ मिलकर काम करते थे। प्रान्तों में भी स्थानीय माँग के अनुसार विभिन्न प्रकार की चीजों को बनाने के लिए कारखाने स्थापित किये गये थे। यहाँ प्रत्येक उधोग का विस्तृत विवरण देना सम्भव नहीं है, केवल कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है–

वस्त्र उद्योग–यह प्राचीन उद्योग था तथा आलोच्य काल में सबसे बड़ा उद्योग था, जिसका विस्तार सम्पूर्ण देश में हुआ। इसके मुख्य केन्द्र बंगाल, गुजरात, बनारस, उड़ीसा और मालवा थे। सूरत, कांवे, पटना, बुरहानपुर और बाद में दिल्ली, आगरा, लाहौर, मुल्तान, ढाका जैसे मुख्य शहर भी विशेष प्रकार के कपड़े तैयार करने के लिए प्रसिद्ध हो गये थे। नये प्रकार के कपड़ों में बैरामी, शानबफ, शीरीबफ और कत्तने रुमी की शुरुआत हो चुकी थी। ढाका में बनी मलमल पूरे विश्व में अपनी बारीकी के लिए प्रसिद्ध हो चुकी थी। इसकी श्रेष्ठता को देखकर विदेशी यात्री भी चकित हो जाते थे। सोनार गाँव में अति उत्तम प्रकार की मलमल तैयार की जाती थी, जिसके एक टुकड़े की कीमत चार हजार रुपये तक होती थी। उत्तम प्रकार की मलमल को बड़े सुन्दर नाम दिये गये थे, जैसे मलमल खास (बादशाह के लिए मलमल), सरकार-ए-आला (नवाबों के लिए निमित्त), आब-ए-रमान (जल-प्रवाह), शबनम (ओस) आदि। अपनी जटिल डिजाइनों के कारण ढाका में करघे पर तैयार किये गये कपड़े सबसे अधिक कीमत के होते थे। लाहौर तथा लखनऊ की 'चीकन' भी बहुत प्रसिद्ध थी। समाना और सुल्तानपुर उत्तम वस्त्रों के लिए विख्यात थे। जौनपुर तो आज भी उत्तम प्रकार की दरी तैयार करने के लिए विख्यात है। कालीकट के सिरोंज के कपड़े तो इतने बारीक होते थे कि उसे पहनने पर भी आदमी नंगा दिखता था।

कासिम बाजार, माल्दा, मुर्शिदाबाद, पटना, काश्मीर और बनारस रेशम उद्योग के मुख्य केन्द्र थे। यद्यपि गुजरात में रेशम का उत्पादन नहीं होता था, किन्तु वहाँ रेशम बुनाई का अच्छा काम होता था। रेशम से तथा रेशमी, सुनहले सोने तथा चाँदी मढे सूतों से सूरत में दरियाँ तैयार

होती थी। गुजरात भी किमखाब, बदला कुर्त्ता, कसीदाकारी के वस्त्र तथा किनारी (चाँदीतार) आदि के लिए प्रसिद्ध था। असम भी रेशमी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था। दक्षिण में कोयंबतूर के समीप रेशम उत्पादन का एक बड़ा केन्द्र था।

देश में काबुल, काश्मीर तथा पश्चिमी राजस्थान में ऊन तैयार करने के प्रसिद्ध केन्द्र थे। किन्तु उत्तम प्रकार की ऊन तिब्बत से आती थी। काश्मीर के शाल बहुत मुलायम तथा गर्म होते थे। काश्मीर केवल शाल बनाने का केन्द्र नहीं था, अपितु ऊनी वस्त्र, कम्बल आदि तैयार करने का भी प्रसिद्ध केन्द्र था। लाहौर, आगरा व पटना शाल बनाने के अन्य केन्द्र थे। ऊनी वस्त्र उद्योग के अन्य केन्द्र बुरहानपुर, जौनपुर तथा अमृतसर थे।

आलौच्य काल में रंगाई उद्योग भी उल्लेखनीय है। लाहौर और उसके आसपास नील का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन होता था। दिल्ली सूती वस्त्र रंगने में, विशेष रूप से बांधनू की रंगाई के काम के लिए, प्रसिद्ध था। बैना तथा समीपवर्ती क्षेत्रों का रंगाई का काम अति उत्तम माना जाता था। दूसरे दर्जे की उत्तम रंगाई गुजरात में सरखेज तथा गोलकुण्डा में की जाती थी। रंगाई के अन्य महत्त्वपूर्ण केन्द्र आगरा, लखनऊ, अहमदाबाद, फरुखाबाद तथा मछलीपट्टम थे। बंगाल में ढाका तथा कासिम बाजार मुख्य थे।

धातु उद्योग–भारतीय–लोहा, पीतल, चाँदी, जस्ता, अभ्रक आदि विभिन्न धातुओं के उपयोग को भलीभाँति जानते थे। धारिया, तलवारें, हथियार तथा बरछों को बनाने में लोहे का उपयोग मुख्य रूप से किया जाता था। भारतवासी लोहे को शुद्ध करने की प्रक्रिया से अच्छी तरह परिचित थे। समकालीन संस्कृत साहित्य में भिन्न प्रकार के लोहे के गुणों का विवरण मिलता है। सर्वोत्तम इस्पात का उपयोग तलवारों और बरछों के निर्माण में होता था, जिनकी अरब तथा फारस देशों में बड़ी माँग थी। श्रीनगर, लाहौर, आगरा, मुल्तान, वजीराबाद, भड़ौच, ढाका तथा चटगाँव ऐसे केन्द्र थे जहाँ नावें, रथ तथा लकड़ी की अन्य वस्तुएँ बनाई जाती थी। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में अधिकांशत: नावें प्रयोग में लाई जाती थी। मुगलों के पास नियमित नौशक्ति नहीं थी, अत: जहाजों के निर्माण को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला, फिर भी लाहौर, वजीराबाद, कोरोमण्डल तट पर मडापल्लम तथा नसीपुर में मालवाहक जहाजों का निर्माण और उनकी मरम्मत होती थी।

कागज उद्योग–यद्यपि आलौच्य काल में कागज के प्रयोग का उल्लेख मिलता है तथापि यह उद्योग सुविकसित नहीं था। अमीर खुसरो ने कोरे तथा रेशम की भाँति शमी तथा सीरियन कागज के दिल्ली में बनाये जाने का उल्लेख किया है। चीनी यात्री माहुआन, जिसने सुल्तान गियासुद्दीन आजमशाह के राज्यकाल में बंगाल का भ्रमण किया था, ने वृक्ष की छाल से श्वेत चमकीले कागज के उत्पादन का उल्लेख किया है। बहुसंख्यक हस्तलेखों से भी कागज की उपलब्धता का प्रमाण मिलता है। इसके मुख्य उद्योग पटना, दिल्ली राजगीर, शहजादपुर तथा सियालकोट थे। सियालकोट मानसिंघी, खरपुरी, कागजों के लिए प्रसिद्ध था। मानसिंघी कागज को इसकी रेशमी बनावट, श्वेत रंग तथा टिकाऊ होने से बहुत पसन्द किया जाता था। लाहौर तथा आगरा में स्थापित शाही कारखाने भी कागज का उत्पादन करते थे। परन्तु सर्वोत्तम कागज काश्मीर में उपलब्ध होता था। विभिन्न प्रकार के कागज विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाया

जाता था-शोभायुक्त कागज का उपयोग शाही फरमानों के लिए होता था, टिकाऊ प्रकार के कागज का प्रयोग व्यापारियों तथा दलालों के लेखा के निमित्त तथा बुद्धिजीवियों द्वारा होता था और जिल्दसाजी के लिए मोटे तथा मजबूत कागज का प्रयोग होता था। सामान्यत: प्रान्तों तथा बड़े नगरों के बाहर कागज बनाने का छोटा गाँव होता था, जिसे कागजी मोहल्ला अथवा कागजीपुर कहा जाता था। फरुखाबाद में तो अभी भी कागजी बाजार नाम की एक गली है।

चमड़ा उद्योग-आलोच्यकाल में चमड़े के विभिन्न प्रकार के सामान की, विशेषत: घोड़ों के लिए काठी तथा लगाम, तलवार के लिए म्यान, जूते, पानी की मशक आदि की अत्यधिक माँग थी। बंगाल में चमड़े का उपयोग विदेशों को निर्यात की जाने वाली चीनी की पैकिंग में किया जाता था। सिन्ध में बने चमड़े के सामान उत्तम माने जाते थे। दिल्ली में भी एक सम्पन्न चमड़ा उद्योग स्थापित था। कैंबे, चप्पलों के लिए प्रसिद्ध था। गुजरात अपनी सोने और चाँदी से कढ़ी चमड़े की चटाइयों के लिए प्रसिद्ध था। वहाँ चमड़े की वस्तुएँ बड़ी मात्रा में बनती थी, जिनका अरब देशों को निर्यात होता था। असम में जहाँ सांड तथा हिरण बहुत होते थे, यह उद्योग स्थापित था।

चीनी उद्योग-चीनी की खपत देशभर में पर्याप्त मात्रा में होती थी, क्योंकि भारतीय शुरू से ही मीठे के बड़े शौकीन होते हैं। चीनी गन्ने से तैयार की जाती थी, जो कि लाहौर से आगरा के समस्त क्षेत्र में तथा बंगाल, अजमेर व मालवा में बहुत मात्रा में उपजाया जाता था। उत्तम प्रकार की चीनी लाहौर, दिल्ली, बियाना, काल्पी तथा आगरा में बनाई जाती थी। पटना में भी चीनी बहुत बनती थी जो [illegible] द्वारा निर्यात की जाती थी।

अन्य उद्योग-प्रागैऐतिहासिक काल से ही भार[illegible]ड़ी के बर्तन बनाये जाते रहे हैं, विशेष रूप से चमकीले चित्रित बर्तन उत्तम बनाये जाते [illegible]च्यकाल में यह उद्योग काफी विकसित था। बुरहानपुर, वैलोर, कुम्भाकोनम तथा महरइ [illegible]मकाले बर्तनों के लिए प्रसिद्ध था। मिट्टी के बर्तनों पर चमकीले कलात्मक तथा शोभायुक्त डिजाइन बनाते थे। दिल्ली, लखनऊ और काश्मीर इस उद्योग के मुख्य केन्द्र थे, वैसे यह उद्योग देशभर में व्याप्त था।

मिट्टी की मूर्तियाँ एवं खिलौने बनाने का उद्योग प्राचीनकाल से ही समृद्ध था, परन्तु आलोच्यकाल में इस उद्योग को क्षति उठानी पड़ी। इसका मुख्य कारण मुसलमानों पर धार्मिक प्रतिबन्ध लगना था, जिसके अनुसार उन पर आदमी तथा जानवरों के चित्र बनाने पर रोक लगना था। इससे कला जीवन शून्य अलंकरण मात्र रह गई। बहरहाल, बच्चों के खिलौने ज्यों-के-त्यों बनने जारी थे। आलोच्यकाल में विभिन्न कृषि उत्पादनों-नारियल, गिंगली, तिल तथा अरण्डी के बीज से तेल निकालने का उद्योग भी विकसित था। इसके अतिरिक्त संगतराशी, पत्थर की खुदाई, बोतल बनाने तथा खिड़की तैयार करने के काम काश्मीर में सामान्य रूप से किये जाते थे। काश्मीर अपने लकड़ी के काम के लिए प्रसिद्ध था। भारत में बेंत व बाँस के वृक्ष बहुत होते थे। टोकरी, चटाई, छतें तथा झोपड़ी बनाने तथा सजाने के काम में इनका प्रयोग किया जाता था। बंगाल तथा उड़ीसा में लाख पैदा होता था। इससे स्त्रियों के कंगन, कड़े तथा बच्चों के खिलौने बनाये जाते थे। इसका मुख्य उद्योग गुजरात में था। हाथी दाँत का काम करने वाले जड़ाऊ तथा

अन्य प्रकार की वस्तुएँ बनाने में बड़े निपुण थे। इनमें कड़े, कंगन, शतरंज के पट्टे तथा शतरंज के मोहरे मुख्य थे। दिल्ली तथा पूर्वोत्तर मुल्तान इसके लिए प्रसिद्ध थे। एक विदेशी यात्री नूनीज ने, जिसने विजयनगर का भ्रमण (1509-1529 ई.) किया था, वर्णन किया है कि यहाँ हाथी दाँत के गुटके बनाये जाते थे और उन पर सोने की पच्चीकारी की जाती थी।

व्यापार तथा वाणिज्य

आलोच्यकाल में आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों प्रकार का व्यापार उन्नति पर था। पुरातन समय से ही भारत के बाह्य देशों के साथ वाणिज्य सम्बन्ध थे। देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के पश्चात् जो सामग्री शेष बचती थी, उसका बाह्य देशों में निर्यात कर दिया जाता था। यातायात एवं परिवहन की समस्या व्यापारियों तथा सामान ले जाने वाले साधनों के द्वारा पूर्ण हो जाती थी। देश में व्यापार के लिए अनेक सड़कें तथा रास्ते थे, जो सरकार द्वारा सुरक्षित रखे जाते थे। सरकार का इन्हें सुरक्षित एवं ठीक दशा में रखना इसलिए भी आवश्यक था कि इन सड़कों से युद्ध के समय उसकी विशाल सेनाएँ गुजरती थी। उस समय भाप के जहाज के अभाव के कारण समुद्री व्यापार खतरनाक था, फिर भी व्यापारी तथा विदेशी सौदागर माल को बाहर ले जाते थे।

विदेशी व्यापार-जैसाकि ऊपर बताया गया है कि प्राचीन युग से ही भारत का विदेशों के साथ वाणिज्य सम्बन्ध थे। सल्तनतकाल में भारत का व्यापार प्रशान्त महासागर और भू-मध्यसागर के देशों तक फैला हुआ था। अरबी यात्री भारत के माल को इन देशों में ले जाकर बेचते थे और बाहर के माल को इस देश में ले आते थे। मुल्तान और काश्मीर होकर एशियायी देशों से थल मार्ग द्वारा व्यापार होता था। लाहौर, मुल्तान, लाहरीबन्दर (सिन्ध में), काम्बे, पटना, आगरा आदि में बड़े-बड़े बाजार थे जहाँ विदेशों से वस्तुएँ आती थी और फिर देश के भिन्न-भिन्न भागों में भेजी जाती थी। विदेशी व्यापार को दो शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित करके उसका अध्ययन किया जा सकता है, यथा-

(1) समुद्री मार्ग द्वारा व्यापार,

(2) भू-भाग द्वारा (थल मार्ग) व्यापार।

(1) समुद्री व्यापार-समुद्री व्यापार अधिकतर 'अफ्रीकी' व्यापारियों के हाथ में था। कुछ सीमा तक इस व्यापार पर उनका एकाधिकार था। भारत को पश्चिमी देशों के साथ मिलाने वाले दो मुख्य सीधे समुद्री मार्ग थे-एक तो फारस की खाड़ी वाला तथा दूसरा लाल समुद्र वाला। लाल समुद्री मार्ग अनेक चट्टानों, बाधाओं तथा अधिक कुहरा होने के कारण दुष्कर था। अतः नाविक तथा सौदागर फारस की खाड़ी वाले मार्ग को पन्सद करते थे। यह मार्ग ईराक में बगदाद से चीन में कैण्टन जाता था। खुले समुद्र पर अरब वालों के प्रभुत्व से इन सीधे मार्गों पर नि:सन्देह कुछ प्रभाव तो पड़ा, परन्तु ये मार्ग अलग नहीं हुए। अरब के महान् यात्री इब्नबतूता (1333-1346 ई.) को अदन में हिन्दू सौदागरों के बहुत से जहाज मिले। उनमें कैंबे, किलन तथा कालीकट जैसे बहुत से बन्दरगाहों से माल लाया गया था। वहाँ से भारतीय माल अफ्रीका के समुद्री तट दमिश्क और सिकंदरिया तथा यूरोप के विभिन्न देशों को ले जाया जाता था। इन

बन्दरगाहों से भारतीय माल चीन, लंका, इण्डोनेशिया तथा भारतीय टापुओं को जाता था। भारत में अनेक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह थे, जहाँ विश्व के विभिन्न भागों से बहुत बड़ी संख्या में व्यापारी आते थे। पश्चिमी सीमा में लहारीबन्दर, गुजरात में कैंबे तथा गोआ और कोचीन तथा पूर्वी तटीय मछलीपट्टम, पुलीकट तथा नजरकटन तथा बंगाल में हुगली, सतगाँव, श्रीपुरा तथा चटगाँव उल्लेखनीय बन्दरगाह थे। अरब तथा फारस के जहाज खजूर फल, घोड़ों, समुद्री मोतियों तथा रत्नों का पर्याप्त मात्रा में आयात करते थे, बदले में गुड़ और चीनी, मक्खन, जैतून के फल तथा नारियल ले जाते थे। व्यापारी भारतीय सामान, विशेष रूप से कपड़े ले जाते थे और बहुमूल्य तथा कुछ दूसरे धातु, जिनके बर्तन और विभिन्न प्रकार की विलास की वस्तुएँ बनती थीं, बदले में लाते थे। अफगानिस्तान, फारस तथा मध्य एशिया के साथ मुल्तान, कोटा तथा खैबरपास के रास्ते से स्थल मार्ग व्यापार के अतिरिक्त, माल कारोमंडल समुद्री तट के रास्ते से फारस ले जाया जाता था।

आलोच्यकाल में भारतीय निर्यात की मुख्य वस्तुएँ, रुई से बनी हुई वस्तुएँ, अनाज, तेल के बीज, ज्वार, चीनी, चावल, नील, गंध पदार्थ, सुगन्धित लकड़ी तथा पौधे, कर्पूर, लवंग, नारियल, विभिन्न जानवरों की खालें; विशेषकर गेंडे तथा चीते की खाल, चंदन की लकड़ी, अफीम, काली मिर्च तथा लहसुन थे। विदेशों में भारतीय रुई के कपड़ों की बड़ी माँग थी। यह माँग जावा, सुमात्रा, बोड़ा, मलाया, बोर्नियो, अकनि, पेगु, स्याम, बेटम आदि पूर्वी देशों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि पश्चिमी देशों में भी भारतीय सूती कपड़े की पर्याप्त माँग थी। वर्थेमा ने भारत भ्रमण (1503-1508 ई.) किया था जिसने वर्णन किया है कि गुजरात की कैम्बे तथा बंगाल की बंगाला दो बन्दरगाह समस्त फारस, तातार, तुर्की, सीरिया, बर्बरी अर्थात् अफ्रीका, अरब, फेलिक्स, इथोपिया तथा भारत के समुद्रों के अनेक टापूओं को रूई तथा सिल्क के विभिन्न प्रकार के सामान भेजते थे। उन्होंने प्रत्येक वर्ष कैम्बे से जाने वाले पृथक्-पृथक् देशों के तीन जहाजों का जिक्र किया है और यह अनुमान लगाया है कि बंगाल से रूई तथा रेशम के 50 जहाज निर्यात होते थे। अधिकतर अफीम बिहार तथा मालवा में होती थी, जिसका आन्तरिक रूप से निर्यात राजपूताना, बरार तथा खानदेश को होता था, पेगु (लोअर बर्मा), जावा, चीन, मलाया, अरब को, समुद्री मार्ग से तथा फारस को स्थल मार्ग से जाती थी। जहाँ तक भारत में आयातों का सम्बन्ध है, इसकी हमारे पास प्रामाणिक जानकारी नहीं है। परन्तु नि:सन्देह आयात की मुख्य वस्तुएँ बहुमूल्य धातुएँ थीं। यद्यपि भारत में सोने तथा चाँदी की खान नहीं थी, फिर भी विदेशों से ये दोनों धातु आयात किये जाते थे तथा उनके निर्यात पर रोक थी। विदेशी व्यापारी सोना तथा चाँदी लेकर आते थे और उसके बदले में वाणिज्यिक वस्तुएँ ले जाते थे। सोना मुख्यत: चीन, जापान, मलक्का तथा अन्य समीपवर्ती देशों से; मूंगा पेगु से तथा मोती और विभिन्न प्रकार के रत्न फारस तथा अरब से आते थे।

(2) थल मार्ग से व्यापार–समुद्री मार्ग के अतिरिक्त भू-मार्ग द्वारा भी सीमान्त देशों से व्यापार होता था। प्राचीनकाल से ही सीमान्त देशों से व्यापार होता आया है, परन्तु मंगोलों के प्रादुर्भाव से इसमें अभूतपूर्व प्रगति हुई। भारत-मध्य एशिया और अफगानिस्तान से सूखे मेवे, ताजे फल, अम्बर हींग, खुरखुरे लाल पत्थर आदि का आयात पर्याप्त मात्रा में करता था। बाबर

के अनुसार भारत और काबुल के बीच बड़ा सफल व्यापार चलता था। भारत-कपड़े, कम्बल, चीनी, नील, औषधि सम्बन्धी जड़ी-बूटी का निर्यात करता था तथा इनके बदले में वह फल आदि आयात करता था। हिमालय के राज्यों तथा तिब्बत से कस्तूरी, चीनी लकड़ी, खेतचीनी, अमीरा (आँखों की एक मूल औषधि), जेद, बढ़िया ऊन, सोना, ताँबा, सीसा, तिब्बती गाय की दुम, शहद, सोहागा, मोम, ऊनी सामान तथा बाज पक्षी से लदे हुए काफिले आते थे। नेपाल भारत को पशु तथा सींग, कस्तूरी, सोहागा, चिरैता (औषधि की जड़ी-बूटी), मजीह (रंग), इलायची, चौरीस (तिब्बती गाय की दुम), महीन रोयें, बाज पक्षी तथा बालचर (एक सुगन्धित घास) निर्यात करता था। इनके बदले में तैयार वस्त्र, नमक, धातु, चीनी, मसाले आदि का आयात करता था। भूटान से भारत कस्तूरी तथा तिब्बती गाय की दुम का आयात करता था। पेगु के साथ व्यापार पुर्तगाली डाकुओं की गतिविधियों के कारण बहुत सफल नहीं था। भारत बुने हुए कपड़े के थान, सूत तथा अफीम का निर्यात करता था। इसके बदले में सोने, चाँदी तथा मूल्यवान पत्थरों का आयात करता था। खुरासानी व्यापारी तुर्की गुलामों और सुस्त्री नामक कपड़े का व्यापार करते थे। बाबर और हुमायूँ के काल में इसकी काफी उन्नति हुई थी। घोड़े आयात के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तु थे। तुर्किस्तान में अजाक के लोग भारत को निर्यात करने के लिए घोड़े विशेष रूप से पालते थे। 6000 अथवा इससे अधिक के झुण्डों में वे घोड़े भेजते थे। अरब यात्री इब्नबतूता ने वर्णन किया है कि होरमुज, अदन, क्रीमिया तथा अजाक से अच्छी नस्ल के घोड़े भारत को भेजे जाते थे। इन घोड़ों को सिंध तथा मुल्तान दोनों स्थानों में पालते थे।

व्यापार सन्तुलन–उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यापार का सन्तुलन भारत के पक्ष में था। समस्त देशों से व्यापारी भारतीय बन्दरगाहों पर आते थे तथा उपयोगी वस्तुएँ, जड़ी-बूटियाँ और गोंद के बदले में सोना तथा रेशम देते थे। इसीलिए भारत में सोने और चाँदी का विपुल भण्डार था। इसी विपुल सम्पदा के कारण विदेशी आक्रान्ता भारत की ओर आकर्षित होते थे।

विदेशी तथा भारतीय व्यापारी–भारत के समुद्री व्यापार में अरब तथा तुर्कों के व्यापारियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। खुरासानी व्यापारी चीन, फारस, अरब तथा भूमध्य स्थित देशों के साथ हमारे थल व्यापार में बड़े सक्रिय थे। परन्तु यह कहना गलत होगा कि भारतीय व्यापारियों ने व्यापार का काम उन्हें सौंप रखा था। उत्तर भारत के मुल्तानी, गुजराती, बनिये; राजपूताना, मध्य भारत तथा गुजरात के बंजारे अथवा काफिले तथा कुछ ऐसे व्यापारी थे जिन्होंने विदेशों के साथ वाणिज्य आरम्भ किया था। उनमें से कुछ के पास अपने बड़े जहाज थे। इटली के यात्री निकोलो कोंती (1419-1444 ई.) का कहना है कि इन व्यापारियों में से एक व्यापारी इतना धनाढ्य था कि उसके पास अपना माल ढोने के लिए 40 जहाज थे। भारतीय व्यापारी अधिकतर व्यापार पूर्वी अफ्रीका, लाल समुद्री बन्दरगाहों, फारस की खाड़ी के देश तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के भागों, विशेषकर सुमात्रा तक करते थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सुल्तान तथा उनके उत्तरवर्ती मुगल विदेशी व्यापार के हक में नहीं थे तथा उन्होंने भारतीय व्यापारियों के हितों की रक्षा भी नहीं की। 1547 ई. में एक समझौते के द्वारा विजयनगर का समुद्री व्यापार पुर्तगाली हाथों में सौंप दिया गया था, क्योंकि दक्षिण के राज्य उन्हें खदेड़ने में असमर्थ थे। समुद्री व्यापार सुरक्षित

दास प्रथा और दासों की स्थिति

भारत में प्राचीनकाल से ही दास प्रथा प्रचलित रही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इसका विस्तृत विवरण मिलता है। पूर्व-मध्यकाल में भी यह प्रथा प्रचलित रही। पूर्व-मध्यकाल में श्रमिक दास व दास में अन्तर था। श्रमिक वेतन के बदले श्रम किया करते थे तथा दासों को वेतन या पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था। अकाल पीड़ित कई लोग भूख से व्याकुल होकर दासता स्वीकार कर लेते थे। नारद के कथनानुसार गायों की जोड़ी अपने स्वामी को अर्पित करके वे स्वतंत्रता प्राप्त कर लेते थे।

पश्चिमी एशियायी देशों में भी यह प्रथा विद्यमान थी और इस्लाम के उदय के बाद भी यह प्रथा कायम रही। अरब में मध्य एशिया के तुर्की दासों का उपयोग विशेष रूप से सैनिक कार्यों के लिये किया जाता था। भारतीय मुस्लिम शासकों ने भी वहाँ की देखा-देखी यहाँ दास प्रथा को बढ़ावा दिया। इस प्रथा को कभी अमानवीय नहीं समझा गया। दासों के व्यापारी सुन्दर और होनहार बालकों की बड़ी तल्लीनता से खोज किया करते थे। संरक्षकों से खरीदकर बड़े प्यार और दुलार से उनका पालन-पोषण करते थे। उनके व्यक्तित्व के विकास की व्यवस्था की जाती थी। युद्ध विद्या, घुड़सवारी, तीरंदाजी में प्रवीणता तथा साहित्य व कला से युक्त दासों की बड़ी माँग को देखते हुए उन्हें योग्य बनाया जाता था। अपने भावी स्वामी के प्रति पूर्ण निष्ठा रखने की भी शिक्षा दी जाती थी। दासों के क्रय-विक्रय के लिए संगठित मंडियाँ होती थीं। वयस्क लड़के और अवयस्क लड़कियों को बाजार में प्रदर्शन के लिए लाया जाता था तथा आम वस्तुओं की तरह उनका सौदा होता था। सौदा तय होने के बाद क्रेता के नियंत्रण में दास स्थानांतरित हो जाते थे। क्रय किये गये दासों का भरण-पोषण क्रेता स्वीकार करता था और इसके बदले में अपनी

इच्छानुसार उनसे काम कराने के लिए अधिकृत था। कुरान के निर्देशानुसार क्रेता अपने दासों से मानवीय व्यवहार करते थे। अपने परिवार की तरह दास के भोजन व वस्त्रादि का प्रबन्ध करते थे। दासों के कुछ कानूनी अधिकार भी थे। दास अपने स्वामी की इच्छित राशि देकर दासता से मुक्त हो सकते थे। किन्तु दास-स्त्रियों को अपनी रखैल या उप-पत्नी नहीं बनाया जा सकता था। फिर भी व्यवहार में ऐसा नहीं होता था।

साधारणतः दास को क्रेता के घर पर नौकरों की तरह कार्य करना पड़ता था। वैतनिक नौकर की अपेक्षा वे अधिक विश्वसनीय माने जाते थे। बाल्यकाल से पाला-पोसा गया दास अपने स्वामी के प्रति अधिक वफादार समझा जाता था। स्वामी के घर के सारे काम उसे करने पड़ते थे। लेकिन उसे नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं होते थे। वे अपने स्वामी की सम्पत्ति माने जाते थे। वे अपने स्वामी की अनुमति के बिना बाहर घूमने नहीं जा सकते थे, किसी अन्य व्यक्ति से सम्पर्क नहीं कर सकते थे, अपना विवाह नहीं कर सकता था। विवाह के बाद उसकी पत्नी व बच्चे भी स्वामी के दास माने जाते थे। उदरपूर्ति के लिए बचा हुआ व झूठा भोजन तथा फटा-पुराना त्याज्य वस्त्र मिलते थे। निष्ठावान, मेधावी व उद्यमी दास की सराहना की जाती थी और वे स्वामी के कृपा-पात्र बन जाते थे। उन्हें उच्च पद व सम्मान मिलता था तथा मध्यम श्रेणी के परिवार में वे अन्य परिवर-जनों के समान समझे जाते थे। भरण-पोषण के अतिरिक्त बीमार पड़ने पर व वृद्धावस्था में दासों की देखभाल का दायित्व स्वामी का होता था। मृत्यु के उपरान्त उसके बाल-बच्चे व विधवा का भरण-पोषण का प्रबन्ध स्वामी करता था। इतना ही नहीं दास द्वारा अर्जित सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वामी होता था। चोरी, व्यभिचार, विरोधियों से मेल-जोल, सौंपे गये काम की अवहेलना करना, कटु एवं अपशब्द बोलने तथा घर से भाग निकलने पर उसे यातनापूर्ण कठोर दण्ड दिये जाते थे।

सामाजिक दृष्टि से दास चार प्रकार के होते थे—(1) क्रेता—खरीदा हुआ, (2) दान अथवा भेंट द्वारा प्राप्त, (3) युद्धबन्दी तथा (4) आत्म-विक्रेता—जो स्वयं अपने आपको बेच दे। सामाजिक विषमताएँ, दरिद्रता, शासक वर्ग में इस्लाम के प्रचार की धुन और रोजगार धन्धों की कमी दास प्रथा के पोषक तत्त्व थे। धनाढ्य वर्ग वैभवपूर्ण जीवन के लिए दासों की आवश्यकता महसूस करता था। दासियाँ अन्तःपुर में गृहस्वामिनी की सेवा तथा स्वामी के वासनामय मनोविनोद के लिए उपयोगी होती थीं। विवाह के समय वधू को अपने पिता की हैसियत अनुसार दास-दासियाँ वधू के साथ ससुराल भेजी जाती थीं। तुर्की मध्य एशिया, फारस, अबीसीनिया, मलाया आदि से दासों का बड़ी संख्या में आयात होता था। भारतीय दासों में शारीरिक गठन के कारण आसाम प्रान्त के दासों का बड़ा महत्त्व था। इनका मूल्य अन्य दासों की अपेक्षा अधिक होता था। बंगाल तथा मलाया से हिजड़ों के क्रय करने का चलन था जो अन्तःपुर की महिलाओं की निगरानी रखने के लिए उपयोगी माने जाते थे। इल्तुतमिश के शासनकाल में मेधावी व कर्मठ दास का मूल्य 50,000 जितल तक था। अलाउद्दीन ने विविध श्रेणी के दासों का मूल्य निर्धारित किया था। घरेलू कामकाज करने वाली दासी का मूल्य 5 और 12 टांका तथा रखैल के रूप में रहने वाली दासी का मूल्य 20 से 40 टांका के बीच रखा गया। एक सुन्दर बालक दास का मूल्य 20 से 30 टांका, कार्य में निपुण दास का मूल्य 10 से 15 टांका तथा अप्रशिक्षित दास का मूल्य 7 या 8 टांका था। कुछ

खास योग्यता वाले दास 100 या 200 टांका तक में बिक जाते थे। सरकारी नियंत्रण के कारण दासों की कीमतें काफी कम हुईं, लेकिन फीरोज तुगलक के समय पुनः कीमतें बढ़ गईं।

सल्तनत काल में मुसलमानों का एक बड़ा दल दासों का होता था। कभी-कभी इसमें ऐसे योग्य दास निकले जो शासक पुत्रों से अधिक योग्य एवं विश्वसनीय थे। मुइजुद्दीन गौरी के चार गुलामों ने अत्यधिक ख्याति प्राप्त की। याल्दोज ने अफगानिस्तान, कुबाचा ने सिन्ध, इख्तियार ने बंगाल और कुतुबुद्दीन ने दिल्ली में विशेष ख्याति प्राप्त की। कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और बलबन जैसे गुलामों ने अपनी योग्यता से दिल्ली सल्तनत का सिंहासन प्राप्त किया। मुइजुद्दीन की उत्तरी भारत में विजय केवल उसके पराक्रम का परिणाम नहीं थी बल्कि उसके दासों के सामूहिक प्रयत्नों का फल थी। इल्तुतमिश को ऐबक ने दिल्ली की दास मण्डी में 50,000 जितल देकर खरीदा था, जो भारत में इस्लामी शासन का वास्तविक संस्थापक सिद्ध हुआ। इल्तुतमिश ने बलबन को दास के रूप में खरीदा और उसे अपना दामाद बनाया।

दास वर्ग का प्रशासकीय क्षेत्र में भी पदार्पण हुआ। प्रारम्भ में दास सुल्तान या किसी अमीर की निजी सेवा में रहते थे। तत्पश्चात् अपनी योग्यता और नष्ठा के बल पर किसी इक्ता (भू-क्षेत्र) के अधिकारी पद पर नियुक्त होते थे। वह सुल्तान की अनुमति के बिना इक्ता से वसूली गई राजस्व की राशि में से कुछ भी खर्च नहीं कर सकता था। दस या बारह वर्षों के अनुभव के बाद इन्हें मुक्ती (राज्यपाल) का पद मिल जाता था। वे अपने भू-क्षेत्र में व्यवस्था बनाये रखते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर सुल्तान को सैनिक सहायता भेजते थे। यह पद स्थायी या वंशानुगत नहीं था, वे सुल्तान की इच्छापर्यन्त ही अपने पद पर बने रह सकते थे। दासों को उच्चतम पद 'अहल-ए-तेज' पर नियुक्ति होती थी। अहल-ए-क्लाम पद पर केवल उलेमा वर्ग में से नियुक्ति होती थी। 'वजीर-ए-[illegible]' का पद दासों की पहुँच से परे था। दास वर्ग शाही दरबार के अमीरों से वैमनस्य रखता [illegible] ही सुल्तान पर अपना प्रभाव चाहते थे। सुल्तान भी अपनी सत्ता को अक्षुण्ण [illegible] दास वर्ग तथा अमीर वर्ग में सन्तुलन बनाये रखने के पक्ष में थे। इल्तुतमिश के शासनकाल तक तो व्यवस्था बनी रही। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद दास वर्ग शासन की बागडोर अपने पास रखने के लिए खुली बगावत पर उतर पड़े। इल्तुतमिश के बाद 1236-1246 के काल में वे शक्तिशाली बन गये। एक के बाद दूसरे सुल्तान की बकरों की तरह हत्याएँ की गईं। दास वर्ग सुल्तान के पद को परम्परागत, ईश्वरीय व सर्वोच्च मानने को तैयार नहीं थे। दास वर्ग में भी पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा, ईर्ष्या-द्वेष भी बहुत ज्यादा था। बलबन ने इस दास वर्ग के प्रभाव को कम करने का प्रयत्न किया, लेकिन उसकी मृत्यु के बाद तुर्क दासों की शक्ति तो क्षीण हुई लेकिन खलजी अमीरों का दबदबा बढ़ गया। खलजी वंश और तुगलक वंश के काल में दासों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। अलाउद्दीन के शासनकाल में मलिक काफूर, जो एक दास था, का प्रभाव बढ़ा। लेकिन मलिक काफूर ने इतने कुकृत्य किये कि अलाउद्दीन के अंगरक्षक ने क्रोधित होकर उसकी हत्या कर दी। अलाउद्दीन के काल में खिलजी दासों के प्रभाव में वृद्धि हुई, लेकिन अलाउद्दीन ने हिन्दू परिवर्तित दासों को प्रोत्साहन देने से खिलजी दासों को नियंत्रण में रखा गया। सुल्तान मुबारकशाह का अन्त हिन्दू परिवर्तित दास खुसरो खाँ ने किया था। 1320 में गाजी मलिक ने खुसरो खाँ को मौत के घाट उतार दिया और दिल्ली में तुगलक वंश की

नींव डाली। तुगलक शासनकाल में दासों की शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। फीरोज तुगलक दासों का बड़ा प्रेमी था। फीरोज तुगलक ने राज्य में योग्य राज्य पदाधिकारियों का गठन किया। राजकोष पदों पर नियुक्तियाँ वंश परम्परा के अनुसार की जाने लगीं। फलस्वरूप साम्राज्य में दासों की संख्या एक लाख अस्सी हजार तक पहुँच गई। इस विशाल दास समुदाय के उचित प्रशासन के लिए एक पृथक् विभाग का गठन किया गया, जिसे 'दीवाने-बन्दगाह' कहा गया। उसे दासों की देखभाल की जिम्मेदारी सौंपी गई। एक पृथक् कोष की भी स्थापना की गई। दासों की रुचि के अनुकूल शिल्प, कला आदि के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। फलस्वरूप हजारों दास निपुण कारीगर बन गये और कुछ ने सेना में प्रवेश कर उच्च पद प्राप्त कर लिए। ऐसा कोई शाही विभाग नहीं था जिसमें दास मौजूद न हो। इन्हें 10 टके से लेकर 100 टके तक की नकद खानगी दी जाती थी। खजाने से इन्हें नियमित वेतन का भुगतान किया जाता था और जिन्हें नकद भत्ता नहीं मिलता था उन्हें जागीर में गाँव दिये जाते थे। शाही कोष पर इनका व्यय-भार हानिप्रद सिद्ध हुआ। शनैः-शनैः दासों का राजकीय क्षेत्रों में प्रभाव बढ़ने लगा। फीरोज के अन्तिम वर्षों में तो वे सर्वेसर्वा बन बैठे। बरनी के अनुसार अधिकांश दास प्रमादी और षड्यंत्रकारी बन गये। मेंहदी हुसैन के शब्दों में—''खिलजी और तुगलककालीन शाही दास स्वामी भक्त न रह सके। वे अति महत्त्वाकांक्षी व दुष्चरित्र के प्रमाणित हुए। उन्होंने राज्य के विद्रोहियों का दमन व सीमा विस्तार की बजाय अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति में राजकोष खाली कर दिया।''

मुगलकालीन दास प्रथा—मुगलकाल में दासों का राजनीतिक प्रभाव लगभग समाप्त हो गया। मुगल बादशाहों ने दासों की उपयोगिता को स्वीकार किया किन्तु उन्होंने दासों को शासन पर हावी नहीं होने दिया। इन दासों का उपयोग केवल घरेलू काम-काज के लिए किया जाता था। सम्राट् अकबर ने दासों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाया। सम्राट् दासों को बन्दा, गुलाम या दास के नाम से सम्बोधित नहीं करता था, बल्कि 'चेला' कहकर सम्बोधित करता था। अबुल फजल के अनुसार 'एक विश्वसनीय शिष्य' को चेला कहा जाता है। 'दास' शब्द का प्रयोग निम्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए होने लगा—

(1) वह दूसरों पर आश्रित व्यक्ति जिसे धनवान ने पैसा देकर खरीदा है।

(2) वह व्यक्ति जिसने गृहस्थ जीवन का परित्याग कर किसी सन्त या महात्मा की शिष्यता ग्रहण कर ली हो।

(3) बाल-बच्चों सहित अपनी सन्तान को माता-पिता अपना चेला मानते थे।

(4) वह व्यक्ति जिसने सम्पत्ति के लालच में अपने मालिक की हत्या कर दी हो।

(5) डाकू, जिसने डकैती पर पश्चाताप करते हुए अपने को पीड़ित व्यक्ति के हवाले कर देता था।

(6) हत्यारा, जिसने मृतक के उत्तराधिकारी के पास दास के रूप में रहने का दण्ड मिला हो।

(7) वह व्यक्ति जिसने स्वेच्छा से अपने श्रद्धेय के पास दास के रूप में रहना स्वीकार कर लिया हो।

चेलों का वेतन एक रुपये से लेकर एक दाम तक होता था। सरकार इन चेलों की सेवाओं को जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनिवार्य मानती थी। सरकार इन चेलों की शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध करती थी। शिक्षा प्राप्त कई चेले अपने जीवन में बड़ी उन्नति की थी। सेना में इनकी विशेष आवश्यकता मानी जाती थी। पराक्रमी चेला एक साधारण सैनिक से ऊँचा उठते हुए मुगल दरबार का मनसबदार बन सकता था। लेकिन कुलीन वर्ग इनसे परहेज करता था। दास-दासियों के कारण सामन्तों की विलासिता बढ़ती गई। विशाल अन्तःपुर, सामाजिक प्रतिष्ठा का द्योतक था। प्रसिद्ध दासियाँ दो प्रकार की होती थीं—(1) वे नित्य प्रतिदिन घरेलू काम के लिए रखी जाती थीं। (2) जो इन्द्रिय-सुख के लिए काम में ली जाती थीं। कभी-कभी ये दासियाँ अपने स्वामी की इतनी कृपा-पात्र बन जाती थीं कि वे गृहस्वामिनी से भी अधिक सम्माननीय बन जाती थीं। स्वामी से उत्पन्न दासियों की संतान दास नहीं माने जाते थे, हालाँकि राजपरिवार में उन्हें अन्य सदस्यों के समान स्तर का व्यवहार किया जाता था। किसी दास से उत्पन्न संतान दास ही माने जाते थे तथा उनके द्वारा अर्जित सम्पत्ति के उपभोग करने के अधिकारी होते थे।

विदेशों से बड़ी संख्या में दास-दासियों का आयात किया जाता था। मुगल अमीर अजीज कोका ने दासियों के चयन के बारे में लिखा है—''खुरासानी महिलाएँ गृहकार्य के लिए, हिन्दू महिला बच्चों का पालन-पोषण के लिए, ईरानी महिला इन्द्रिय सुख के लिए तथा मध्य एशियायी महिला, उपर्युक्त तीनों प्रकार की दासियों पर नियंत्रण रखने के काम में ली जाय।'' दासों का विक्रय करने वाले व्यापारियों के संगठन होते थे जो अपने दलालों को सुन्दर व बुद्धिमान बालक-बालिकाओं को खरीदने के लिए दूर-दराज कस्बों में भेजते थे। उनका अच्छा विक्रय मूल्य प्राप्त करने के लिए उन्हें संगीत, नृत्य व शिल्प का प्रशिक्षण दिया जाता था। कुछ जातियों में तो बालिकाओं को दासी के रूप में बेचने का रिवाज था। ये दास-दासी अपनी संतान को भी दास का जीवन व्यतीत करने का परामर्श देते थे। इसका मुख्य कारण गरीबी, धनवान परिवारों से पैतृक सम्बन्ध तथा वैभवशाली वातावरण में रहने की लालसा थी।

दासों को स्वतंत्रता के लिए नियम प्रचलित थे। दास अपना कर्ज चुका कर दासता से मुक्त हो सकते थे। अपने स्वामी की रक्षा में अपने जीवन की बाजी लगा देने वाले दास को भी प्रायः स्वतंत्र कर दिया जाता था। दासता से मुक्त करते समय हिन्दू स्वामी अपने दास के सिर पर पानी घड़ा उतार कर फोड़ देता और उसके बाद चावल फेंकता हुआ तीन बार कहता—''अब तू दास नहीं है।'' मुसलमानों में रिवाज था—स्वतंत्र किये जाने वाले दास को लिखित में 'मुक्ति पत्र' देता था। दास को स्वतंत्रता देना धार्मिक दृष्टि से बड़ा पवित्र कृत्य माना जाता था। इस्लाम में साधनविहीन, गरीब, ऋण ग्रस्त परिवारों द्वारा दास जीवन स्वीकार करना अमानवीय समझा गया है। दासियों की प्रचुरता ने अमीरों को दुश्चरित्र बना दिया। अमीरों के अन्तःपुर में स्त्रियों में परस्पर कलह रहता था। दासियों के कारण सामाजिक दृष्टि से स्त्रियों की स्थिति में बड़ी गिरावट आई।

कृषक वर्ग व उनकी स्थिति

पूर्व-मध्यकालीन समाज में एक वर्ग कृषकों का था। कृषक विशेषतः हिन्दू समाज के अंग होते थे, जिन्हें अनेकानेक करों के भार से दबना पड़ता था। युद्ध की स्थिति में उनके सम्पूर्ण

परिश्रम का फल नष्ट हो जाता था और दूसरी फसल के पैदा करने की सम्भावना भी धूमिल
जाती थी। उत्पादक होते हुए भी इन्हें भर पेट भोजन मिलना एक बहुत बड़ी बात थी।
सामाजिक प्राणी होने के नाते उस युग के कृषक वर्ग को भी आजकल की भाँति सामाजिक
उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ता था। बहुधा स्वतंत्र रूप से खेती करने वाला किसान
सदैव डूबा रहता था और अपना सर्वस्व खो बैठता था। अलाउद्दीन के समय में एक किसान
अपनी उपज का ½ भाग राज्य को देने के अतिरिक्त कई अन्य कर भी देने पड़ते थे।
तुगलक ने इनमें से कई करों को हटाकर खेती करने वालों की दशा में सुधार करने का प्रयास
किया, परन्तु मुहम्मद तुगलक की योजनाओं में खेती करने वालों की हालत फिर से खराब
गई। तैमूर के आक्रमण के फलस्वरूप होने वाली क्षति का अधिकतर प्रभाव किसानों पर पड़ा।
लेकिन शेरशाह ने राज्य की दशा सुधारने के लिए खेती को प्रोत्साहन दिया और लगान
समुचित व्यवस्था से कृषकों की स्थिति सुधारने का भी प्रयास किया। इसी नीति का अनुसरण
चलकर अकबर ने भी किया जिससे राज्य में किसानों की दशा ठीक रही।

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के बावजूद भारतीय किसान मुश्किल से अपना
निर्वाह करता था। जहाँ खाने को पर्याप्त अन्न भी नहीं होता था, वहाँ कपड़ों और मकानों
सुविधा की कल्पना करना ही व्यर्थ है। दुर्भिक्ष, बाढ़ आदि दैवीय प्रकोपों से होने वाली
क्षति से उनकी हालत बिगड़ती चली गई। वैसे कुछ सुल्तानों ने कई बार ऐसे अवसरों पर सहायता
पहुँचाने का प्रयत्न किया या लगान में छूट दी, परन्तु उसका व्यवहारिक रूप ठीक न होने से उनके
लिए अपेक्षित लाभ पहुँचना सम्भव नहीं हो सका। मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने
लिखा है कि, भारतीय कृषकों के पास इतना कम सामान होता था कि वे किसी समय आक्रमण
की सम्भावना में, घर छोड़कर जंगलों में निकल जाते थे और आपत्ति टलने पर पुनः अपने स्थान
पर लौट आते थे। उनका द्रुत गति से भागना और पुनः आकर बस जाना इसलिए सम्भव था कि
उनके पास घरेलू सामान बहुत ही कम होता था। उन्हें प्रायः वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता था,
उन्हें अपने भाग्य पर ही भरोसा रखना पड़ता था। कई बार तो वर्षा के अभाव में वे अपना
का पालन-पोषण करने में भी समर्थ नहीं होते थे, फिर भी सरकारी अधिकारी उन पर अत्याचार
करते थे और उनका शोषण करते थे। ऐसी स्थिति में उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती थी।
अनेक प्रत्यक्षदर्शियों ने किसानों की दरिद्रता का वर्णन इसी प्रकार किया है।

मध्यकाल में नारी की स्थिति

वैदिक काल में महिलाओं को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें सभी प्रकार
के सामाजिक उत्सवों तथा यज्ञ आदि में सम्मिलित होने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उस युग की स्त्रियाँ
इतनी विदुषी होती थीं कि उनके मन्त्र अब तक हमें वैदिक संहिताओं में उपलब्ध होते हैं।
लोपामुद्रा, गार्गी, घोषा इत्यादि इसी प्रकार की महिलाओं के उदाहरण हैं। लेकिन समय के साथ-
साथ उनकी स्थिति में महान् परिवर्तन होते गये। वस्तुतः बौद्ध काल से उनकी दशा का पतन
आरम्भ हो गया। धीरे-धीरे उनकी स्वतन्त्रता में कमी आती गई। वे कन्या के रूप में माता-पिता,
पत्नी के रूप में अपने पति तथा विधवा के रूप में अपने पुत्र के नेतृत्व में रहती थीं। इस्लाम के

आगमन से भारतीय समाज में काफी परिवर्तन आ गये। यह सत्य है कि बहु-विवाह शासक वर्ग
के हिन्दुओं में मुसलमानों के आने से पूर्व प्रचलित था। परन्तु पर्दे की प्रथा का मुसलमानों में
सामान्य रिवाज था। इस प्रकार हिन्दू स्त्रियों पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। मध्यकाल में स्त्रियों
की दशा निम्न प्रकार थी—

पर्दा-प्रथा—इस्लाम के आगमन के साथ ही भारतीय क्षितिज पर नई परम्पराओं का
उदय हुआ। मुसलमानों के मूल देश अरब और तुर्किस्तान में महिलाओं के लिए पर्दे में रहना
अनिवार्य समझा जाता था। स्वभावतया भारत जैसे विदेशी स्थान पर इस पर अधिक जोर डाला
गया। इस सम्बन्ध में अकबर जैसे उदार बादशाह ने भी बड़े कड़े आदेश जारी किये थे, जिसके
अनुसार "यदि कोई नौजवान युवती गलियों एवं बाजार में बगैर घूँघट के दिखाई दे या जान-
बूझकर उसने पर्दे को तोड़ा है तो उसे वेश्यालय में ले जाया जाय और उसी पेशे को अपनाने दिया
जाय।" हिन्दुओं में पर्दे की प्रथा मुसलमानों के प्रभाव के कारण आई। हिन्दुओं ने अपनी नारी
जाति की सुरक्षा तथा उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए पर्दा-प्रथा को अपनाया। शासक वर्ग का
अनुकरण भी प्रधान कारण था, जिससे हिन्दुओं में पर्दा-प्रथा का चलन आरम्भ हुआ। मुगल
काल में पर्दे का हिन्दू और मुसलमानों के उच्च घरों में सामान्य रिवाज था। दोनों समुदाय के
परिवारों में औरतों को अलग रखने की प्रवृत्ति प्रतिष्ठा की बात समझी जाती थी। फलतः ऊँचे
घरानों में इस नियम का पूरा पालन किया जाने लगा। 16वीं सदी के यात्री बरबोसा ने बंगाल की
औरतों में पर्दा-प्रथा के प्रचलन का उल्लेख किया है। अमीर और शाही घरानों में पुरुषों और
औरतों के बीच संदेशवाहक का काम करने के लिए बड़ी संख्या में हिंजड़े रखे जाते थे। पर्दा-
प्रथा के चलते बीमार औरतों के इलाज के लिए भी मर्द चिकित्सक को शाही या अमीरों के जनाने
में प्रवेश नहीं मिलता था। औरतें अपने घरों से शायद ही कभी बाहर निकलती थीं। ऐसा मौका
आए भी तो उन्हें सेवक तथा हिंजड़े से घिरी और पूरी तरह ढकी पालकी में बन्द होकर जाना
पड़ता था। यदि कोई मुसलमान महिला किसी कारणवश थोड़े समय के लिए पर्दा त्याग देती तो
उसे भयंकर परिणाम भोगना पड़ता था। काबुल के गवर्नर अमीर खाँ ने अपनी बीबी को केवल
इसलिए छोड़ दिया था कि हाथी के पागल हो जाने पर जान बचाने के लिए नीचे कूदते समय
बेपर्दा हो गई थी। मुसलमानों में तो पर्दा-प्रथा इतनी कठोर थी कि कोई मुसलमान अपनी
उपस्थिति के अतिरिक्त अपने रिश्तेदार से भी स्त्री को बात करने की आज्ञा नहीं देते थे। लेकिन
राजपूत स्त्रियों में इसका रिवाज कम ही था। औरतें युद्ध कला की शिक्षा ग्रहण करती थीं और
प्रायः शिकार तथा अन्य अभियानों में भी भाग लिया करती थीं। फिर भी धीरे-धीरे राजपूतों में भी
पर्दा-प्रथा का प्रचलन बढ़ता जा रहा था।

अवांछनीय बेटियाँ—परिवार में बेटी पैदा होना अशुभ समझा जाता था। टॉड के
अनुसार राजपूत कहते थे, "बेटी जन्म का दिन मेरे लिए अभिशाप स्वरूप है।" परिवार में
लड़की का लड़कों के समान आदर नहीं होता था। यह अन्तर शाही घरानों में भी स्पष्ट रूप से
देखा जा सकता था। दुर्भाग्यवश यदि किसी स्त्री के लगातार बेटियाँ होतीं तो बहुधा ऐसी स्त्री को
तलाक दे दिया जाता था। शाही परिवार में लड़की के जन्म पर केवल हरम में ही बेगम खुशी
मनाती थी, जबकि पुत्र जन्म पर होने वाले सामारोह में सभी दरबारियों को शामिल किया जाता

था। फिर भी संयोगवश कन्या-वध जैसी घृणित प्रथा केवल राजपूतों के ही एक पिछड़े वर्ग तक सीमित थी।

बाल-विवाह—उन दिनों की राजनीतिक परिस्थितियों में ऐसे रिवाज प्रचलित हो गये थे, जिसके अनुसार जन्म के बाद छः से आठ वर्षों से अधिक समय तक लड़कियों का अपने माता-पिता के घर रहना वर्जित माना जाता था। 16वीं सदी के बंगाली कवि मुकुंद राम के अनुसार जो पिता अपनी बेटी का नौ वर्ष की उम्र में विवाह कर देता था, वह भाग्यवान तथा ईश्वर का कृपापात्र समझा जाता था। बहुत कम उम्र में विवाह कर देने के रिवाज के कारण दूल्हा और दुल्हन को अपना मन पसन्द जीवन साथी चुनने का अवसर ही नहीं मिलता था। राजपूत राजघराने इसके अपवाद थे। दहेज की माँग की जाती थी और कभी-कभी तो माता-पिता वर-वधू की श्रेष्ठता पर विचार किये बिना केवल अच्छे दहेज के लालच में शादी कर दिया करते थे। कुछ विशेष जातियों तथा क्षेत्रों में वर पक्ष को ही कन्या के अभिभावक को धन देना पड़ता था। बहुधा धन के लोभ में कोई नवयुवक बड़ी उम्र की औरत से भी विवाह कर लेता था। यह बुराई इतनी बढ़ गई थी कि अकबर को यह आदेश देना पड़ा कि स्त्री की उम्र पति से बारह वर्ष अधिक हो तो उसके विवाह को गैर-कानूनी करार देकर रद्द कर दिया जायेगा। अकबर की यह कोशिश भी कामयाब नहीं हो पाई कि सगाई के अनुमोदन के पूर्व वर-वधू की स्वाकारोक्ति तथा माता-पिता की अनुमति अनिवार्य रूप में आवश्यक होनी चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय उच्च वर्ग के राजपूत परिवारों की लड़कियों को अपना पति चुनने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। बहुधा कोई राजपूत महिला स्वयं अपने विवाह की शर्तें तय किया करती थी। राव सुरताण की बेटी ताराबाई ने यह शर्त रखी थी कि वह उसी नवयुवक से विवाह करेगी जो उसके पिता को उसके राज्य टाड़ को पठानों से मुक्त करा देगा। पृथ्वीराज के भाई जयमल ने यह शर्त स्वीकार कर उससे विवाह किया था। मोहिल सरदार की सुन्दर कन्या कर्मदेवी ने मंडोर के राव के उत्तराधिकारी से अपनी सगाई अस्वीकार करके पूगल के राजकुमार साधु की वधू बनना स्वीकार किया था। रूपनगर की राजकुमारी ने मेवाड़ के महाराणा राजसिंह को निमंत्रण भेजा था कि वह उसे औरंगजेब के चंगुल से छुड़ाकर उससे विवाह करे।

एक पत्नी प्रथा—मध्यकाल में दोनों समुदायों के निम्न वर्गों में एक पत्नी का प्रचलन हो गया था। अकबर के समय में इबादतखाना में उलेम लोगों के द्वारा हुए इस फैसले के होते हुए भी कि एक आदमी निकाह के द्वारा चार तथा 'मूता' के द्वारा कितनी भी संख्या में विवाह कर सकता था, अकबर ने यह आदेश जारी किया था कि कोई भी साधारण व्यक्ति एक स्त्री से अधिक नहीं रख सकता तथा पहली स्त्री के बांझ साबित होने पर ही दूसरी पत्नी रखने की अनुमति दी जा सकती थी। बहु-विवाह की सुविधा केवल धनी मुसलमानों को प्राप्त थी जो प्रायः तीन या चार पत्नियों को रखा करते थे। हिन्दुओं में कुछ रजवाड़ों तथा अमीरों को छोड़कर शेष लोग सामाजिक रिवाज के अनुसार एक पत्नी रखा करते थे। कुछ विशेष मामलों में और जब पहली स्त्री बांझ हो तो वे ब्राह्मणों की स्वीकृति पर दूसरी स्त्री से विवाह कर सकते थे।

पत्नी की स्थिति—लड़की का पालन-पोषण माता-पिता के द्वारा होता था और वे ही उसकी शादी कर देते थे। शादी के मामले में लड़की की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं था। शादी के

बाद लड़की अपनी सास के नियंत्रण में रहती थी। यदि कोई कन्या अपनी सास की उम्मीदों के अनुरूप नहीं बन पाती तो मुसलमान परिवार में उसे तलाक दे दिया जाता और हिन्दू परिवार में उसकी स्थिति दयनीय बना दी जाती थी। परन्तु यदि घर की बहू बड़ी होती और सास के प्रभाव से अलग रहती तो सभी घरेलू मामलों में उसकी बात का महत्त्व होता था। अपने पति के साथ औरत की स्थिति, जब तक उसके सम्बन्ध ठीक हो, एक मर्यादित आश्रित के समान ही रहती थी। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, ''हिन्दुओं में ऐसी मान्यता है कि कोई शुभकार्य स्त्री की उपस्थिति या सहयोग के बिना पूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि वह पुरुष की अर्धांगिनी समझी जाती थी।'' दोनों एक-दूसरे का कहना मानते थे, हालांकि पति की ही बात सर्वोपरि होती थी। किन्तु इतना होते हुए भी ऊँचे घरानों की स्त्रियाँ विशेषकर राजपूतनियाँ अपने स्वाभिमान के मामले में किसी की बात मानने को तैयार नहीं होती थीं। पति यदि किसी दूसरी स्त्री के सौन्दर्य की मजाक में भी प्रशंसा कर देता तो पत्नी नाराज हो जाती और उनका दाम्पत्य जीवन कटु हो जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अधिकांश हिन्दुओं का ग्रार्हस्थ्य जीवन सुखी था।

विधवा की स्थिति—तलाक और पुनर्विवाह मुसलमानों में आम बात थी, लेकिन हिन्दुओं में यह वर्जित था। कुछ निम्न जाति के लोगों को छोड़कर मध्यकालीन हिन्दू समाज में विधवा विवाह का पूर्णतया निषेध था। सती-प्रथा प्रचलित थी। यहाँ तक कि वैसी लड़की भी जिसकी केवल सगाई भर हुई हो, अपने होने वाले पति की चिता पर सती होने के लिए विवश कर दी जाती थी। वे विधवाएँ जो अपने पतियों के साथ सती नहीं होती थीं, समाज के द्वारा बड़ी तिरष्कृत की जाती थीं। उनके बाल कटवा दिये जाते थे और उन्हें जेवर नहीं पहिनने दिया जाता था। उनको केवल रुखा-सूखा सात्विक भोजन दिया जाता था और वे कोमल शैया की बजाय जमीन पर सोती थीं। ऐसी अभागी विधवाओं को अपने मायके में रहना पड़ता था, जहाँ उन्हें दासी के समान समझा जाता था। विधवा के प्रति उसके परिवार के लोगों का व्यवहार भी ठीक नहीं होता था।

दिल्ली के कुछ सुल्तानों ने हिन्दुओं के बड़े समुदाय में विशेषकर राजपूतों और ऊँचे घरानों में प्रचलित सती-प्रथा को समाप्त किये जाने का प्रयास किया था। सम्भवतः मुहम्मद तुगलक प्रथम मध्यकालीन शासक था, जिसने सती-प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाया था। उसके राज्य क्षेत्र में किसी विधवा को सती होने के पूर्व राजाज्ञा लेनी होती थी। सीदी अली रईस (1553-1556 ई.), जो हुमायूँ के राज्यकाल में भारत आया था, उसने लिखा है कि सती होने के स्थान पर सुल्तान के अफसर सदैव यह देखने के लिए मौजूद रहते थे कि किसी विधवा को उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं जलाया जाए। अकबर ने सती-प्रथा पर प्रतिबन्ध तो नहीं लगाया, लेकिन उसने कोतवाल को यह आदेश दे दिया था कि वे किसी भी विधवा को उसकी इच्छा के विपरीत सती किये जाने से रोक दें। अकबर ने तो स्वयं हस्तक्षेप करके विधवाओं को जबरन जलाये जाने से बचाया था। उसने जहाँगीर के ससुर भगवानदास की भान्जी जयमल की विधवा की रक्षा की तथा उसके पुत्र को, जो उसे जल मरने के लिए विवश कर रहा था, जेल में बन्द करवा दिया। सोलहवीं एवं सत्ररहवीं सदी के यूरोपियन यात्रियों डेलावेल, प्लेसार्ट तथा टवर्नियर ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया है कि किसी विधवा को जलाये जाने से पूर्व गवर्नर की अनुमति प्राप्त करना

अनिवार्य था। जहाँगीर और शाहजहाँ ने इस कानून में कोई परिवर्तन नहीं किया। केवल औरंगजेब ही ऐसा शासक था जिसने निश्चित आदेश जारी करके अपने राज्य में सती प्रथा की मनाही कर दी थी। किन्तु इन आदेशों का प्रजा पर कोई असर नहीं हुआ और पहले की भाँति ही यह प्रथा चलती रही।

माता की स्थिति—पत्नी तथा विधवा के रूप में नारी की जो भी स्थिति रही हो, किन्तु माता के रूप में उसका स्थान अत्यन्त सम्मानजनक था। कई मुगल बादशाह तो अपनी माता की अगवानी करने थोड़ी दूर तक पैदल जाया करते थे। माता के सामने उपस्थित होने पर वे 'कोर्निस', 'सिजदा' और 'तसलीम' से अभिवादन किया करते थे। अपने जन्मदिन पर वे अपने राजकुमारों और दरबारियों के साथ माता का आशीर्वाद लेने जाते थे। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि राज्य की प्रथम महिला का स्थान बादशाह की पत्नी को प्राप्त नहीं था (नूरजहाँ और मुमताज महल अपवाद हैं) बल्कि यह स्थान राजमाता या बादशाह की बहिन को प्राप्त होता था। माता के प्रति सम्मान की भावना राजपूतों से अधिक शायद ही किसी में हो। मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय ने प्रतिदिन भोजन करने से पहले माता के दर्शन करने का नियम बना लिया था। जब अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी तब अपनी माता की आज्ञा पर सोलह वर्ष का युवा फत्ता केसरिया बाना पहन कर समराग्नि में कूद पड़ा और वीरगति को प्राप्त हुआ।

आर्थिक स्थिति—आर्थिक रूप में, एक मुस्लिम स्त्री को उत्तराधिकार के रूप में सम्पत्ति के एक हिस्से का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त होता था। हिन्दू बहिनों के विपरीत उसका यह अधिकार विवाह के बाद भी अक्षुण्ण रहता था। पारस्परिक वैवाहिक समझौते (मेहर) की व्यवस्था मुसलमान औरतों के लिए एक अन्य सुरक्षा व्यवस्था थी, किन्तु एक हिन्दू महिला को अपने पति के माता-पिता की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं था। एक हिन्दू महिला को कुछ अचल सम्पत्ति, जिसमें गहने आदि भी थे, के अलावा अपने खाने-पीने तथा निवास का व्यय प्राप्त करने का अधिकार था। इस प्रकार औरत को जीवन के हर क्षेत्र में परतंत्र बना दिया गया था। जाति-प्रथा और अलगाव की भावना ने नारी की स्थिति सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक धरातल पर प्रभावहीन बन गई थी। उसका दायरा घरेलू कामों तक सीमित था। किन्तु किसान और मजदूर वर्ग की स्त्रियाँ अपवाद थीं, जो कृषि, पशुपालन, बुनाई, कढ़ाई, सिलाई आदि जैसे कामों में घर से बाहर भी पुरुषों को सहयोग देती थीं। ऐसी बहुत सी औरतों ने विशेषकर मुसलमानों तथा बंगालियों ने नृत्य और गायन को अपना पेशा बना लिया था।

विद्वान् तथा प्रशासक—नारियों का अलगाव एवं परतन्त्रता के बावजूद मध्यकालीन भारत में कई श्रेष्ठ लेखिकाएँ तथा अभूतपूर्व प्रशासनिक क्षमता वाली महिलाएँ हुई हैं। हुमायूँनामा की लेखिका गुलबदन बेगम और शिबिया तथा मुनिसाल अरवा की जीवनी लेखिका जहाँनारा का स्थान तत्कालीन साहित्यकारों में बहुत ऊँचा है। मीराबाई, देवलरानी, रूपमती, सलीमा सुल्ताना, नूरजहाँ, सितिउन्निसा (जहाँनारा की अध्यापिका) और जेबुन्निसा (औरंगजेब की बेटी) उस समय की प्रसिद्ध कवयित्रियाँ थीं। रघुनाथ अभ्युदय में मधुरवाणी की लेखिका तथा आन्ध्र रामायण की छन्दोबद्ध अनुवादिका रामभद्रबा, काव्य वरदंबिका परिणयम् की लेखिका तिरुमलंबा और मारिची परिणयम् नामक प्रेम काव्य की लेखिका मोइनांगी उस युग की प्रसिद्ध संस्कृत कवयित्रियाँ

अध्याय-28

सांस्कृतिक समन्वय एवं सम्मिश्र संस्कृति का विकास

पृष्ठभूमि-विश्व का कोई भी देश इस बात का दावा नहीं कर सकता कि उसकी संस्कृति विशुद्ध है। जिस प्रकार अनेक नदियाँ समुद्र में आकर विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक देश के सांस्कृतिक सागर में विभिन्न सांस्कृतिक नदियाँ आकर उस सांस्कृतिक सागर में विलुप्त हो जाती हैं अथवा कुछ समय तक वे कुछ तरंगें व तूफान-सी स्थिति पैदा करती हैं, लेकिन अन्त में वह सांस्कृतिक सागर उन्हें निगल जाता है। ठीक इसी प्रकार तुर्कों के आक्रमण के पूर्व भारत में अनेक जातियों ने प्रवेश किया, लेकिन भारतीय संस्कृति ने उन्हें आत्मसात् कर लिया। तुर्कों के आक्रमण के बाद इस क्रिया में अवरोध उत्पन्न हो गया, क्योंकि तुर्कों की इस्लामी संस्कृति एक भीषण बाढ़ के रूप में अनेक संस्कृतियों को निगलती हुई भारत में प्रविष्ट हुई थी और अब वह भारतीय सांस्कृतिक सागर को भी निगल जाना चाहती थी। आगे चलकर यद्यपि दोनों संस्कृतियों को इसी देश में साथ-साथ रहना पड़ा था, लेकिन ये दोनों कभी घुल-मिल नहीं पाई। इसका मुख्य कारण यह था कि यद्यपि भारतीय संस्कृति तो उसे आत्मसात् करने को तैयार थी, किन्तु मुसलमानों के हृदय से अपनी मातृभूमि के प्रति आसक्ति समाप्त नहीं हो पाई और उनकी बर्बरता और धर्मान्धता भारतीयों को उनसे दूर ही करती रही।

भारत विजय के पश्चात् अरबों और तुर्कों ने अनेक हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया। वे केवल लूटमार और अपना राज्य स्थापित करने नहीं आये थे बल्कि वे यहाँ पर अपना धर्म और संस्कृति स्थापित करना चाहते थे। अपने धर्म प्रचार के आवेश में उन्होंने कभी भारतीय धर्म और संस्कृति को समझने का प्रयास ही नहीं किया। वे हिन्दुओं को काफिर कहते रहे और उन्हें दोजख (नरक) में भेजने लायक समझते रहे। वे अपने धर्म और सभ्यता को हिन्दुओं के धर्म और सभ्यता से निश्चित रूप से श्रेष्ठ समझते थे। मुसलमानों के इस व्यवहार के कारण हिन्दुओं में भी अनुदारता बढ़ने लगी और वे मुसलमानों को 'म्लेच्छ' ही समझते रहे। मुसलमान अपने धर्म और संस्कृति को फैलाने के लिए दृढ़ संकल्प थे, तो दूसरी ओर हिन्दू अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए दृढ़ संकल्प थे। भारत में मुसलमान शासक-वर्ग के थे, अतः उन्होंने छल, बल और प्रलोभन के उपायों से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। लेकिन हिन्दुओं के पास न तो शासन सत्ता ही थी और न शस्त्र-शक्ति। इसलिये उन्होंने आरम्भ में परिवर्तित मुसलमानों को प्रायश्चित करवा कर पुनः हिन्दू धर्म में शामिल कर लिया। लेकिन ज्यों-ज्यों हिन्दू धर्म में

अनुदारता बढ़ती गई, यह प्रथा भी समाप्त हो गई। फलतः जो हिन्दू एक बार मुसलमान बन जाता था, वह हमेशा के लिए मुसलमान ही रहता था और हिन्दू समाज उन्हें पुनः ग्रहण करने को तैयार नहीं था। इस प्रकार भारत में दो पृथक् समाज स्थापित हो गये, जिनके धर्म और संस्कृति सर्वथा पृथक् थे। मुस्लिम शासक इस पृथकत्व को बनाये रखना चाहते थे। अतः दोनों का सांस्कृतिक समन्वय असम्भव-सा प्रतीत होता था। लेकिन जब दोनों वर्ग लम्बे समय तक साथ-साथ रहें तो यह सम्भव नहीं था कि दोनों परस्पर मिलें ही नहीं और सुरक्षा का दायित्व उलेमाओं और पण्डितों ने ले लिया और हिन्दू-मुस्लिम जन-साधारण ने मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिये, तब यह स्वाभाविक ही था कि हिन्दू समाज और संस्कृति पर मुसलमानों का प्रभाव पड़ता और हिन्दू समाज और संस्कृति से मुसलमान प्रभावित होते। फलस्वरूप दोनों का सांस्कृतिक समन्वय हुआ, जो एक संयोग की बात थी। वैसे दोनों में एक-दूसरे से कुछ सीखने की कोई उत्सुकता नहीं थी। हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय का मुख्य स्वरूप यह था कि दोनों संस्कृतियों पर एक-दूसरे का प्रभाव पड़ने के बावजूद दोनों के बीच धर्म की गहरी खाई ज्यों-की-त्यों बनी रही।

इस्लाम और हिन्दू संस्कृति का परस्पर प्रभाव-हिन्दू सभ्यता और संस्कृति ने इस्लाम को प्रभावित किया अथवा इस्लामी सभ्यता और संस्कृति ने हिन्दुत्व को प्रभावित किया-यह आज भी विवाद का विषय बना हुआ है। डॉ. ताराचन्द ने लिखा है कि इस्लाम के सम्पर्क से न केवल हिन्दू धर्म एवं संस्कृति में परिवर्तन ही आया, बल्कि हिन्दू संस्कृति का स्वरूप ही बदल गया। लेकिन डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव की मान्यता है कि इस्लाम ने मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति पर कोई वास्तविक रचनात्मक प्रभाव नहीं डाला। एक अन्य विद्वान श्री टाइटस ने लिखा है कि, ''सब कुछ कहने के उपरान्त इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि इस्लाम ने हिन्दुत्व पर जितना प्रभाव डाला, उससे कहीं अधिक परिवर्तन हिन्दुत्व ने इस्लाम में कर दिया। हिन्दुत्व जिस सन्तोष एवं विश्वास के साथ अपने मार्ग पर आज भी जा रहा है, वह आश्चर्यजनक है।'' इससे स्पष्ट है कि दोनों संस्कृतियाँ एक-दूसरे से अप्रभावित न रह सकीं और दोनों के सांस्कृतिक समन्वय के फलस्वरूप एक नवीन मिली-जुली संस्कृति का अभ्युदय हुआ। इस सांस्कृतिक समन्वय में नानक और कबीर जैसे धार्मिक नेताओं का अधिक योगदान रहा, जिन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हिन्दू धर्म और इस्लाम एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले अलग-अलग मार्ग हैं और राम-रहीम, कृष्ण-करीम व अल्लाह और ईश्वर एक ही परमात्मा के विभिन्न नाम हैं। इस प्रकार ऐसे धार्मिक नेताओं और सुधारकों ने सांस्कृतिक समन्वय की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

राजनीतिक क्षेत्र में-भारत पर मुसलमानों की विजय के फलस्वरूप भारत में हिन्दुओं की राजनैतिक संस्थाएँ समाप्त हो गयीं और उनके स्थान पर मुस्लिम राजनैतिक संस्थाएँ स्थापित हुईं, जो इस्लामी सिद्धान्तों एवं आदर्शों पर आधारित थीं। हिन्दू जो राजसत्ता का सुख भोग रहे थे, समस्त उत्तरदायी सरकारी पदों से वंचित कर दिये गये, जिससे उनकी राजनैतिक प्रतिभा कुण्ठित हो गयी। यद्यपि दिल्ली के सुल्तानों ने अपने शासन प्रबन्ध में इस्लामी सिद्धान्तों का समावेश किया, किन्तु राजस्व वसूली के मामले में उन्होंने भारतीय पद्धति ही ग्रहण की और ग्राम प्रबन्ध के लिये हिन्दुओं पर ही निर्भर रहे। तुर्क शासकों ने धीरे-धीरे हिन्दू शासकों की शान-शौकत, जैसे-राजसी, पोशाक, छत्र-चँवर, हीरे-मोती, जवाहरात, जड़ाऊ खड्ग आदि भी अपना ली। यद्यपि इस्लाम सादगी पर जोर देता था, किन्तु तुर्क शासकों ने हिन्दुओं की देखा-देखी तड़क-

भड़क ग्रहण कर ली। 'राजत्व में देवत्व' का सिद्धान्त इस्लामी आदर्श के प्रतिकूल था, लेकिन तुर्कों ने हिन्दुओं के इस आदर्श को ग्रहण कर भारत में अपनी निरंकुश सत्ता स्थापित कर ली। मुगल काल में, विशेषकर अकबर के शासनकाल से तो राजनीतिक समन्वय का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया। मुगलों ने जिस प्रकार की शासन-व्यवस्था को संगठित किया, उससे देश में राजनैतिक एकता का बीजारोपण हो गया। शाही मनसबदार बनने के बाद हिन्दू शासकों ने भी अपने राज्यों का प्रबन्ध मुगल साम्राज्य के ढाँचे पर सुसंगठित किया और दीवान, बख्शी, हाकिम, फौजदार आदि अधिकारियों की नियुक्तियाँ कीं। जिस प्रकार शाही मनसबदारों की श्रेणियाँ और उनकी मान-मर्यादा निश्चित थी, उसी प्रकार हिन्दू शासकों ने भी अपने सामन्तों की श्रेणियाँ निश्चित कर उनकी मान-मर्यादा निश्चित कर दी और शाही नमूने पर वैभवपूर्ण नियम-बद्ध कर उसे नया स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार हिन्दू राज्यों में अनजाने ही राजपद की मर्यादा तथा उसके अधिकारों में अनपेक्षित परिवर्तन आ गया।

सामाजिक क्षेत्र-भारत में इस्लाम के प्रविष्ट हो जाने के बाद भारतीय हिन्दू समाज दो प्रकार से प्रभावित हुआ। प्रथम तो मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के जोशीले प्रयत्नों से हिन्दुओं के आचार-विचारों में कट्टरता आ गयी। जाति बन्धन एवं धार्मिक जीवन व्यतीत करने के नियम अधिक कठोर कर दिये गये। बाल-विवाह की प्रथा चल पड़ी और कठोर पर्दा-प्रथा अपना ली गई। इसका कारण यह था कि हिन्दू नेताओं ने सोचा कि इस्लाम के आक्रमणों से अपने धर्म और संस्कृति को बचाने का एकमात्र उपाय यही है कि अपने आचार-विचारों में और कट्टर बन जाये। दूसरा यह कि हिन्दुओं ने मुसलमानों के सामाजिक संगठन के कुछ जनवादी सिद्धान्तों को अपना लिया। हिन्दू सुधारकों ने सभी जातियों की एकता पर बल दिया और बताया कि मोक्ष प्राप्त करने के लिये किसी विशेष जाति में जन्म लेना आवश्यक नहीं है। उन्होंने सभी धर्मों की मूलभूत एकता और एक ही ईश्वर के विचार को प्रतिपादित किया। सूफी धर्म ने हिन्दू समाज को प्रभावित किया। सूफी संत हिन्दू सन्तों की तरह ही रहते थे और वैसा ही व्यवहार करते थे। सूफियों के उदारवादी दृष्टिकोण के कारण हिन्दू समाज की निम्न जातियों की स्थिति में अन्तर आया। तुर्कों के आने से पूर्व इन निम्न जातियों की बड़ी शोचनीय स्थिति थी। समाज में उनका कोई सम्मान नहीं था तथा उन्हें मोक्ष का अधिकारी नहीं माना जाता था। अतः मुसलमानों के आने से निम्न जातियों के लोग ही बड़ी संख्या में मुसलमान बनने लगे। फलतः हिन्दू समाज के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया। इसलिये निम्न जातियों को इस्लाम की ओर जाने से रोकने के लिये उनके प्रति उदार व्यवहार किया जाने लगा, जिससे निम्न जातियों के जीवन में सुधार आया।

सामाजिक क्षेत्र में हिन्दू समाज के उच्चवर्गीय लोगों के पहिनावे, आहार-विहार और सामाजिक तौर-तरीकों में इस्लामी प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। हिन्दू सामन्तों ने मुस्लिम अमीरों की वेश-भूषा ग्रहण कर ली, जैसे-दगली, जामा आदि। साफा या पगड़ी हिन्दू और मुसलमान दोनों पहिनते थे। हिन्दू अपनी पगड़ी या साफे को आकर्षक बनाने के लिये उस पर तुर्रा, सरपेच आदि लगाने लगे। हिन्दुओं में सलवार, पायजामा और इजारबन्द भी लोकप्रिय हुए। उच्चवर्गीय हिन्दुओं ने मुसलमानी माँसाहारी भोजन अपना लिया। पुलाव, कवाब, कोफ्ता आदि सम्पन्न हिन्दुओं के प्रिय पदार्थ थे। बहुत-से हिन्दुओं ने तो मुसलमानों के अभिवादन करने का ढंग भी

अपना लिया। ठीक इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओं की सभ्यता और संस्कृति से काफी प्रभावित हुए थे। सन्तों और दरगाहों की पूजा करना हिन्दुओं के स्थानीय और जातीय देवी-देवताओं की पूजा करने का ही दूसरा रूप था। मुसलमानी त्यौहार भी भारत के हिन्दुओं की तरह ठाठ-बाट से मनाये जाने लगे। शबेबरात का त्यौहार शिवरात्रि के हिन्दू त्यौहार की तरह रात्रि भर जागरण करके शोरगुल के साथ मनाया जाने लगा। मुसलमानों में अकीका और बिस्मिल्लाह के उत्सव हिन्दुओं के मुण्डन और विद्यारम्भ के संस्कारों जैसे मनाये जाने लगे। हिन्दुओं के विवाह संस्कार ने मुसलमानी निकाहों को भी प्रभावित किया। मुसलमानों ने वधू-शृंगार करने की प्रथा विशेष रूप से अपना ली। हिन्दू जैसे श्राद्ध करते हैं, कुछ इसी प्रकार मुसलमान भी मृत व्यक्तियों के नाम पर भोज और खैरात बाँटने लगे। हिन्दुओं की जाति प्रथा ने जनवादी मुस्लिम समाज को प्रभावित किया और शरीफ और रजील जातों का भेद करने लगे। तुर्क, पठान, सैयद और शेख अपनी से नीची जाति अथवा चारों कोनों से बाहर, यहाँ तक कि अपनी निजी कौम से भी बाहर, विवाह सम्बन्ध करने की बात नहीं सोच सकता था। जुलाहों तथा धुनियों के साथ इन चारों कौमों वालों को खाने-पीने में भी आपत्ति होने लगी। पान खाने की आदत मुसलमानों ने हिन्दुओं से सीखी थी। हिन्दू पकवान, मिष्ठान्न और खूब पकी हुई मिर्च-मसाले युक्त भोजन की वस्तुएँ उन्हें अब अच्छी लगने लगी थीं और उन्होंने हिन्दू पाक-कला की बहुत-सी बातें अपना ली थीं। इस्लाम में अँगूठियाँ, हार, कानों के आभूषण आदि पहिनना वर्जित था, किन्तु भारतीय धनी मुसलमान इन्हें धारण करने लगे। भारत अपने महीन सूती और रेशमी वस्त्रों के लिये प्रसिद्ध था। इन्हें अब उच्च श्रेणी के मुसलमानों में, जो कि अपने देश में काफी मामूली और मोटे-मोटे वस्त्र ही पहिनते थे, अधिकता से उपयोग किया जाने लगा था। नजर लगने से बचने के लिये न्यौछावर उतारने की परिपाटी शाही हवेलियों में भी थी। यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व मुस्लिम शाहजादे अपनी बाँहों पर मंत्र सिद्धि-यंत्र बँधवाते थे। मुसलमानों में जौहर के उदाहरण भी मिल जाते हैं।

धार्मिक क्षेत्रों में-हिन्दुत्व और इस्लाम के दृष्टिकोण, सिद्धान्त और आचार-व्यवहार पृथक्-पृथक् थे। इस्लाम मूर्ति पूजा के विरुद्ध था तथा सादगी और एकेश्वरवाद पर बल देता था, जबकि हिन्दू मूर्ति पूजा के प्रति आस्था रखते हुए बहुदेववादी थे। अतः अनेक मुस्लिम शासकों एवं इस्लाम धर्म के प्रचारकों ने हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया, मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट किया और हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाना आरम्भ किया। उनकी बर्बरता और धर्मान्धता उन्हें हिन्दुओं से दूर करती रही। यद्यपि मुसलमानों का सूफी दर्शन और हिन्दू वेदान्त अवश्य एक-दूसरे के समीप थे, किन्तु उनकी सूक्ष्म और रहस्यपूर्ण बातों को समझने वालों की संख्या बहुत कम थी। हिन्दू तो राम-रहीम, कृष्ण-करीम और ईश्वर-अल्लाह को एक मानने को तैयार थे, लेकिन मुसलमान इसके लिये बिल्कुल तैयार नहीं हुए। अतः दोनों में भीषण पृथकत्व बना रहा। इस भीषण पृथकत्व के बावजूद दोनों की धार्मिक विचारधारा ने एक-दूसरे को प्रभावित किया, जिससे दोनों के धार्मिक तत्त्वों में परिवर्तन आया।

मुसलमानों की धार्मिक विचारधारा और रीति-रिवाजों पर हिन्दू धर्म का प्रभाव पड़ा। डॉ. वहीद मिर्जा ने लिखा है कि ''भारत के कलंदरों और फकीरों जैसे साधु-संन्यासियों के बड़ी संख्या में होने का सब मिलाकर यह प्रभाव हुआ कि सरल शुद्ध इस्लाम जिसमें कि तकलीफ-ए-शरिया

(बाह्य धार्मिक कर्त्तव्य) पर जोर दिया जाता था, अब बदलकर एक मिश्रित-सा भक्ति सम्प्रदाय बन गया था जिसमें कि चमत्कार, अन्ध-विश्वास और सन्त-पूजा समन्वित होकर अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठे थे। अब यह जन-साधारण में एक प्रथा-सी हो गयी थी कि लोग अपना एक आध्यात्मिक गुरु बना लेते थे और ऐसी जन-आस्था थी कि केवल वही इस लोक और परलोक में सुखी और सम्पन्न जीवन का वरदान दे सकता है।'' इस प्रकार मुसलमान भी अपने पाँच पीर, पीर बदर, ख्वाजा खिजिर आदि कल्पित देवताओं की पूजा करने लगे और उनकी दरगाह पर माथा टेकने लगे। हिन्दुओं की रथ यात्रा के अनुकरण पर मुसलमान भी अपने मुहर्रम के दिन ताजिये निकालने लगे। मुसलमानों ने इस्लामी शरियत के विपरीत अनेक बातें अपना लीं, जिसका उल्लेख करते हुए डॉ. बुद्ध प्रकाश ने लिखा है कि ''उत्तरी सीमा प्रान्त, कश्मीर, पंजाब और करनाल जिले के मुसलमान पुराने ग्राम देवताओं की पूजा करते थे। हरियाणा, अलवर, भरतपुर के मेव और मीना हिन्दू नामों को खान के साथ जोड़ते और दशहरा, दीवाली और जन्माष्टमी मनाते और कुँआ खोदने से पहले चबूतरा बनाकर हनुमान को अर्पित करते थे। उनमें सगोत्र विवाह वर्जित था और लड़कियों को उत्तराधिकार प्राप्त नहीं था।'' इसी प्रकार बूँदी के जौडा के मुसलमान अपने विवाहों में हिन्दू रस्में करते थे। अजमेर के हुसैनी ब्राह्मण रमजान और एकादशी का व्रत करते थे। पंज भाई सम्प्रदाय के इस्लामी खोजा हजरत अली को विष्णु का दसवाँ अवतार मानते थे। पूर्निया जिले के देहात के मुसलमान अल्लाह और काली दोनों के नाम लेकर पूजा करते थे। उनके शादी-विवाह की रस्में भगवती के मन्दिर में होतीं। हिन्दू प्रभाव के कारण ही मुसलमानों में भी अनेक सम्प्रदाय स्थापित हुए जैसे इस्लामिया सम्प्रदाय, पंजभाई सम्प्रदाय, अली इलाहिया, शिया सम्प्रदाय आदि।

मुसलमानों की भाँति हिन्दू धार्मिक विचारधारा को इस्लाम ने प्रभावित किया। हिन्दू भी मूर्ति पूजा का खण्डन कर निर्गुण भक्ति पर जोर देने लगे और बाह्य आडम्बरों का खण्डन कर एक विशुद्ध सादा और अन्धविश्वासरहित धर्म स्थापित करने की कोशिश की। पूजा के विविध प्रकार, पण्डितों की प्रधानता, मन्दिरों की स्थापना, शास्त्रों के प्रति मान्यता आदि बातों का अब कोई स्थान नहीं रहा। नैतिक आचरण, गुरुभक्ति, ईश्वर में विश्वास, भक्ति साधना आदि मोक्ष प्राप्ति के ऐसे माध्यम थे जिनकी सभी हिन्दू सम्प्रदायों में मान्यता स्थापित हो गई। धर्म में ऊँच-नीच का भेद समाप्त होने लगा, फलस्वरूप रैदास जैसे अन्त्यज जाति के व्यक्ति और कबीर जैसे धुनिया मुसलमान की गणना सन्तों में हो सकी। अब हिन्दू धर्म एक आडम्बरहीन एवं सादा लोक-धर्म बन गया, जिसमें सभी जातियों एवं वर्गों को एक मानकर पंथ एवं सम्प्रदाय की सीमाएँ निश्चित कर दी गई।

कला और साहित्य के क्षेत्र में-विदेशी मुसलमान बाहर से जो कला की विशेषताएँ भारत लाए थे, वह हिन्दू कला परम्परा के संसर्ग से इतनी बदल गई कि उसका शुद्ध इस्लामी रूप ही जाता रहा। दूसरी ओर हिन्दू कला का विशुद्ध स्वरूप भी समाप्त हो गया। हिन्दू और मुस्लिम कलाओं का ऐसा समन्वय हुआ कि भारत में एक नयी और मिश्रित कला का अभ्युदय हुआ। प्रारम्भ में दिल्ली के सुल्तानों ने हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त कर उसी सामग्री से उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाईं, जिनका बाहरी आवरण इस्लामी था तो आवरण के भीतर हिन्दू कला के तत्त्व स्पष्ट दिखाई देते थे। कालान्तर में ऐसी मस्जिदें भविष्य में बनने वाली मस्जिदों के लिए आदर्श

नमूने बन गये। सल्तनत और मुगल शासकों ने जो इमारतें बनवाईं वे हिन्दुओं और मुसलमानों–दोनों ही की संयुक्त प्रतिभा और प्रयासों का प्रतिफल थीं। इस समन्वित शैली की अभिव्यक्ति हमें फतेहपुर सीकरी के भवनों में दिखाई देती है। जोधाबाई के महल, मरियम के महल, पंचमहल, बीरबल की कोठी और दीवान-ए-खास में प्राचीन हिन्दू मन्दिरों की सजावट और अभूतपूर्व नक्काशी हिन्दू कला के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इसी प्रकार आगरे के किले में जहाँगीरी महल भी हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैलियों के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है। जहाँगीर के काल में सिकन्दरा में बने अकबर के मकबरे की बनावट बौद्ध विहार जैसी है और शाहजहाँ के काल में तो यह समन्वय अपने चरम बिन्दु पर पहुँच गया था। हिन्दुओं ने भी मिश्रित कला शैली को अपना लिया और यहाँ तक कि हिन्दू मन्दिर तक इस मिश्रित कला शैली से नहीं बच सके। उदाहरण के लिए वृन्दावन के अनेक मन्दिरों में यह कला शैली अपनाई गई। हिन्दू शासकों ने अपने महलों का निर्माण भी इसी शैली में करवाया। अकबर के समय से मुसलमानों ने हिन्दू चित्रकला शैली के तत्त्व ग्रहण कर लिए, जिससे मुगल, जो ईरानी–चीनी चित्रकला शैली भारत लाये थे, प्रभावित हुए बिना न रही और चित्रकला की एक सर्वथा नवीन शैली सामने आयी। अकबर ने ईरानी, चीनी और हिन्दू शैली का जो समन्वय किया, वह जहाँगीर के काल में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। इस नवीन शैली के प्रभाव से राजपूत चित्रकला भी पूरी तरह बदल गई जिसके फलस्वरूप अठारहवीं सदी में काँगड़ा शैली का जन्म हुआ। इस्लाम में संगीत वर्जित था, किन्तु सूफी मुसलमान संगीत के प्रेमी थे। ईरानी और हिन्दू रागों के सम्मिश्रण से नई राग-रागनियों का आविष्कार हुआ। ध्रुपद राग के सम्मिश्रण से ख्याल संगीत का आविष्कार हुआ। अमीर खुसरो ने कव्वाली ईजाद की। रागों के अतिरिक्त वाद्य यन्त्रों का आविष्कार हुआ। 'मृदंग' को तबले का रूप देने का श्रेय अमीर खुसरो को है। हिन्दुओं ने भी न केवल इन मिश्रित राग-रागनियों व वाद्य यन्त्रों को अपनाया बल्कि मुसलमानों की कव्वाली और गजल को लोकप्रिय बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

मुसलमानों की भाषा और साहित्य भारतीय भाषा और साहित्य से बिल्कुल भिन्न था। उनके उच्चारण से भारतीय अनभिज्ञ थे और भारतीय वर्णमाला द्वारा उसकी अभिव्यक्ति भी सम्भव नहीं थी। लेकिन चूँकि मुसलमानों को अब भारत में ही रहना था अत: भारतीयों से मिलना-जुलना और बातचीत करना अनिवार्य था। इसलिए धीरे–धीरे मुसलमान भारतीय भाषाओं के तथा हिन्दू अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग करने लगे। जो हिन्दू–मुसलमान बन गये थे, वे अपनी मातृभाषा में अधिकाधिक अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग करने का प्रयत्न करने लगे। अत: दोनों भाषाओं के समन्वय के फलस्वरूप एक नई भाषा विकसित होने लगी। अमीर खुसरो की रचनाओं में इसकी स्पष्ट झलक दिखाई देती है। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक–दूसरे की भाषा समझने की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। अत: सर्वप्रथम सिकन्दर लोदी के काल में कुछ हिन्दू फारसी पढ़ने लगे। तुगलक काल के अन्तिम भाग में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कुछ साहित्यिक सम्पर्क का आभास मिलता है। फीरोज तुगलक के शासनकाल में कुछ मुसलमान विद्वानों ने संस्कृत अथवा अपभ्रंश की कुछ प्रेम–कथाओं को हिन्दी में अनुदित किया था। लेकिन जिस लिपि में वे लिखी गई थीं वह फारसी ही थी। अकबर के काल से हिन्दू और मुसलमान विद्वान् नि:सन्देह रूप से एक–दूसरे के अधिक घनिष्ठ सम्पर्क में आये और इसलिए सोलहवीं

सदी से हिन्दू साहित्यकार और सुधारक इस्लामी विचारों से प्रभावित होने लगे। आगे चलकर वैष्णव कवि कृष्ण हरिदास की सत्य पीर सम्बन्धी एक कविता में यहाँ तक कह दिया कि कुरान और पुराण में कोई भेद नहीं है। अकबर के काल से धर्मग्रन्थों के एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने की प्रवृत्ति को बहुत प्रोत्साहन मिला। महाभारत, अथर्ववेद, रामायण, हरिवंश, गीतासुबोधिनी, योगवाशिष्ठ, भागवत आदि के फारसी में अनुवाद कराये गये। अनुवादों के अतिरिक्त धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये कुछ मौलिक ग्रन्थ भी लिखे गये। इनमें मीर अब्दुल वाहिद बिलगरामी की 'हकायक-ए-हिन्दी' उल्लेखनीय है, जिसमें लेखक ने वैष्णवों की पचास से अधिक परिभाषाओं को इस्लामी मान्यताओं के साथ समन्वित किया है। उदाहरण के लिए 'कृष्ण' की पहचान कहीं हजरत मोहम्मद, कहीं मनुष्य और कहीं ईश्वरीय अद्वैत सत्ता की परिकल्पना के सन्दर्भ में मानवीय वास्तविकता के साथ की गई है, गोपियों को कहीं फरिश्ते और कहीं एकता और अनेकता के सम्बन्ध का प्रतीक बनाया गया है, उद्धव को हजरत मुहम्मद के अनुयायियों के समकक्ष और ब्रज को कहीं विश्व और कहीं दिव्य जगत बताया है। जहाँगीर के काल में बिहारीमल खत्री और किशनदास तम्बोली ने 'सिंहासन-बत्तीसी' का फारसी रूपान्तर तैयार किया तो शेख अब्दुर्रहमान ने 'मीरात-ए-हकायक' नाम से गीता का संक्षिप्त अनुवाद किया।

भारतीय ग्रन्थों के फारसी अनुवादों अथवा फारसी में स्वतन्त्र ग्रन्थों के प्रणयन के अलावा लोक-भाषाओं की अभिवृद्धि में हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर भाग लिया। शेख निजामुद्दीन औलिया के समय से ही सभा-मजलिसों में हिन्दी के गीत और भजन गाये जाते थे। अमीर खुसरो अपने को हिन्दी का कवि कहने में गर्व अनुभव करते थे। मुसलमान कवियों की हिन्दी कृतियों में मुल्ला दाऊद की 'चनदायन', कुतुबन की 'मृगावती', मज्झन की 'मधुमालती', उसमान की 'चित्रावली' और मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' उल्लेखनीय हैं। रसखान के कृष्ण-भक्ति से ओत-प्रोत भजन, अब्दुर्रहीम खानखाना के कवित्त और सैय्यद गुलाम नबी व अली मुहिबखाँ की रचनाएँ भी हिन्दी साहित्य में विशेष महत्त्व रखती हैं। मुगल शासकों ने तो हिन्दी कवियों को दिल खोलकर आश्रय दिया। हिन्दी की तरह सिन्धी में शाह अब्दुल लतीफ का 'शाहजू रिसालो', पंजाबी में शेख इब्राहीम फरीद का 'नसीहतनामा' और वारिसशाह का 'हीर-राँझा', कश्मीरी में हब्बाह खातून के गीत और बंगला में यसोराजखाँ का 'कृष्णमंगल' आदि लोक-संस्कृति को साहित्य का कलेवर प्रदान करने के अनुपम प्रयास हैं। रीतिकालीन कविता पर मुस्लिम संस्कृति का काफी प्रभाव है। जहाँ मुसलमानों ने भारतीय भाषाओं के साहित्य को समृद्ध किया, वहाँ हिन्दुओं ने भी फारसी में सुन्दर रचनाएँ कीं। चन्द्रभान ब्राह्मण, आनन्दराम मुखलिस, लक्ष्मीनारायण शफीक, वृन्दावनदास, माधोराम आदि फारसी के उच्चकोटि के लेखक थे। इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में समन्वय अत्यन्त उत्कृष्ट रूप से व्यक्त हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि फारसी, अरबी और तुर्की भाषाओं में बहुत-से शब्द हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराती, राजस्थानी और अन्य उत्तरी भारत की भाषाओं में अपना लिये गये। इसी प्रकार मुसलमानों ने भी अपनी अरबी-फारसी में भारतीय भाषाओं के शब्द अपना लिये, जिससे उर्दू भाषा का जन्म हुआ।

मुसलमानों के भारत आगमन के पूर्व हिन्दू गणित, ज्योतिष और चिकित्सा के क्षेत्र में काफी उन्नति कर चुके थे और इन विषयों का भारतीय ज्ञान अरब पहुँच चुका था। अरबों ने इन

विषयों का ज्ञान यूनान से भी प्राप्त किया था। अतः भारतीय और यूनानी ज्ञान को आत्मसात् कर उन्होंने इन विषयों में अच्छी उन्नति कर ली और जब भारत आये तब उनका यह उत्तम ज्ञान भारतीयों को भी प्राप्त हुआ। हिन्दुओं ने मुसलमानों से ज्योतिष विद्या में गणना के लिए 'ताजिक' का प्रयोग सीखा। अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ गिनने की प्रणाली सीखी और ज्योतिष के अनेक पारिभाषिक शब्द ग्रहण किये। ज्योतिष विद्या का एक ग्रन्थ 'अल मजिस्ती' अरबी से संस्कृत में अनुवादित हुआ। अनेक प्रकार के तेजाबों का ज्ञान भी हिन्दुओं ने मुसलमानों से सीखा था। दूसरी ओर कुछ मुसलमान विद्वान योग और वेदान्त के हिन्दू दर्शन के अध्ययन की ओर भी आकर्षित हुए थे और कुछ ने भारतीय आयुर्वेद का भी अध्ययन किया था।

अन्य क्षेत्रों में–मुसलमानों के सम्पर्क का एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रभाव भारतीय युद्ध प्रणाली पर पड़ा। मध्ययुग के प्रारम्भ में हिन्दू शासकों के पास छोटी-छोटी सेनाएँ थीं और इन छोटी-छोटी सेनाओं को मिलाकर एक बड़ी सेना बना लेते थे। यह बड़ी सेना किसी एक प्रधान सेनापति के अधीन नहीं होती थी, बल्कि भिन्न-भिन्न सामन्तों के अधीन होती थी। दूसरी ओर मुस्लिम शासकों के पास बड़ी-बड़ी सेनाएँ थीं, जिनका एक ही प्रधान सेनापति होता था, जिसे अपना रणचातुर्य प्रदर्शित करने के अधिक अवसर मिल जाते थे। तोपों और गोला-बारूद के प्रयोग ने एक नई युद्ध प्रणाली को जन्म दिया और हिन्दू राजाओं के रक्षात्मक युद्ध के तरीकों में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इन हिन्दू राजाओं ने अपने दुरूह प्रदेशों के किलों की रक्षा के लिये अब इन्हीं रक्षात्मक युद्ध के नवीन तरीकों को अपनाया।

मुसलमानों के आगमन के बाद भारतीय उद्योगों में भी परिवर्तन आया। सोने-चाँदी के पात्रों पर मीनाकारी, कागज बनाने की विकसित विधि, बर्तनों के कलई करना आदि मुसलमानों ने आरम्भ किया था। शतरंज का खेल भारत में मुसलमानों ने प्रचलित किया था, अतः शतरंज और शतरंज के मोहरे बनाने का काम भी मुसलमानों के आने के बाद प्रारम्भ हुआ था। इसी प्रकार ताश की जोड़ियाँ बनाना और बरफी और बालूशाही जैसी मिठाइयाँ बनाना भी मुसलमानों ने ही आरम्भ किया था। मुगलों ने मध्ययुगीन उद्यान कला को भी सुसज्जित किया। उन्होंने अपने बाग-बगीचों में ज्यामिति की सुन्दर डिजायनों के निकुंज और मण्डप बनवाये और इनके बीच सुन्दर फव्वारे लगवाये। इस उद्यान कला को भारत के सभी भागों में अपना लिया गया। इससे सौन्दर्य की अनुभूति और विकसित हो उठी तथा लोगों में बाग-बगीचों का शौक बढ़ गया। गुलाब के इत्र का निर्माण करने का श्रेय नूरजहाँ की माँ अस्मत बेगम को है।

इस प्रकार हिन्दुओं को जो कुछ भी उपयोगी और सुन्दर लगा, उसे अपनाने में उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं दिखाई। यद्यपि मुसलमानों को हिन्दू सभ्यता और संस्कृति से तनिक भी लगाव नहीं था, फिर भी दोनों वर्गों के पारस्परिक सम्पर्क से मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति में हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के तत्त्व अनायास ही घुल-मिल गये। हिन्दू धर्म और संस्कृति की यह विशेषता रही है कि बाहर से आने वाली सभ्यता और संस्कृति को आत्मसात् कर वह नवीन हो उठती है। इस सम्बन्ध में टीट्स का यह कथन बहुत ही उपयुक्त है कि, ''सब कुछ कहने के पश्चात् भी इसमें भी तनिक सन्देह ही रह जाता है कि हिन्दू धर्म ने, जो कि अभी भी अपने सुस्थिर मार्ग पर आश्चर्यजनक सन्तोष और विश्वास से बढ़ता जाता है, इस्लाम के प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव डाला है।'' डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव की भी मान्यता है कि, ''इन दो शक्तिशाली

मध्यकालीन भारत का इतिहास

(1200–1761 ई.)

▫ डॉ. कालूराम शर्मा ▫ डॉ. प्रकाश व्यास

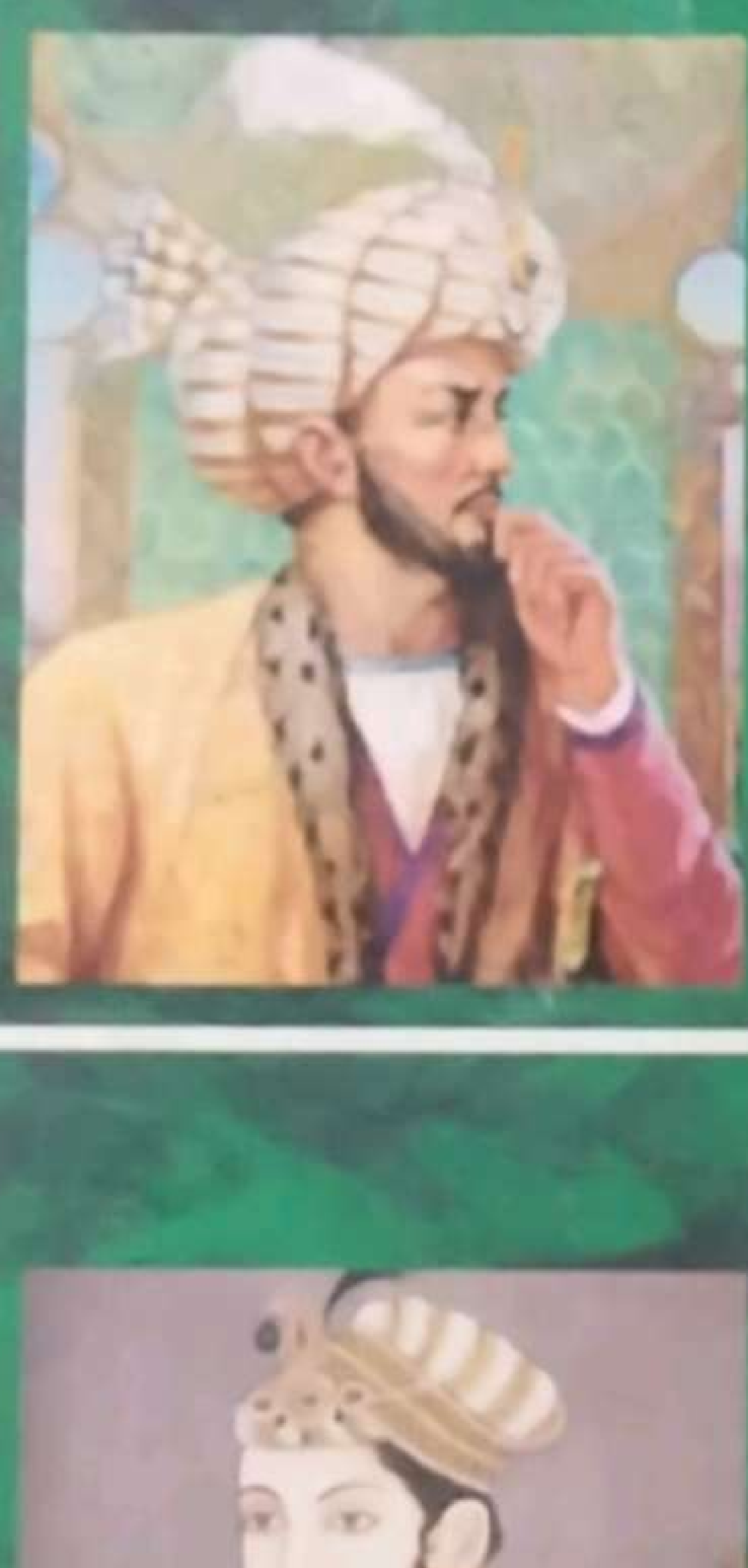

फारसी ग्रन्थ →

1. बाबरनामा / तुजुके बाबरी → बाबरनामा मुगल सम्राट बाबर की आत्मकथा है। जिसकी रचना बाबर द्वारा तुर्की भाषा में की गई किन्तु बाद में इसका फारसी भाषा में अनुवाद अकबर के समय अब्दुर रहीम खानेखाना द्वारा किया गया। इससे बाबर के जीवन व कार्यों की जानकारी प्राप्त होती है। बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व भौगोलिक स्थिति का वर्णन भी इसमें किया गया है।

2. तारीखे रशीदी → इसकी रचना मिर्जा हैदर दोगलात के द्वारा की गई यह बाबर का मौसेरा भाई था। इस ग्रन्थ में ~~बाब~~ बाबर व हुमायूं के शासन काल की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है।
उदा० कन्नौज के युद्ध में शेरशाह व हुमायूं के बीच 1540 में हुआ था उसमें वह हुमायूं का सेनापति था। उसने हुमायूं की पराजय के बारे में लिखा कि एक भी तीर - गोली नहीं चली और चकताई (मुगल) युद्ध के मैदान से भाग गये।

3. कानून - ए - हुमायूनी → इसकी रचना हुमायूं के समय ख्वाजा मीर के द्वारा की गई। इसको हुमायूं द्वारा अमीरे - अखबार की उपाधि दी गई। इसमें हुमायूं के शासनकाल के केवल प्रथम तीन वर्षों अर्थात 1530 से 1533 तक का इतिहास लिखा है। इस अवधि में हुमायूं द्वारा शासन सम्बन्धी नियम व महत्वपूर्ण पदो पर नियुक्तियो का उल्लेख मिलता है।

4. हुमायूनामा → इसकी रचना गुलबदन बेगम के द्वारा की गई। इस ग्रन्थ में उसने हुमायूं के सिंहासनारोहण से उसकी मृत्यु तक (1530 - 56) इतिहास लिखा है।

5. तजकिरात - उल - वाकियात → इसकी रचना जोहर आफताबची के द्वारा की गई। वह हुमायूं का विश्वासपात्र व्यक्तिगत सेवक था। वह आफताबची (हुक्का तैयार करने वाला) था। इस ग्रन्थ में उसने प्रारम्भ में हुमायूं के शासनकाल का वर्णन करने के बाद हुमायूं द्वारा ईरान में शरण लेना, पुनः भारत विजय का उल्लेख किया है। हुमायूं के शासनकाल के बारे में इसका विवरण गुलबदन बेगम से भी अधिक प्रामाणिक माना जाता है। क्योंकि उसने अधिकांश घटनाओं का वर्णन व्यक्तिगत जानकारी के द्वारा लिखा है।

Date
Page

6. तारीखे शेरशाही → अब्बास खान सरवानी - शेरशाह सूरी के शासनकाल का वर्णन - प्रशासनिक सुधार

7. अबुल फजल → यह अकबर का दरबारी इतिहासकार था तथा उसका घनिष्ठ मित्र व सलाहकार था। वह शेख मुबारक नागौरी का पुत्र था। अकबर द्वारा इसे 4000 का मनसब प्रदान की गई। जब वह अकबर के आदेश पर 1602 में दक्षिण भारत से आगरा लौट आया था तब सलीम के आदेश पर बुन्देलखण्ड के शासक वीरसिंहदेव बुन्देला द्वारा ओरछा के पास अबुल फजल की हत्या कर दी। अबुल फजल द्वारा अकबर के आदेश पर दो ग्रन्थो की रचना की -

1. अकबरनामा → इसे अबुल फजल ने तीन भागो में विभाजित किया है इसके प्रथम भाग में तैमूर लंग से लेकर हुमायूं तक के शासन का इतिहास लिखा है। द्वितीय भाग में अकबर के शासनकाल (1556-1603) वर्णित किया है। इसमें 1602 से 1605 तक वर्णन मोहम्मद आरिफ कन्धारी के द्वारा किया गया। तीसरा भाग आइने अकबरी को कहा जाता है। जिसमें अकबर के प्रशासनिक सुधारों का विस्तार से वर्णन किया है। इसके ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए, इतिहासकारो ने आइने-अकबरी को अबुल फजल की स्वतन्त्र रचना मानी है।

8. अब्दुल कादिर बदायूनी → इसका जन्म टोडाभीम में हुआ। यह धार्मिक कट्टरतापूर्ण विचार रखता था। वह अकबर की उदार धार्मिक नीति का कट्टर आलोचक था। अकबर के समय में अपने ग्रन्थ मुन्तखब-उल-तवारिख की रचना की। इसके तीन भाग है-

प्रथम भाग में गजनी के शासक सुबुक्तगीन से लेकर हुमायूं तक का मुस्लिम इतिहास लिखा है।

द्वितीय भाग में (1556-1595) तक का अकबर के शासन के 39 वर्षों का इतिहास लिखा है।

तृतीय भाग में उस समय प्रमुख मुस्लिम विद्वानो और सूफी सन्तों की जीवनियां लिखी है। उसका ग्रन्थ विशेष रूप से अकबर की धार्मिक नीति के बारे में जानकारी प्राप्त करने का मुख्य स्रोत है।

9. निजामुद्दीन अहमद → यह अकबर के समय मीर बक्शी (केन्द्रीय सैनिक विभाग का अध्यक्ष) था तथा फारसी का प्रमुख विद्वान था। उसने अपने ग्रन्थ

तबकाते अकबरी की रचना की। इसमें अकबर के शासनकाल के प्रथम 3? वर्षों का अर्थात (1556-1593) तक का इतिहास लिखा है।
तारीखे अकबरशाही → इसकी रचना मोहम्मद आरिफ कन्धारी ने की। इसमें अकबर के पूरे शासनकाल का वर्णन मिलता है।
तकमील - ए - अकबरनामा → इसकी रचना इनायतुल्ला खाँ के द्वारा की गई। इसमें अन्तिम तीन वर्षों का इतिहास मिलता है।
जुबदत - उत - तवारीख → इसकी रचना शेख नुरूलहक ने की। इसमें अकबर कालीन शासनदे(1595-1598) मे उत्तर भारत के अकाल का विवरण मिलता है।

अबुल फजल के अलावा अन्य अकबरनामा की रचना फैजी सरहिन्दी के द्वारा की गई। इसमें उसके असीरगढ़ की विजय का वर्णन किया गया है।

जहांगीरनामा । तुज़ुके जहांगिरी → यह जहांगीर की आत्मकथा है। यह फारसी भाषा मे लिखा गया है। इसमें जहांगीर के शासनकाल के प्रथम 17 वर्षों का (1605-1622) विवरण मिलता है। इनमें भी प्रथम 12 वर्षों का उल्लेख स्वयं जहांगीर द्वारा किया गया है। बाद के पांच वर्षों का उल्लेख सम्राट के आदेश पर मोतमिंद खां ने लिखा।
इकबालनामा - ए - जहांगीरी → इसकी रचना मोतमिंद खां ने की। इसमें जहांगीर के सम्पूर्ण शासन का विवरण मिलता है।
मासीरे जहांगीरी → इसकी रचना कामगार खां ने की।
वाकियाते जहांगिरी → इसकी रचना मोहम्मद के द्वारा की गई।

पादशाहनामा । बादशाहनामा → तीन पादशाहनामा की रचना की गई-
I कजवीनी कृत बादशाहनामा - केवल प्रथम 10 वर्षों का उल्लेख (1628-38)
II लाहोरीकृत बादशाहनामा - प्रथम 20 वर्षों का वर्णन (1628-48) सबसे प्रमुख रचना माना जाता है।
III वारिस कृत बादशाहनामा → अन्तिम 10 वर्षों का वर्णन (1648-58)

शाहजहानामा → शासन के अन्तिम वर्षों मे इनायत खां ने की। इस ग्रन्थ को मुल्लाखास भी कहा जाता है। सम्पूर्ण शासन का वर्णन।

अमल - ए - सालीह → रचना - मोहम्मद सालीह कम्बू ने की। इसमें शाहजहां की जन्म से मृत्यु तक का वर्णन मिलता है (1592-1666)
तारीखे शाहजहानी → रचना - मोहम्मद सादिक ने की। वह 6000 का मनसबदार था। इसमें इसके सम्पूर्ण शासनकाल का वर्णन है।
आलमगिरनामा → रचना - औरंगजेब के आदेश पर दरबारी इतिहासकार मोहम्मद काजिम के द्वारा की गई। इसमें केवल औरंगजेब के प्रथम 10 वर्षों का (1658-1668) इतिहास मिलता है। क्योंकि बाद में इसने इतिहास लिखने पर पाबन्दी लगा दी।
म आसिर - ए - आलमगिरी → इसकी रचना औरंगजेब के शासन के अन्तिम वर्षों में मुस्तेदखां के द्वारा की गई। इसमें 1658-1707 तक का सम्पूर्ण वर्णन है।
मुन्तखब - उल - लुबाब → इसकी रचना खाफी खां ने की। इसमें बाबर से लेकर 1733 तक मोहम्मद शाह तक का सम्पूर्ण मुगल वंश का इतिहास लिखा था। विशेष रूप से औरंगजेब व उसके बाद के मुगल सम्राटो के मुगल प्रशासन में उत्पन्न दोषो का विस्तार से वर्णन किया है। जैसे- मनसबदारी प्रथा में उत्पन्न दोषो का वर्णन

इन मुगल इतिहासकारो के अलावा मुगल काल में कुछ हिन्दु इतिहासकार भी हुए जिन्होने अपने ग्रन्थो की रचना फारसी भाषा में की

सुजानराय भण्डारी शाहजहां के समय खुलासत - उत - तवारीख
चतरमान → शाहजहां का समकालीन - चहार चमन - नियुक्त वजीरो का वर्णन किया है।
भीमसेन बुरहानपुरी → औरंगजेब का समकालीन (सेना में लेखाकार) - नुस्खा - ए - दिलकुशा (औरंगजेब के दक्षिण भारत में लड़े गये युद्धो का वर्णन)
ईश्वरदास नागर → औरंगजेब का समकालीन था। ग्रन्थ - फुतुहात - ए - आलमगिरि इसमें औरंगजेब के राठौड़ राजपूतो के साथ युद्धो का वर्णन किया है।

फतवा - ए - आलमगिरि → मुस्लिम कानूनो का संग्रह, जिसे औरंगजेब के आदेश पर 1663 में शेख निजाम के नेतृत्व में 6 मुस्लिम विद्वानो द्वारा इसकी रचना की गई।

विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त

1. राल्फ फिच → ब्रिटीश यात्री था जो अकबर के समय में 1590 में भारत आया। मुगल काल में आने वाला पहला विदेशी यात्री। यात्रा वृत्तान्त → इंग्लैण्ड्स पायोनियर टू इण्डिया → अकबर के शासनकाल का वर्णन
2. विलियम हॉकिन्स → अंग्रेज था। 1608 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि के रूप में जहाँगीर के समय भारत आया। इसका भारत आने का उद्देश्य भारत में अपनी फैक्ट्रिया खोलने के लिए जहांगीर की स्वीकृति प्राप्त करना। जहांगीर द्वारा उसे 400 की मनसब दी गयी। किन्तु पुर्तगालियों के विरोध के कारण वह जहांगीर की स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सका और 1612 तक भारत में रहा। यात्रा वृत्तान्त → अर्ली ट्रेवल्स → अपने निवास के दौरान जहांगीर के समय की घटनाओं का उल्लेख किया। विलियम हॉकिन्स जहांगीर से आगरा में मिला।
3. सर टामस रॉ → अंग्रेज यात्री था। 1615 में ब्रिटीश सम्राट जेम्स के राजदूत के रूप में जहांगीर के दरबार में आया था। जहांगीर से अजमेर में मिला। इसका उद्देश्य भी कम्पनी के लिए व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करना था। 1619 ई. तक भारत में रहा। यह अपने उद्देश्य में सफल रहा। यात्रावृत्तान्त → सर टॉमस रॉ एम्बेसी → जहाँगीर के शासनकाल के बारे में विस्तृत जानकारी
4. पेलसर्ट → डच यात्री था। 1620 में जहांगीर के समय भारत आया। 1627 तक भारत में रहा। यात्रावृत्तान्त → रिमोन्सट्रेन्टी → जहांगीर के शासन काल का उल्लेख।
5. मेनटीक → इतालवी यात्री था। 1640 में शाहजहां के समय आया। यात्रावृत्तान्त → इटनेरेरियों → शाहजहां के शासनकाल में भारत की समृद्धि का विस्तार से वर्णन किया। वह मुगल राजपरिवार के रहन-सहन व्यवहार से काफी प्रभावित हुआ। इसके अनुसार ताजमहल का डिजाइन जेरोनियो वेरेनियो नामक इतालवी शिल्पकार ने तैयार किया।
6. ट्रेवरनियर → फ्रांसिसी यात्री था। 1640 में शाहजहां के समय भारत आया। यह व्यवसाय से जौहरी था इसलिए शाहजहां का घनिष्ठ मित्र बन गया। यात्रावृत्तान्त → ट्रेवल्स इन इंडिया → मुख्यतः 17वीं शताब्दी के भारत की आर्थिक स्थिति का विस्तृत विवरण किया।

7. बर्नियर → फ्रांसिसी यात्री था। व्यवसाय से डॉक्टर था। 1658 में उस समय भारत आया जब शाहजहां के पुत्रों में उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हो गया था। 1670 तक भारत में रहा। यात्रावृत्तान्त → ट्रेवल्स इन द मुगल एम्पायर - उत्तराधिकार युद्ध के साथ-2 17वीं शताब्दी के भारत की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का विवरण। बर्नियर → शाहजहां के समय में विदेशी व्यापार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। "भारत ऐसा खड्डा है, जिसमें निरन्तर विश्व का सोना-चांदी आकर एकत्रित हो रहा है, जिसके बाहर जाने का कोई स्रोत नहीं है।

8. मनुची → इतालवी यात्री था। 1653 में शाहजहां के समय भारत आया स्थायी रूप से भारत में बस गया था। 1717 में उसकी मृत्यु हो गयी। लिखित पुस्तक → स्टोरिया डोमोगोर (इटालियन में) हिस्ट्री ऑफ मुगल्स औरंगजेब का कट्टर आलोचक और दारा का समर्थक था। अपनी पुस्तक में उत्तराधिकार के युद्ध में दारा की पराजयों के कारणों का, शाहजहां के कैदी जीवन का और भारत की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का विवरण किया।

विलियम फिंच → अंग्रेज यात्री था। 1608 में जहांगीर के समय भारत आया। यात्रावृत्तान्त → प्रोजे जर्नल - अनारकली का विवरण दिया।

एडवर्ड टैरी → टामस रो का पादरी था उसके साथ भारत आया। यात्रावृत्तान्त → अर्ली ट्रेवल्स इन इण्डिया - जहांगीर के शासनकाल का विवरण

भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना

जहीरुद्दीन मोहम्मद बाबर (1526-30) बाबर का जन्म 1483 में फरगना में हुआ। फरगना मध्य-एशिया में छोटा-सा राज्य था। बाबर के पिता उमर शेख मिर्जा फरगना के शासक थे। उनकी राजधानी अन्दीजान थी। बाबर तैमूरलंग का पांचवा वंशज माना जाता है। 1494 में उमरशेख मिर्जा की मृत्यु के कारण बाबर फरगना का शासक बना। इतिहासकारों द्वारा बाबर के जीवन को तीन चरणों में विभाजित किया गया -

पहला चरण → 1494 से 1502 फरगना के शासक के रूप में → बाबर मध्य एशिया में तैमूरलंग की तरह विशाल राज्य की स्थापना करना चाहता था किन्तु उसके मुख्य प्रतिद्वन्द्वी शैबानी खां उजबेग ने 1502 में सराय पुल के युद्ध में बाबर को पराजित करके उसे मध्य एशिया से निकाल कर बाहर कर दिया।

दूसरा चरण → 1505-1525 काबुल के शासक के रूप में → 1505 में बाबर काबुल पर अधिकार करने में कामयाब हुआ। बाबर काबुल के छोटे से राज्य से सन्तुष्ट नहीं था। वह राज्य प्रसार करना चाहता था। इसी उद्देश्य से भारत पर बाबर द्वारा आक्रमण किए गए। जैसा कि बाबर ने स्वयं अपनी आत्मकथा बाबरनामा में लिखा है कि उस समय भारत किसी एक शासक के अधिकार में न होकर पांच प्रमुख मुस्लिम राज्यों और दो हिन्दू राज्यों में बंटा था। मुस्लिम राज्य- मालवा - महमूद खिलजी II, गुजरात- मुजफ्फर शाह II, दिल्ली- इब्राहिम लोदी, बंगाल - नुसरतशाह, बहमनी राज्य- कलीमुल्ला शाह

बाबर ने इस बात का उल्लेख किया कि कलीमुल्ला को उसके वजीर अमीर अली बरीद शाह ने कैद करके सत्ता अपने हाथ में ले ली। कलीमुल्ला शाह ने बाबर से मदद की प्रार्थना की।

हिन्दु राज्य- मेवाड़- राणा सांगा, विजयनगर- कृष्णदेवराय
इन राज्यों में भी उस समय उत्तर भारत की दो प्रमुख राजनैतिक शक्तियां अफगानों और राजपूतों को माना जाता था।
अफगानों के नेता इब्राहिम लोदी दिल्ली सुल्तान था किन्तु इब्राहिम लोदी के कठोर व्यवहार के कारण अधिकांश अफगान सरदार उससे नाराज थे। दरिया खां नामक अफगान सरदार ने बिहार में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। इसके अतिरिक्त पंजाब का गवर्नर दौलत खां लोदी भी उससे नाराज था। दौलत खां लोदी ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। आमंत्रित करने के लिए दिलावर खां और आलम खां लोदी दो अफगान सरदारों को भेजा।

अफगानों के अतिरिक्त राजपूत उस समय उत्तर भारत की दूसरी प्रमुख शक्ति थी जिनके नेता मेवाड़ के महाराणा सांगा थे। जिन्होंने पहली बार राजस्थान के राजपूत राजाओं को अपने नेतृत्व में संगठित करके राजपूतों का शक्तिशाली संघ बनाया। यहां तक कि राणा सांगा ने इब्राहिम लोदी को दो युद्धों में पराजित किया। खातोली (बूंदी अब कोटा में) का युद्ध (1518) → राणा सांगा विजयी हुए।
बाड़ी (धौलपुर) का युद्ध (1519) → राणा सांगा ने इब्राहिम को हराया।
(मियां माखन, मियां हसन सांगा के विरुद्ध लड़े)

→ बाबर को भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित करने के लिए पांच युद्ध लड़ने पड़े -
1. पहला आक्रमण 1519 के प्रारम्भ में भेरा और बाजौर (पंजाब) पर इन पर अधिकार करके हिन्दु बेग को गवर्नर बनाया किन्तु अफगानों द्वारा उसे पराजित करके वहां से निकाल दिया।
2. दूसरा आक्रमण सित० 1519 में पेशावर पर हुआ और उसने युसुफजाई अफगानों को पराजित करके पेशावर पर कब्जा कर लिया। किन्तु उसी समय बाबर के विरुद्ध बदख्शां में विद्रोह हो जाने के कारण पेशावर उसके हाथ से निकल गया।
3. तीसरा आक्रमण 1520 के प्रारम्भ में पुनः भेरा, बाजौर पर किया, अधिकार किया। किन्तु बाबर के विरुद्ध शाह अरगून के द्वारा विद्रोह कन्धार में कर देने के कारण भेरा बाजौर बाबर के हाथ से निकल गया।
4. चौथा आक्रमण दिस० 1524 में दौलत खां के निमंत्रण पर पंजाब पर हुआ। उसने दौलत खां को पराजित करके पंजाब पर अधिकार किया इसके बाद 1524 में पुनः भारत पर आक्रमण किया।

पानीपत का प्रथम युद्ध → बाबर और इब्राहिम लोदी के बीच 21 अप्रैल 1526 को हुआ। इस युद्ध में ग्वालियर का शासक विक्रमजीत बाबर के विरुद्ध इब्राहिम लोदी के पक्ष में लड़ा। इस युद्ध में बाबर द्वारा इब्राहिम को पराजित किया।

परिणाम → 1. इस युद्ध के बाद भारत में लोदी वंश / दिल्ली सल्तनत का शासन समाप्त हो गया। बाबर द्वारा भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना
II. इब्राहिम लोदी के नेतृत्व में अफगानों के संघ को बाबर ने समाप्त कर दिया।
III. रशब्रुक विलियम्स ने अपनी पुस्तक इन एम्पायर बिल्डर ऑफ द 16th सेंचुरी में लिखा है कि इस युद्ध के बाद बाबर का अधिकार आगरा, दिल्ली पर हो सका।

बाबर की विजय के कारण → 1. सबसे प्रमुख कारण उसके पास तोपखाना होना था। तोपखाने का अध्यक्ष - उस्ताद अली व मुस्तफा तुर्की सेनानायक थे
II. बाबर द्वारा प्रयुक्त युद्ध शैली मध्य एशिया में प्रचलित विभिन्न युद्ध शैलियों का समन्वय थी - तुलुगमा का प्रयोग, रिजर्व सेना का प्रयोग, तोपखाने का प्रयोग
तुलुगमा → युद्ध शैली थी जिसका प्रयोग बाबर ने उज्बेगो से सीखा तुलुगमा में दो सैनिक टुकड़िया होती थी। जिन्हें सेना के दोनो कोनो पर नियुक्त किया जाता था। जिनका काम पूरी तरह युद्ध छिड़ जाने पर

... आक्रमण करना था।

iii. इब्राहिम लोदी की तुलना में बाबर अधिक अनुभवी कुशल सेनानायक था।

iv. अफगानों में एकता का अभाव होना जिसके कारण इब्राहिम लोदी को बाबर के विरुद्ध सभी अफगान सरदारों का समर्थन प्राप्त नहीं हो सका।

खानवा का युद्ध [17 मार्च, 1527] → खानवा का युद्ध बाबर और राणा सांगा के बीच लड़ा गया। बाबर द्वारा इस युद्ध को जिहाद घोषित किया गया। हसन खां मेवाती और महमूद लोदी राणा सांगा की तरफ से लड़े।

* कर्नल टॉड ने लिखा है कि इस युद्ध में राणा सांगा के पक्ष में 7 राजपूत राजाओं, 9 राव और 104 राजपूत सरदारों द्वारा युद्ध किया गया। जिनमें मुख्य राजा- जोधपुर के शासक राव गांगा के पुत्र राव मालदेव, बीकानेर के राव जैतसी के पुत्र कल्याण मल, आमेर के पृथ्वीराज, मेड़ता के वीरमदेव, डूंगरपुर के उदयसिंह, चन्देरी के मेदनीराय, ईडर के भारमल, सिरोही के अखैराज आदि शासक थे। किन्तु इस युद्ध में राणा सांगा की पराजय हो गयी।

परिणाम- इस युद्ध के बाद राणा सांगा के नेतृत्व में राजपूतों का जो शक्तिसंघ था, उसे बाबर द्वारा नष्ट कर दिया गया।
इस युद्ध के बाद भारत में बाबर की स्थिति सुरक्षित व मजबूत हो गयी क्योंकि भारत में बाबर का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं बचा था।

सांगा के पराजय के कारण- i. बाबर के पास तोपखाना होना

ii. बाबर द्वारा प्रयुक्त तुलुगमा युद्ध पद्धति

iii. राणा सांगा का युद्ध के दौरान घायल होकर मूर्छित हो जाना और उनको मैदान से हटा लेना

iv. कर्नल जेम्स टॉड और हरबिलास शारदा ने राणा सांगा की पराजय का कारण रायसिन (भोपाल) के शासक राय सिलहदी द्वारा सांगा के साथ विश्वासघात करना माना है। लेकिन अधिकांश इतिहासकार इस मत को नहीं मानते

चन्देरी का युद्ध [जनवरी 1528]
चन्देरी (MP) का युद्ध बाबर और मेदनीराय के बीच जिसमें बाबर द्वारा मेदनीराय को हराकर चन्देरी पर कब्जा कर लिया गया।

घाघरा का युद्ध [6 मई 1529]
घाघरा (सरयू नदी, UP) महमूद लोदी के नेतृत्व में बिहार के अफगानों बंगाल के सुल्तान नुसरतशाह की संयुक्त सेना और बाबर के बीच

* बाबर की विजय। इस युद्ध के बाद बाबर द्वारा बिहार प्रान्त को दो भागों में विभक्त किया और पश्चिमी बिहार को मुगल साम्राज्य में और पूर्व बिहार को इस शर्त पर ~~छोड़~~ अफगानों के पास छोड़ा कि वे भविष्य में मुगल प्रदेशों पर आक्रमण नहीं करेंगे।
* बाबर द्वारा लड़ा गया अन्तिम युद्ध था।

इस प्रकार इन चार युद्धों में बाबर ने अफगानों, राजपूतों को पराजित करके पंजाब से बिहार तक के प्रदेश पर अधिकार करके मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

* बाबर द्वारा फारसी भाषा में नई काव्य शैली मुबाइयान का आविष्कार
* बाबर द्वारा भारत में ताश का खेल लाया गया, जिसे फारसी भाषा में गंजीफा कहते थे।

नासिरुद्दीन महम्मद हुमायूं [1530-40]

निजामुद्दीन मीर खलीफा का षड्यंत्र → बाबर के समय में वजीर नियुक्त था बाबर का घनिष्ठ मित्र था। बाबर के अन्तिम दिनों में बीमार हो जाने का लाभ उठाकर मीर खलीफा ने बाबर के बाद हुमायूं की जगह बाबर के बहनोई मेंहदी ख्वाजा को बादशाह बनाने का षड्यंत्र रचा था। यद्यपि बाद में मीर खलीफा ने षड्यंत्र को रद्द कर दिया और हुमायूं को बादशाह बनने में मदद की। इस षड्यंत्र का उल्लेख तबकाते अकबरी के लेखक निजामुद्दीन अहमद के द्वारा किया गया। उसे इसकी जानकारी अपने पिता मोहम्मद मुकीम से मिली थी, जो इसका प्रत्यक्षदर्शी था।

* हुमायूं को सिंहासन पर बैठने के बाद तीन प्रतिद्वन्द्वीयों का सामना करना पड़ा

1. हुमायूं द्वारा सर्वप्रथम महमूद लोदी पर आक्रमण किया गया जिसके फलस्वरूप अगस्त, 1532 में दौरोह / देवरिया (बाराबांकी, UP) का युद्ध हुआ। हुमायूं की विजय। अधिकांश अफगान सरदारों की मृत्यु
2. **हुमायूं और बहादुरशाह (मालवा, गुजरात का सुल्तान)**
हुमायूं को पराजित करके मुगल साम्राज्य पर अधिकार करना चाहता था। उसने रूमी खां नामक तुर्की सेनानायक के ~~रूप~~ नेतृत्व में एक शक्तिशाली

तोपखाने का प्रबन्ध तथा खुले रूप से हुमायूं के विरोधियों को अपने राज्य में शरण दे रहा था। किन्तु अन्त में हुमायूं के द्वारा गुजरात पर आक्रमण का मुख्य कारण बहादुर शाह द्वारा मुगल विद्रोही सरदार मोहम्मद जमां मिर्जा को शरण देना था। जिसके फलस्वरूप हुमायूं और बहादुरशाह के बीच अप्रैल 1535 में मन्दसौर का युद्ध हुआ। जिसमें हुमायूं की विजय हुयी। बहादुर शाह को भागकर पुर्तगालियों के पास द्यू (दीव) बन्दरगाह में शरण ली।

चम्पानेर का युद्ध – हुमायूं द्वारा बहादुरशाह को निष्कासित करने के बाद चम्पानेर के किले पर आक्रमण किया गया। चम्पानेर का किला बहादुर शाह के सेनानायक इख्तियार खां के अधिकार में था। अगस्त 1535 में चम्पानेर का युद्ध हुआ जिसमें हुमायूं की विजय और चम्पानेर पर अधिकार

* गुजरात मालवा पर अधिकार करने के बाद हुमायूं द्वारा गुजरात का प्रबन्धक अपने छोटे भाई असकरी को नियुक्त किया गया। अपने विश्वासपात्र मुगल सरदार हिन्दु बेग को असकरी का सलाहकार नियुक्त किया। किन्तु असकरी द्वारा अपना उत्तरदायित्व उचित रूप से पूरा न करने तथा हुमायूं के द्वारा माण्डू में भोग विलास में समय बर्बाद करना तथा प्रशासन की उचित व्यवस्था न करना, गुजरात की जनता को विश्वास में न लेना और जनता के मुगलों के विद्रोह के फलस्वरूप बहादुरशाह ने हुमायूं को निष्कासित करके गुजरात पर पुनः अधिकार कर लिया

3 हुमायूं और शेर खां-

हुमायूं का सबसे मुख्य प्रतिद्वन्द्वी शेर खां था। हुमायूं और शेर खां के बीच उत्तर भारत में सर्वोच्चता स्थापित करने को लेकर दो युद्ध लड़े गये-

चौसा (बिहार) का युद्ध – 26 जून, 1539 में लड़ा गया। इसमें हुमायूं की पराजय हुयी।

चौसा के युद्ध का महत्व → i. यह पहला युद्ध था जिसमें शेर खां के नेतृत्व में अफगानों द्वारा मुगलों को पराजित किया गया।

ii. इस युद्ध के बाद ही शेरखां द्वारा शेरशाह की उपाधि धारण की गयी।

iii. इस युद्ध के बाद ही शेरशाह ने अपना राज्याभिषेक चौसा में करवाया।

* हुमायूं द्वारा चौसा के युद्ध के बाद निजाम नामक भिश्ती द्वारा जान बचाने के उपलक्ष्य में उसको एक दिन के लिए मुगल बादशाह बनाया। इस घटना का उल्लेख गुलबदन बेगम ने हुमायूंनामा में किया। निजाम द्वारा चमड़े के सिक्के जारी किए गए।

कन्नौज / बिलग्राम का युद्ध – 17 मई 1540 में, जिसमें एक बार पुनः शेरशाह द्वारा हुमायूं को पराजित किया गया। युद्ध के बाद शेरशाह ने हुमायूं को हिन्दुस्तान से निष्कासित कर दिया। कुछ वर्षों के लिए भारत में मुगल साम्राज्य समाप्त हो गया। शेरशाह द्वारा अफगान राज्य की पुनः स्थापना की जिसे सूर साम्राज्य के नाम से जाना जाता है।

सूर साम्राज्य (1540-55)

शेरशाह सूरी (1540-45)

वर्तमान इतिहासकारों में सबसे प्रामाणिक पुस्तक प्रो. कालिका रंजन कानूनगो के द्वारा लिखित शेरशाह एण्ड हिज टाइम्स - शेरशाह का जन्म 1486 में हिसार में हुआ। उसके बचपन का नाम फरीद था। उसके पिता हसन खां सूर थे, जिन्हें सुल्तान सिकन्दर लोदी के द्वारा बिहार प्रान्त में स्थित सासाराम का परगना जागीर में दिया गया। हसन खां सूर ने 1511-1518 तक फरीद को सासाराम का प्रबन्धक नियुक्त किया। शेर खां को सासाराम के प्रबन्धक के रूप में प्रशासन का जो प्रशिक्षण मिला, उसका बाद में शेरशाह के जीवन के उत्थान में मुख्य योगदान रहा।

* फरीद की शिक्षा जौनपुर में हुई।

* 1522-27 तक वह बिहार के शासक बहार खां की सेवा में नियुक्त था। बहार खां द्वारा फरीद को शेर खां की उपाधि दी गयी।

* 1528-29 तक वह मुगल सम्राट बाबर की सेवा में नियुक्त रहा। बाबर के लिए चन्देरी के युद्ध में लड़ा था।

* 1529 के अन्त में शेर खां वापस बिहार लौट आया था वह बिहार के सुल्तान जलाल खां का संरक्षक और प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ।

* शेर खां की अगली मुख्य उपलब्धि सूरजगढ़ का युद्ध था जो 1534 में इब्राहिम खां के नेतृत्व में बंगाल राज्य की सेना और शेर खां के बीच हुआ जिसमें शेर खां की विजय हुयी। इसके फलस्वरूप शेर खां को बंगाल की सेना का विशाल राजकोष, हथियार बड़ी संख्या में घोड़े प्राप्त हुये।

शेरशाह के प्रशासनिक सुधार

शेरशाह के प्रशासनिक सुधारों का उल्लेख अब्बास खां सरवानी ने अपनी पुस्तक तारीखे-शेरशाही में किया। यद्यपि शेरशाह द्वारा केवल पांच वर्ष शासन किया गया किन्तु इस अवधि में इतनी उत्कृष्ट शासन व्यवस्था लागू की कि उसके आधार पर शेरशाह की गिनती विश्व के महान्

शासकों में की जाती है।

किन्तु डॉ॰ आर॰ पी॰ त्रिपाठी कृत सम आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन में लिखा है कि शेरशाह एक सुधारक था, वह किसी मौलिक व्यवस्था का प्रवर्तक नहीं था। ऐसा लिखने के पीछे उनका यह अभिप्राय था कि शेरशाह द्वारा लागू की गयी शासन व्यवस्था उसकी मौलिक व्यवस्था नहीं थी बल्कि उसके कुछ सुधार सल्तनतकाल में प्रचलित रहे थे।

शेरशाह के प्रमुख सुधार →

1. केन्द्रीय मन्त्रीपरिषद → शेरशाह की केन्द्रीय शासन व्यवस्था प्रकृति: दिल्ली सुल्तानो की केन्द्रीय शासन व्यवस्था पर आधारित थी। क्योंकि सल्तनतकाल में केन्द्रीय सरकार में जिन छः मन्त्रियों की नियुक्ति की गई थी, वही छः मन्त्री शेरशाह के द्वारा भी केन्द्र में नियुक्त किए गए- i. वजीर ii. दीवाने-आरिज iii. दीवाने इंसा iv. दीवाने रसालात v. सद्र-उस-सुदुर vi. काजी-उल-कुजात

प्रान्तीय शासन व्यवस्था-

प्रो॰ कानूनगो का मानना है कि शेरशाह द्वारा अपने साम्राज्य को प्रान्तों जैसी बडी प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित न करके अपने साम्राज्य को सरकारो (जिलों) में विभक्त किया। अब्बास खां शरवानी ने शेरशाह के समय में कुल सरकारों की संख्या 66 बतायी है। प्रत्येक सरकार में प्रशासन चलाने के लिए दो अधिकारियों की नियुक्ति की → 1.

1. शिकदार-ए-शिकदारान- सैनिक अधिकारी था और सरकार का अध्यक्ष था। इसका मुख्य कार्य अपनी सरकार में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना और आन्तरिक विद्रोह का दमन करना था।

2. मुन्सिफ-ए-मुन्सिफान- राजस्व विभाग का अध्यक्ष। मुख्य कार्य→ भू-राजस्व से संबंधित कार्यों को देखना था।

परगना - शेरशाह द्वारा प्रत्येक सरकार को अनेक परगनो में विभाजित किया गया था। अब्बास खां सारवानी ने शेरशाह के समय में कुल परगनो की संख्या 1 लाख 13 हजार बतायी है। उसके द्वारा प्रत्येक परगने में पांच अधिकारी नियुक्त किए गए-

शिकदार (1) - परगने का अध्यक्ष, परगने में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना

मुन्सिफ (1) - परगने का भू-राजस्व अधिकार

खजांची/फोतेदार (1) - परगने के खजाने का अध्यक्ष

कारकुन (2) - लिपिक। क्लर्क। प्रत्येक परगने में दो कारकुन

एक हिन्दी भाषा का ज्ञाता और दूसरा फारसी भाषा का ज्ञाता। मुख्य कार्य- अपने परगने के भू-राजस्व संबंधी रिकॉर्डस को हिन्दी और फारसी भाषा में लिखना था।

गाँव - प्रत्येक परगने में अनेक गांव सम्मिलित थे। गांव में दो मुख्य अधिकारी थे - I. मुकद्दम II. पटवारी

शेरशाह के भू-राजस्व सुधार

शेरशाह के प्रशासनिक सुधारो में सबसे प्रमुख भू-राजस्व सुधार माने जाते हैं उसके भू-राजस्व सुधारों की सबसे मुख्य विशेषता यह थी कि उसने भू-राजस्व सुधारो में किसानो के हितो को अधिक से अधिक महत्व दिया था क्योंकि शेरशाह ~~कहत~~ कहा करता था कि किसान किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के आधार स्तम्भ होते हैं। अतः हर शासक का यह मुख्य कर्त्तव्य होता है कि वह किसानो के हितो को अधिक महत्व दे। क्योंकि यदि किसान सन्तुष्ट होगा तो वह अधिक उत्पादन करेगा। जिससे व्यापार उद्योगो का विकास होगा।

I. शेरशाह ने स्थानीय जमींदारो द्वारा किसानो से भूमिकर वसूल करने की व्यवस्था को समाप्त कर दिया। अब उसने राजस्व अधिकारियों द्वारा किसानों से भूमिकर वसूल करने की व्यवस्था को लागू किया जिसे कुछ इतिहासकारो ने रैय्यतवाडी व्यवस्था के नाम से पुकारा।

II. शेरशाह द्वारा भूमिकर निर्धारण के लिए पैमाइश पद्धति को पुनः लागू किया गया। उसने पैमाइश की पद्धति को पूर्ण शक्ति के साथ अपने सारे साम्राज्य में लागू किया। किन्तु मुल्तान एकमात्र ऐसा अपवाद था जहां शेरशाह ने पैमाइश की पद्धति को लागू नहीं किया।

III. शेरशाह द्वारा विभिन्न फसलों की भूमिकर दरें स्थायी रूप से लागू करदी उनकी एक सूची तैयार करवायी गयी, जिसे अबुल फज़ल ने राय (रे) के नाम से पुकारा। फजल लिखता है कि भूमि कर की दरों को निर्धारित करने के लिए एक निश्चित पद्धति का अनुसरण किया गया। जैसे- शेरशाह द्वारा कृषि भूमि को तीन भागो में बांटा गया → उत्तम, मध्यम, निम्न ये तीनो प्रकार की भूमि की उपज को जोडकर उनकी औसत उपज मालूम की गयी। औसत उपज का 1/3 भाग भू-कर के रूप में निर्धारित किया गया।

IV. शेरशाह द्वारा भूमिकर की दर 1/3 निर्धारित की गयी किन्तु मुल्तान एकमात्र अपवाद था जहां उसने भूमिकर की दर 1/3 की जगह 1/4 लागू की।

V. भूमि कर के अलावा शेरशाह द्वारा किसानो पर दो कर और लागू किए गए।
जरीबाना – एक कर था जो भूमि की नाप की एवज में लिया जाता था।
महासिलाना – भूमि कर संग्रह किए जाने के एवज में लिया जाता था। दोनों कर भूमिकर का 2.5 से 5 % तक लिया जाता था।

VI. शेरशाह द्वारा किसानो को उनकी भूमि के पक्के पट्टे दिए गए थे। जिसमें किसान की पूरी भूमि का ब्यौरा उल्लेखित होने के साथ भूमिकर की दर का भी उल्लेख

शेरशाह के सैनिक सुधार

शेरशाह के सैनिक सुधार पूर्णतः अलाउद्दीन खलजी के सैनिक सुधारो पर आधारित थे। उदाहरण के लिए शेरशाह के द्वारा ही खलजी की भांति एक स्थायी सेना का गठन किया गया। जिसमें 1,50,000 घुड़सवार, 25,000 पैदल, 5000 हाथी थे।

* शेरशाह द्वारा भी सेना में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने के उद्देश्य से दाग और हुलिया प्रथा को पुनः प्रारम्भ किया गया।

मुद्रा सुधार

शेरशाह द्वारा सर्वप्रथम उसके पूर्ववर्ती मुस्लिम शासकों के समय से जो भी सिक्के चले आ रहे थे उन सब को बन्द कर दिया। अब उसके द्वारा रुपया और दाम दो सिक्के जारी किए गए। रुपया चांदी का सिक्का – 180 ग्रेन और दाम तांबे का सिक्का – दाम को पैसा। फुलुस भी कहते थे और एक रुपये में 64 दाम होते थे।

* शेरशाह द्वारा चांदी के रुपये के छोटे सिक्के जारी किए गए। जैसे- अठन्नी (अठगानी), दुवन्नी (दोगानी), चवन्नी (चौगानी), इकन्नी (ऐगानी)
* शेरशाह द्वारा सोने का सिक्का अशरफी जारी किया गया।
* शेरशाह द्वारा पहली बार अपने सिक्कों पर फारसी के साथ देवनागरी हिन्दी में भी लेख लिखवाये।

शेरशाह की मुद्रा प्रणाली मुगलकाल में भी प्रचलित रही। किन्तु मुगल काल में अकबर द्वारा एक रुपये में 40 दाम कर दिए गए।

पुलिस सुधार

यद्यपि शेरशाह द्वारा एक अलग से पुलिस विभाग का गठन नहीं किया गया किन्तु उसके द्वारा शिकदार-ए-शिकदारान और शिकदारों को सैनिक कार्यों के साथ-2 पुलिस से संबंधित कार्य भी करने की जिम्मेदारी सौंपी। जैसे- चोरी-डकैती रोकना, अपराधियों को दण्डित करना

इसके साथ ही शेरशाह ने स्थानीय उत्तरदायित्व का सिद्धान्त लागू किया जिसके अनुसार यदि किसी गांव ~~के मुखिया~~ में या उसकी सीमा के अन्तर्गत कोई भी चोरी-डकैती होती थी तो उस गांव के मुखिया को ये उत्तरदायित्व होता था कि वह उस चोरी के माल को बरामद करे यदि वह ऐसा करने में असफल होता था तो उसे सीधा मृत्यु दण्ड ही दिया जाता था। अब्बास खां सारवानी लिखता है कि शेरशाह द्वारा लागू इस व्यवस्था के फलस्वरूप मार्ग पूरी तरह सुरक्षित हो गए थे और चोरी-डकैती पूरी तरह समाप्त हो गयी।

डाक एवं गुप्तचर विभाग

शेरशाह द्वारा एक पृथक डाक एवं गुप्तचर विभाग की स्थापना की जिसका अध्यक्ष दरोगा-ए-डाक चौकी कहलाता था। उसके साम्राज्य के सभी भागों में बड़ी संख्या में गुप्तचरों की नियुक्ति कर दी। जिनका कार्य अपने-2 प्रदेश में घटने वाली सभी प्रमुख घटनाओं की सूचना शेरशाह को भेजना था। शेरशाह ने प्रत्येक डाक चौकी पर दो घुड़सवार नियुक्त किए जिनका काम अपनी डाक चौकी से सरकारी डाक को अगली डाक चौकी पर पहुंचाना होता था। अब्बास खां लिखता है कि इस व्यवस्था के फलस्वरूप मुल्तान जैसे दूर-दराज प्रदेश से भी दो दिन में डाक आगरा सुल्तान के पास पहुंच जाती थी।

शेरशाह के निर्माण कार्य / स्थापत्य कला में योगदान

* शेरशाह द्वारा दो किलों का निर्माण किया गया – I. रोहतासगढ़ (पंजाब) में झेलम नदी के किनारे किया गया। II. शेरमण्डल (दिल्ली) में हुमायूं द्वारा निर्मित दीन पनाह नामक किले को गिरवाकर शेरमण्डल के नाम से नया किला बनवाया, जिसे दिल्ली के पुराने किले के नाम से जाना जाता है। उसने शेरमण्डल किले के अन्दर एक मस्जिद का निर्माण करवाया जिसे किला-ए-कुहना के नाम से जाना जाता है।

शेरशाह द्वारा अनेक सड़को का निर्माण करवाया गया जिनमें 4 सड़के अधिक महत्वपूर्ण थी। 1. पंजाब के रोहतासगढ़ दुर्ग से प्रारम्भ होकर सुनार गाँव (बांग्लादेश) तक जाती थी। इसे सड़क-ए-आजम कहा जाता था। यह 1500 कोस लम्बी थी। अब इसे जी.टी. रोड कहते है।
2. मुल्तान से लाहौर तक
3. आगरा से बुरहानपुर (M.P.) तक
4. आगरा से जोधपुर तक

* शेरशाह द्वारा निर्मित इमारतों में सबसे प्रमुख उसका स्वंय का मकबरा था जिसका निर्माण उसने अपने जीवनकाल में सासाराम में करवाया। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह मकबरा मध्यकालीन भारत की एक प्रमुख इमारत मानी जाती है। यहां तक कि कनिंघम का तो यहां तक मानना है कि तकनीकी दृष्टि से शेरशाह का मकबरा ताजमहल से भी अधिक महत्वपूर्ण है। शेरशाह का मकबरा झील के बीचो बीच बना है।
* शेरशाह द्वारा सभी प्रमुख सड़को पर प्रत्येक दो कोस के फासले पर कुल 1700 सरायों का निर्माण करवाया गया। जिनमें यात्रियो के खाने-पीने की मुफ्त व्यवस्था की गई। ये डाक चौकी का भी कार्य करती थी।

शेरशाह की मृत्यु मई 1545 में कालिंजर के घेरे के दौरान बारूद में विस्फोट हो जाने से हो गयी।

शेरशाह के उत्तराधिकारी हुमायूं की भारत पुनर्विजय

* शेरशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र इस्लाम शाह सिंहासन पर बैठा (1545-53) किन्तु 1553 मे इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद सूर साम्राज्य तीन सुल्तानो में विभाजित हो गया -

i. सिकन्दरशाह सूर - पंजाब से लेकर आगरा, दिल्ली तक के प्रदेश पर अधिकार किया
ii. आदिलशाह सूर (नृतक सम्राट) - बिहार का स्वतन्त्र शासक, हेमू इसका वजीर था
iii. मोहम्मद शाह सूर - बंगाल का स्वतन्त्र शासक

* 1540 मे जब शेरशाह के द्वारा कन्नौज के युद्ध में हुमायूं को पराजित कर हिन्दुस्तान से निष्कासित कर दिया गया तब हुमायूं द्वारा सिन्ध प्रान्त में स्थित अमरकोट राज्य के हिन्दु शासक राणा विरसाल के यहां शरण ली।
* अमरकोट में 15 अक्टूबर 1542 मे अकबर का जन्म हुआ। किन्तु जब हुमायूं के राणा वीरसाल के साथ संबंध खराब हो गए तब हुमायूं ने ईरान के सम्राट शाह तहमास के यहां शरण ली। बाद में हुमायूं द्वारा 1555 में पंजाब के शासक सिकन्दर सूर के साथ दो युद्ध लड़े गये -

i. मच्छीवाड़ा का युद्ध (मई 1555) → लुधियाना में, हुमायूं की विजय
ii. सरहिन्द (पंजाब) का युद्ध (जून 1555) → हुमायूं की विजय। हुमायूं द्वारा भारत में लड़ा गया अन्तिम युद्ध था। इस युद्ध के बाद हुमायूं ने अकबर को पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया तथा बैराम खां को अकबर का अतालीक (संरक्षक) बनाया।

* जुलाई 1555 में हुमायूं द्वारा आगरा और दिल्ली पर अधिकार कर लिया गया। किन्तु 6 महीने बाद जनवरी 1556 में हुमायूं की दिल्ली में स्थित शेरमण्डल दुर्ग के पुस्तकालय की सीढ़ियो से लुढ़क जाने से मृत्यु हो गयी।

इसकी मृत्यु पर लेनपूल ने लिखा है कि जिस प्रकार हुमायूं तमाम जिन्दगी भर गिरते-पड़ते चलता रहा, उसी प्रकार गिरते-पड़ते ही वह इस जीवन से मुक्त हो गया।

जन्म 15 Oct 1542 पानीपत का द्वितीय युद्ध 5 Nov 1556

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर (1556-1605)

अकबर का राज्याभिषेक फरवरी 1556 मे कालानौर (गुरुदासपुर) में हुआ

बैराम खां का संरक्षण काल (1556-60) - बैराम खां अकबर का अतालिक (संरक्षक) होने के साथ-2 वह वकील (प्रधानमन्त्री) के पद पर नियुक्त था। इस समय अकबर के वयस्क न होने के कारण 1556 से लेकर 1560 तक मुगल प्रशासन की वास्तविक बागडोर बैराम खां के हाथ में रही। इसलिए इस काल को मुगल इतिहास मे बैराम खां का संरक्षक काल कहा जाता है।

* किन्तु 1560 में बैराम खां और अकबर के बीच संबंध खराब हो जाने के कारण अकबर ने इसे दोनो पदों से हटा दिया
* 1560-62 तक मुगल प्रशासन की बागडोर माहम अनगा के हाथ में रही। इसलिए इस काल को स्मिथ ने अपनी पुस्तक अकबर द ग्रेट मुगल में पेटीकोट (पर्दा) शासन के नाम से पुकारा है।
* इस काल में वास्तव में प्रशासन की बागडोर माहम अनगा और उसके गुट के हाथ में रही। जिसमें चार व्यक्ति सम्मिलित थे—

i. माहम अनगा (अध्यक्ष) ii. आदम खां (पुत्र)
iii. शिहाबुद्दीन (दामाद) iv. मुनीम खां (हुमायूं का विश्वासपात्र सरदार)

किन्तु जब 1562 में अकबर और माहम अनगा के संबंध खराब हो गए तब अकबर ने सत्ता की बागडोर स्वंय अपने हाथ में ले ली।

अकबर की धार्मिक नीति

अकबर पहला मुस्लिम शासक था जिसने अपने पूर्ववर्ती मुस्लिम शासकों की कट्टर धार्मिक नीति का अनुसरण न करके और उसके विपरीत उदार धार्मिक नीति का अनुसरण किया जो सुलह-कुल (सबके साथ शान्ति सद्भाव से रहना) के सिद्धान्त पर आधारित थी।

* अकबर द्वारा उदार धार्मिक नीति के अनुसरण करने के पीछे दो मुख्य कारण थे – 1. अकबर का जिस प्रारम्भिक वातावरण में पालन-पोषण हुआ उसका अकबर के धार्मिक विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए ऐसा माना जाता है कि अकबर को सुलेह कुल का पाठ उसके शिक्षक अब्दुल लतीफ के द्वारा पढ़ाया गया।

2. अकबर भारत में मुगल साम्राज्य के स्थायित्व के लिए हिन्दुओं का समर्थन आवश्यक समझता था।

* अकबर के धार्मिक विचारों में समय-2 पर परिवर्तन होता रहा और उसके धार्मिक विचारों का धीरे-2 विकास हुआ। इसलिए इतिहासकारों द्वारा अकबर की धार्मिक नीति को तीन चरणों में विभाजित किया गया –

पहला चरण (1556–1575) – की सबसे मुख्य बात यह थी कि उसने हिन्दुओं की धार्मिक स्वतन्त्रता पर जो भी प्रतिबन्ध थे और हिन्दुओं के साथ धार्मिक आधार पर जो भी भेदभाव किया जाता था, उन सब को अकबर ने समाप्त करके हिन्दुओं को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की।

i. उसने 1562 में हिन्दु युद्धबन्दियों को बलपूर्वक मुस्लिम बनाने और दास बनाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

ii. 1563 में तीर्थयात्रा कर को समाप्त करना।

iii. 1564 में जजिया कर को समाप्त किया (कश्मीर के जैनुअल आबीदीन (कश्मीर का अकबर) पहला, बहमनी राज्य के प्रथम सुल्तान अलाउद्दीन हसन बहमनशाह (1347) ने जजिया कर को समाप्त किया)

iv. बिना किसी धार्मिक भेदभाव के हिन्दुओं को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया। जैसे- ~~अ~~ टोडरमल को दीवान (वित्तमन्त्री), भगवंत दास को पंजाब का गवर्नर, मानसिंह को काबुल, बिहार, बंगाल का गवर्नर बनाया, बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का गवर्नर बनाया।

v. हिन्दुओं को उच्च मनसबे प्रदान की गयी। जैसे- मानसिंह को 7000 का मनसब

* अकबर द्वारा पूर्ववर्ती मुस्लिम शासकों की मन्दिरों को गिराने की नीति का अनुसरण नहीं किया
* अकबर द्वारा हिन्दु राजाओं की झरोखा दर्शन और तुलादान की परम्परा का अनुसरण करना प्रारम्भ किया।
* अकबर द्वारा अपनी किसी भी हिन्दु पत्नी का धर्म परिवर्तन नहीं किया गया।

दूसरा चरण (1575–1582)

इबादतखाने की स्थापना – 1575 में फतेहपुर सीकरी में की गयी।
(फतेहपुर सीकरी राजधानी 1569–1585 और लाहौर 1585–95)
इसके पीछे अकबर का मुख्य उद्देश्य धार्मिक विषयों पर विचार-विमर्श और विभिन्न धर्मों के बारे में जानकारी प्राप्त करना था। उसके द्वारा इबादतखाने में एक के बाद एक पांच विभिन्न धर्मों के विद्वानों को आमंत्रित किया गया

* सर्वप्रथम मुस्लिम विद्वानों को जिनमें दो मुस्लिम विद्वान मुख्य थे –
i. शेख अब्दुल नबी (सद्र-उस-सुदुर का अध्यक्ष) ii. मखदूम-उल-मुल्क (अब्दुल्ला सुल्तान पुरी)
* इन मुस्लिम विद्वानों के साथ-2 मुन्तखब-उत-तवारिख के लेखक बदायूनी ने भी इस वाद-विवाद में भाग लिया था।
* मुस्लिम विद्वानों के ~~बाद~~ बाद इबादत खाना में हिन्दु विद्वानों को आमंत्रित किया जिनमें- ~~पुरु~~ पुरुषोत्तम और देवी प्रमुख थे
* हिन्दुओं के बाद उसने गोवा से ईसाई मिशनरियों को आमंत्रित किया जिनमें मोसरेट, एक्वीविवा, एनरिक्वेज मुख्य थे।
* ईसाईयों के बाद जैन आचार्यों को आमंत्रित किया जिनमें हरि विजय सूरी और जिनचन्द्र सूरी प्रमुख थे। अकबर सबसे ज्यादा प्रभावित इन जैन आचार्यों से हुआ। इसलिए अकबर द्वारा हरि विजय सूरी को जगद् गुरु की उपाधि दी। जिनचन्द्र सूरी को युग प्रधान की उपाधि दी। इन जैन आचार्यों द्वारा ही अकबर को अहिंसा का पाठ पढ़ाया गया।
* जैन के बाद पारसी धर्म के आचार्य दस्तूरजी मेहरजी राणा को नवसारी से आमंत्रित किया। नवसारी ~~प~~ पारसी धर्म का मुख्य केन्द्र था।

इन सब विद्वानों के विचार सुनने के बाद अकबर का कट्टर इस्लाम में विश्वास खत्म हो गया। अकबर का इस्लाम की श्रेष्ठता में विश्वास

नहीं रहा। उसका यह मानना था कि न केवल ईस्लाम बल्कि कोई भी धर्म पूरी तरह से दोषरहित नहीं है और सभी धर्मों में अच्छाइयों के साथ अनेक अन्धविश्वास और आडम्बर मौजूद थे।

मजहर की घोषणा → मजहर जिसे अचूक आज्ञापत्र या इनपेलिबिल डिक्री भी कहा जाता है। एक प्रपत्र था जिसे 1579 में शेख मुबारक नागौरी के द्वारा लिखा गया। जिस पर हिन्दुस्तान के कुछ प्रख्यात उलेमाओं द्वारा हस्ताक्षर करके इस बात के लिए अपनी स्वीकृति व्यक्त की गयी कि यदि किसी मुस्लिम कानून की व्याख्या को लेकर उलेमाओं में मतभेद हो जाता है। तब अकबर बादशाह को यह अधिकार होगा कि वह इन विभिन्न मतो में से किसी एक मत को स्वीकार करे। इस प्रकार मजहर के द्वारा अकबर ने मुस्लिम कानून की व्याख्या करने का अन्तिम अधिकार स्वयं ने प्राप्त कर लिया और इस मजहर पर पांच उलेमाओं द्वारा हस्ताक्षर किए गए- शेख अब्दुल नबी, अब्दुला सुल्तानपुरी, जलालुद्दीन (काजी-ए-ममालिक) गाजी खां (2000 का मनसबदार) के द्वारा किया गया।

* अकबर ने यह अधिकार इसलिए प्राप्त किया था कि कट्टर पंथी उलेमा अकबर के खिलाफ कोई अनुचित फतवा न जारी कर सके। इसलिए अकबर के शासनकाल में 1581 का वर्ष अत्यन्त संकटमय माना जाता है, क्योंकि इसी वर्ष अकबर के विरुद्ध कुछ कट्टरपंथी उलेमाओं और मुगल सरदारों के द्वारा विद्रोह करके उसे सत्ता से हटा देने का षड़यन्त्र रचा। किन्तु षडयन्त्र के तहत एकमात्र जौनपुर के काजी मुल्ला मोहम्मद याजदी के द्वारा ही फतवा जारी किया गया।
* मजहर का उल्लेख केवल बदायूनी ने अपने ग्रन्थ में किया।

तृतीय चरण (1582-1605) →

1. दीन-ए-इलाही की स्थापना → दीन-ए-इलाही जिसे तोहिद-ए-इलाही भी कहा गया है, एक धर्म था। जिसकी स्थापना अकबर के द्वारा 1582 में फतेहपुर सीकरी में की गई।

* किन्तु विल्सन स्मिथ ने अपनी पुस्तक अकबर दी ग्रेट मुगल में दीन-ए-इलाही की स्थापना के लिए अकबर की कटु आलोचना की है और लिखा है कि दीन-ए-इलाही अकबर की बुद्धिमता का नहीं बल्कि उसकी मर्खता का प्रतीक था। ऐसा लिखने के पीछे स्मिथ का यह मानना था कि अकबर ने दीन-ए-इलाही के रूप में एक नया धर्म स्थापित करके और स्वयं पैगम्बर बनने का प्रयास किया। अन्ततः अकबर का दीन-ए-इलाही असफल रहा। किन्तु स्मिथ के इस कथन को हम सही नहीं मान सकते क्योंकि पहली बात तो दीन-ए-इलाही वास्तविक रूप में एक धर्म नहीं था क्योंकि इसमें एक धर्म के लिए आवश्यक बाते विद्यमान नहीं थी यह वास्तव में एक धार्मिक सामाजिक संगठन था। जिसके पीछे अकबर का मुख्य उद्देश्य पैगम्बर बनना नहीं था बल्कि सभी धर्मों में सद्भाव और एकता स्थापित करना था। जैसा कि उसके सबसे कट्टर आलोचक बदायूनी ने भी अपनी पुस्तक में इस बात का उल्लेख किया है कि अकबर ने कभी भी दीन ए इलाही के सदस्य बनाने में अपने पद और शक्ति का कोई दुरूपयोग नहीं किया। जो व्यक्ति स्वेच्छा से दीन-ए-इलाही के सदस्य बने थे, उन्हें ही इसका सदस्य बनाया गया। बीरबल दीन-ए-इलाही का पहला सदस्य बना। इसके प्रथम श्रेणी के कुल 18 सदस्य बने थे। दीन-ए-इलाही अकबर के साथ ही समाप्त हो गया।

दीन-ए-इलाही के सिद्धान्त-

i. दीन-ए-इलाही के सदस्य आपस में मिलने पर एक सदस्य अल्लाह अकबर (ईश्वर महान है) जबकि दूसरा सदस्य जिल्ले जलाल हू कहकर अभिवादन करेंगे।
ii. दीन-ए-इलाही के सदस्य जहां तक सम्भव होगा मांस का प्रयोग नहीं करे।
iii. अपने जीवनकाल में ही मृत्युभोज दे देंगे।
iv. अपने जन्म दिन पर अन्य सदस्यों को दावत देंगे।
v. अपने से बहुत अधिक आयु की स्त्री, कम आयु की लडकी से विवाह नहीं करेंगे

मुगलकालीन भू राजस्व व्यवस्था

अकबर के भू राजस्व सुधारो के बारे में जानकारी प्राप्त करने का सबसे मुख्य स्रोत अबुल फजल कृत आइने अकबरी और समकालीन इतिहासकारो के फारसी ग्रन्थ है। जिनमें लाहौरी कृत बादशाहनामा, खाफी खां कृत मुन्तखब-उल-लुबाब इसके अलावा समकालीन भू-राजस्व अभिलेख जिनमे सबसे प्रमुख दस्तूर-उल-अमल को माना जाता है।

* मुगल काल में अकबर के समय से सरकारी समाचार पत्र प्रकाशित किया जाता था जिसे अखबार-ए-दरबार-ए-मुअल्ला कहा जाता था।

अकबर द्वारा सर्वप्रथम भू-राजस्व व्यवस्था में अनेक सुधार लागू करके भू-राजस्व व्यवस्था का पुनर्गठन किया गया। मुख्य सुधार इस प्रकार है-

1. 1564 में अकबर द्वारा मुजफ्फर खां तुरबाती को दीवान के पद पर नियुक्त किया गया था। मुजफ्फर खां तुरबाती का प्रमुख कार्य विभिन्न परगनों की जमा का नये सिरे से निर्धारण करना था। क्योंकि उनके पहले के समय में परगनों की जो जमा निर्धारित की गयी थी वह अतिश्योक्तिपूर्ण थी। किन्तु अब मुजफ्फर खां के द्वारा परगनो की जो नयी जमा निर्धारित की गयी थी वह वास्तविक जमा थी। मोरलैण्ड ने अपनी पुस्तक अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया में इस नई जमा को कानूनगो दर के नाम से पुकारा।
मोरलैण्ड → फ्रॉम अकबर टू औरंगजेब
③ इण्डिया एट द डेथ ऑफ अकबर

2. किरौडी प्रथा को लागू करना → अकबर द्वारा किरौडी प्रथा 1575 में लागू की गई, जब उसने समस्त मुगल साम्राज्य को 182 डिविजन (सम्भाग) में बांट दिया और प्रत्येक सम्भाग में एक करोड दाम की आय का भू-भाग रखा गया। उसने प्रत्येक सम्भाग में एक अधिकारी की नियुक्ति किया जिसे किरौडी कहा जाता था। जिसका मुख्य कार्य अपने सम्भाग में सम्मिलित बंजर और कृषि भूमि का रिकॉर्ड रखना था। दोनो फसलों पर कितना उत्पादन हुआ है और दोनो फसलो पर सरकार को कितना भूमि कर प्राप्त हुआ है, इन सबका रिकॉर्ड रखना तथा भूमि से संबंधित मामलो को सुलझाना। अकबर द्वारा यह किरौडी प्रथा पूर्ण रूप से कृषि के उद्देश्य से लागू की गई।

3. दहसाला प्रथा को लागू करना → जिसे आईन-ए-दहसाला भी कहा जाता था। इसका उल्लेख करते हुए अबुल फजल आईने अकबरी में कहता है कि अकबर द्वारा आईन-ए-दहसाला 1580 में लागू की गयी जिसके अन्तर्गत पिछले 10 वर्षों की अर्थात 1571-80 तक की भूमिकर की दरें मालूम की गयी और उनकी औसत दर निकाल कर उसी औसत दर को भविष्य में भूमिकर के रूप में लागू कर दिया गया। दहसाला प्रथा के अनुसार भूमिकर की जो दरें लागू की गई, उसमें बाद में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। दहसाला प्रथा टोडरमल के बन्दोबस्त पर आधारित थी इसलिए दहसाला प्रथा को टोडरमल बन्दोबस्त के नाम से भी जाना जाता है।

4. भूमिकर निर्धारण के लिए तीन प्रकार की पद्धतियां लागू की गई-
   1. जब्ती प्रथा- मुगलकाल में प्रचलित भूमिकर निर्धारण की एक पद्धति थी, जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम कृषि भूमि की नाप की जाती थी और उसके बाद भूमि की वास्तविक उपज के आधार पर भूमिकर का नगदी के रूप में निर्धारण किया गया। मुगल साम्राज्य के अधिकांश भागो में जब्ती प्रथा प्रचलित थी।
   2. नस्क / कनकूत → इसके अन्तर्गत भूमि की अनुमानित उपज के आधार पर भूमिकर का निर्धारण किया जाता था। यह पद्धति केवल कश्मीर प्रान्त में ही प्रचलित थी।
   3. गल्ला बख्शी → मध्यकालीन भारत में प्रचलित भू-राजस्व कर निर्धारण की पद्धति थी। जिसके अन्तर्गत सरकार द्वारा किसानो से उपज का एक निश्चित हिस्सा लगान के रूप में लिया जाता था। गल्ला बख्शी केवल राजपूत राज्यों में प्रचलित थी।

5. भूमि कर की दर- उपज का 1/3 निर्धारित किया गया। मुगल काल में भूमिकर को माल / माल वाजिब कहा जाता था।

6. अकबर द्वारा भूमिकर के अतिरिक्त किसानो पर दाहसेरी के नाम से एक कर और लागू किया गया। यह प्रति बीघा दस सेर की दर से वसूल किया जाता था।

7. अकबर द्वारा कृषि भूमि की नाप के लिए बांसो की एक नयी जरीब तैयार करवायी गयी जिसे तनाब कहा जाता था।

8. कृषि भूमि का वर्गीकरण → अकबर द्वारा कृषि भूमि को चार भागों में विभाजित किया गया-
   1. पोलज → उस भूमि को कहा जाता था, जिस पर नियमित रूप से खेती की जाती थी।
   2. परत / परौती → जिसे केवल एक वर्ष के लिए बिना जोते छोड दिया जाता था।
   3. चचर → जो लगातार तीन वर्षों तक बिना जोते छोड दी गयी।
   4. बंजर → जिस पर लगातार पांच वर्षों / उससे अधिक समय तक बिना जोते छोड दी जाती थी।

* अकबर द्वारा भूमि का यह वर्गीकरण भूमि की उपज शक्ति के आधार पर नहीं किया गया बल्कि इसके पीछे अकबर का उद्देश्य

कृषि भूमि का विस्तार करना और ऊसर तथा बंजर भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाना था।

जागीरो का वर्गीकरण → मुगलकाल में पांच प्रकार की जागीरे प्रचलित थी –

I. तनख्वाह जागीर → मनसबदारो / मुगल सरदारो को वेतन के बदले में दिया जाता था। तनख्वाह जागीरो को हस्तान्तरित किया जा सकता था।

II. इनामी जागीर → जो इनाम के रूप में दी जाती थी।

III. मदद – ए – माश (सुयुरगाल) → धार्मिक कार्यों के लिए दी जाने वाली जागीर। इनको आयमा भी कहा जाता था।

IV. वतन जागीर → राजस्थान के राजपूत राजाओ को उनकी अपनी स्वंय की रियासत का जो भू-भाग मुगल सम्राट द्वारा दिया जाता था उन्हें वतन जागीर कहा जाता था। वतन जागीरो को हस्तान्तरित नहीं किया जाता था।

V. अल तमगा जागीर → केवल जहांगीर के समय में दी गयी थी। अल तमगा जागीरें उनको कहा जाता था जिन्हें मुस्लिम सरदारो को उनके जन्म स्थान पर / नियुक्ति स्थान पर स्थायी रूप से दी जाती थी।

★ अकबर द्वारा लागू की गयी यह भू-राजस्व व्यवस्था उसके उत्तराधिकारियों के समय में भी प्रचलित रही। किन्तु उसके उत्तराधिकारियो के समय में भू-राजस्व व्यवस्था में कुछ और बातें लागू की गयी –

I. जहांगीर के समय में अल तमगा जागीर दी गयी।

II. शाहजहां के समय में उसने भूमिकर की दर उपज का 1/3 से बढ़ाकर 50% कर दिया।

शाहजहां के समय में इजारा प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इजारा प्रथा ठेकेदारी प्रथा को कहा जाता था। जब किसी भूमि का भूमिकर वसूली का कार्य किसी व्यक्ति को निश्चित धनराशि के बदले में ठेके पर दे दिया जाता था उसे ही इजारा प्रथा कहते थे।

औरंगजेब → के समय में भूमिकर की दर कुल उपज का 50% ही प्रचलित रही।

औरंगजेब के समय में इजारा प्रथा का प्रचलन काफी बढ़ गया क्योंकि मुगल मनसबदारो द्वारा अपनी-2 जागीरो के भूमिकर वसूली का कार्य इजारा पर देना प्रारम्भ कर दिया और इजारेदारो द्वारा किसानो से मनमर्जी लगान वसूल किया गया। जिसके फलस्वरूप औरंगजेब के समय में किसानो का आर्थिक शोषण काफी बढ़ गया।

औरंगजेब के समय में भू-राजस्व अधिकारियों के द्वारा भी विभिन्न तरीको से किसानो का आर्थिक शोषण किया जाने लगा था। जैसे → निश्चित दर से ज्यादा लगान वसूल कर लेना, अनेक प्रकार के गैर-कानूनी करो को वसूलना, गैर-कानूनी कर - अबवाब कहलाते थे। किसानो ने कृषि कार्य करना बन्द कर दिया, खेतो को जोतने के लिए पर्याप्त मात्रा में किसान नहीं थे। कृषि भूमि बंजर भूमि में परिवर्तित होने लगी। इस प्रकार औरंगजेब के समय में कृषि संकट उत्पन्न हुआ।

मुगल कालीन केन्द्रीय व प्रान्तीय व्यवस्था

केन्द्रीय शासन व्यवस्था – सर जदुनाथ सरकार (मुगल एडमिनिस्ट्रेशन) ने मुगल राज्य के स्वरूप की विवेचना करते हुए लिखा है कि मुगल राज्य (सरकार) मूल रूप से एक फौजी सरकार थी। क्योंकि मुगलकाल में सभी उच्च अधिकारी मनसबदार कहलाते थे। प्रत्येक मनसबदार को सैनिक सेवा देना अनिवार्य होता था। मुगल राज्य का यह स्वरूप उसके अन्त तक प्रचलित रहा।

बाबर के द्वारा जो भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक था, राजत्व एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। जिसकी दो मुख्य बातें थी –

I. उसने अपने पूर्ववर्ती मुस्लिम शासको की तरह खलीफा के आधिपत्य को नहीं माना, बल्कि वह स्वंय को ही खलीफा मानता था।

II. बाबर द्वारा अपने पहले के मुस्लिम शासको की सुल्तान की उपाधि धारण न करके बादशाह की उपाधि धारण की। बाबर द्वारा लागू की गई इन दोनो बातों को उसके उत्तराधिकारियों द्वारा भी अनुसरण किया गया।

मुगलकाल में सम्राट / बादशाह ही राज्य का सर्वोच्च अध्यक्ष होता था तथा शासन की समस्त शक्तियां मुगल सम्राट में निहित होती थी। इसके साथ ही मुगल सम्राट ही सेना का मुख्य सेनापति होता था।

केन्द्रीय मन्त्रीपरिषद - प्रशासन में सहयोग के लिए कुछ मन्त्रियों को नियुक्त किया गया, जो इस प्रकार है-

I. वकील (वकील-ए-मुतलक) → प्रधानमन्त्री को कहा जाता था। मुगल सम्राट के बाद मुगल साम्राज्य में वकील का पद ही सबसे महत्वपूर्ण होता था। किन्तु मुगलकाल में वकील का पद स्थायी नहीं रहा। क्योंकि बाद में शाहजहां के द्वारा वकील के पद को समाप्त करके उसकी जगह वजीर की नियुक्ति की गई।

II. मीर बख्शी → केन्द्रीय सैनिक विभाग का अध्यक्ष होता था। मुख्य कार्य → सेना में अनुशासन को बनाये रखना, सेना के लिए आवश्यक हथियारों और रसद आदि की व्यवस्था करना, समय-2 पर सभी मनसबदारों की सैनिक टुकड़ियों की जांच करना। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा मीर बख्शी को पे-मास्टर जनरल के नाम से पुकारा गया। क्योंकि सभी मुगल मनसबदारों के वेतन बील मीर बख्शी के विभाग के द्वारा ही तैयार किए जाते थे।

III. दीवान - वित्त विभाग का अध्यक्ष। दीवान का पद सर्वप्रथम अकबर के द्वारा सृजित किया गया। मुख्य कार्य → भू-राजस्व से संबंधित नियम बनाना, दीवान ही शाही खजाने का अध्यक्ष होता था।

IV. खानसामा (मीर सामा) → शाही परिवार से संबंधित विभाग का अध्यक्ष। मुख्य कार्य - सम्राट की व्यक्तिगत सुरक्षा, शाही महल की सुरक्षा की व्यवस्था करना। मुगल सम्राट और उसके परिवार के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं की व्यवस्था करना। जैसे- आभूषण, वस्त्र आदि। खानेसामा शाही भोजनालय का अध्यक्ष भी था। इसलिए इस पद पर मुगल सम्राटों द्वारा अपने अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति को नियुक्त किया जाता था। इसलिए खानेसामा के पद के महत्व को देखते हुए जहांगीर द्वारा उसे मन्त्री का दर्जा दिया गया था।

V. सद्र-उस-सुदूर → धर्म एवं दान विभाग। अध्यक्ष → सद्रे जहां। मुख्य कार्य → धार्मिक मामलों में सम्राट को सलाह देना तथा मुगल सम्राट द्वारा दान में दी जाने वाली धनराशि और साथ में दी जाने वाली भूमि को लोगों में वितरित करना था।

VI. काजी-उल-कुजात (काजी-ए-ममालिक) मुख्य न्यायाधीश। विभाग - दीवाने कजा। मुख्य कार्य → प्रान्तीय न्यायाधीशों के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनना, इसके साथ ही सभी महत्वपूर्ण मुकदमें उसी के द्वारा सुने जाते थे। सभी प्रान्तीय न्यायाधीशों और जिले के न्यायाधीशों की नियुक्ति मुगल सम्राट द्वारा उसी की सलाह पर की जाती थी।

इन छः मन्त्रियों के अलावा मीरे-बहर और मीरे आतिश इन्हें भी उत्तर मुगल काल में मन्त्री का दर्जा दिया गया।

मीरे-बहर - नौसेना का अध्यक्ष
मीरे आतिश - तोपखाने का अध्यक्ष

प्रान्तीय शासन व्यवस्था - मुगलकाल में प्रान्त को सूबा कहते थे और सर्वप्रथम अकबर द्वारा 1580 में मुगल साम्राज्य को 12 प्रान्तों में विभाजित किया गया-

I.	काबुल	II.	पंजाब	III.	मुल्तान
IV.	दिल्ली	V.	आगरा	VI.	अवध
VII.	इलाहाबाद	VIII.	बिहार	IX.	बंगाल
X.	गुजरात	XI.	मालवा	XII.	अजमेर

किन्तु जब 1600 ई. में अकबर द्वारा दक्षिण भारत में स्थित

खानदेश राज्य और अहमदनगर राज्य का आधा भाग जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया। तब उसके द्वारा दक्षिण भारत में 3 नये राज्यों बना दिए गए-

XIII. खानदेश XIV. अहमदनगर XV. बरार

किन्तु शाहजहां के समय में प्रान्तो की संख्या बढ़कर 19 हो गयी। 4 नये प्रान्तों का गठन किया-

XVI. उड़ीसा (बंगाल का विभाजन करके) XVII. कश्मीर (काबुल का विभाजन करके)
XVIII. सिन्ध (मुल्तान का विभाजन करके) XIX. बीदर → 1636 में जब शाहजहां के अहमदनगर का शेष भाग जीतकर मुगल साम्राज्य में मिलाया गया तब उसने दक्षिण में बीदर का नया प्रान्त बनाया।

औरंगजेब द्वारा दक्षिणी भारत के दो राज्यो को जीतकर साम्राज्य में मिलाया तो से दो नये प्रान्त बनाये गये-

XX. बीजापुर XXI. गोलकुण्डा

* अकबर द्वारा शासन चलाने के लिए प्रत्येक प्रान्त में मुख्य रूप से दो अधिकारियो की नियुक्ति
I. सूबेदार → (नाजिम / सिपहसालार) प्रान्त का अध्यक्ष कार्य → शांति व्यवस्था बनाए रखना
II. दीवान → प्रान्त के भू-राजस्व, वित्त विभाग का अध्यक्ष। अकबर द्वारा प्रान्तीय शासन व्यवस्था में नियंत्रण एवं सन्तुलन का सिद्धान्त लागू किया गया। जिसके अन्तर्गत प्रान्तीय दीवान को सूबेदार का अधीनस्थ न बनाकर स्वतन्त्र अधिकारी बनाया। इन दोनो द्वारा एक-दूसरे के कार्यों के बारे में समय-2 पर गुप्त रिपोर्ट सम्राट को भेजनी पड़ती थी। इन दोनो के अतिरिक्त प्रान्त में तीन अधिकारी और होते थे-
III. बख्शी - प्रान्त के सैनिक विभाग का अध्यक्ष
IV. सद्र → प्रान्त के धर्म एवं दान विभाग का अध्यक्ष
V. काजी - प्रान्तीय न्यायाधीश

जिला (सरकार) → अकबर द्वारा प्रान्त को अनेक जिलो में विभाजित किया गया। प्रत्येक जिले में दो अधिकारी नियुक्त किए गए-
I. फौजदार - सैनिक अधिकारी, जिले का अध्यक्ष। कार्य → जिले में शांति व्यवस्था बनाए रखना
II. अमलगुजार - भू-राजस्व संबंधी कार्य देखता था।

* परगना → जिले को कुछ परगनो में विभाजित किया गया। प्रत्येक परगने में अधिकारी नियुक्त किए गए-
I. शिकदार - परगने का अध्यक्ष। कार्य - शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना।
II. आमिल - भू-राजस्व अधिकारी। भू-राजस्व व्यवस्था का आधार स्तम्भ। कार्य → कृषि भूमि की नाप करवाना, कर निर्धारण, कर वसूली, भूमि झगड़ो को सुलझाना, भूमि कर में छूट व ऋण देना। अमीन आमिल का सहायक होता था। शाहजहां ने उसे स्वतन्त्र अधिकारी बना दिया। कार्य भूमि की नाप, कर का निर्धारण
III. खजांची (फोतेदार) → परगने के खजाने का अध्यक्ष।
IV. बितिकची → प्रत्येक परगने में दो। क्लर्क। लिपिक। कार्य → फारसी भाषा में अपने परगने के राजस्व रिकॉर्ड को लिपिबद्ध करना। अकबर द्वारा फारसी को राजभाषा घोषित किया गया।

इसके अतिरिक्त परगने में एक कानूनगो जो अर्द्ध सरकारी अधिकारी था। पद वंशानुगत होता था। परगने के राजस्व रिकॉर्ड रखना, इस कार्य के बदले में उसे वेतन के रूप में परगने के भूमिकर का एक प्रतिशत दिया जाता था। किन्तु बाद में अकबर ने उसका वेतन 100 रू वार्षिक निर्धारित किया।

गांव (मौजा - अरबी भाषा में) → प्रत्येक गांव में दो अधिकारी नियुक्त थे-
I. मुकद्दम → गांव का मुखिया
II. पटवारी → गांव के भू-राजस्व का रिकॉर्ड रखना

मुगलकालीन मनसबदारी प्रथा

अकबर द्वारा 1567 में लागू की गयी सैन्य व्यवस्था को ही मनसबदारी प्रथा के नाम से जाना जाता है। मनसबदारी प्रथा को कुछ इतिहासकार मंगोल सैन्य व्यवस्था पर आधारित मानते हैं किन्तु यह मत पूरी तरह उचित नहीं है। यद्यपि मनसबदारी प्रथा और मंगोल सैन्य व्यवस्था दोनो दशमलव पद्धति पर आधारित थी। इनमें मुख्य अन्तर यह था कि मंगोल सैन्य व्यवस्था में छोटा अधिकारी बड़े अधिकारी के अधीनस्थ होता था किन्तु मनसबदारी प्रथा में छोटे और बड़े सभी मनसबदार सीधे मुगल सम्राट के अधीनस्थ होते थे।

मनसब शब्द का अर्थ → मनसब से अभिप्राय किसी पद से नहीं था बल्कि मनसब का मतलब श्रेणी (RANK) होता था। मनसब से यह इंगित होता था कि मनसबदार द्वारा सैनिक सेवा के लिए कुल कितने घुड़सवार रखे जायें।

* अकबर द्वारा जब मनसबदारी प्रथा प्रारम्भ की गई तो सबसे छोटी मनसब 10 घुड़सवारो की, सबसे बड़ी मनसब 5000 घुड़सवारों की होती थी। किन्तु बाद में अकबर ने छोटी मनसब 10 से 20 तथा बड़ी मनसब को 5000 से 7000 कर दिया।
* अकबर के समय 7000 की मनसब दो व्यक्तियों के पास थी - I. मानसिंह
II. मिर्जा अजीज कोका

* किन्तु पूरे मुगलकाल में सर्वोच्च मनसब 9000 थी जिसे शाहजहां ने अपने ससुर आसफ खां को दी गयी।
* मनसबदारों की नियुक्ति सामान्यतः मुगल सम्राट के द्वारा ही की जाती थी। नियुक्ति का मुख्य आधार → योग्यता का था। कम से कम 1000 के ऊपर की मनसबें उन्हीं व्यक्तियों को दी जाती थी जो अच्छे प्रशासक / सेनानायक माने जाते थे। प्रत्येक मनसबदार को अपनी मनसब के बराबर घुड़सवार रखने पड़ते थे। मनसबदार द्वारा ही अपने घुड़सवारों की नियुक्ति की जाती थी। घुड़सवारों को दाखिली कहा जाता था। मनसबदार ही उन्हें वेतन देता था। किन्तु सम्राट द्वारा मनसबदार तथा घुड़सवारों का वेतन मनसबदार को दिया जाता था। मनसबदार का वेतन खासा, घुड़सवार का वेतन तावीनान कहलाता था।
* मनसबदारों को वेतन नकद न देकर जागीर दी जाती थी जिन्हे तनख्वाह जागीर कहते थे।
* सभी मनसबदारों के वेतन से 10% से 25% कटौती की जाती थी। अधिकतम 25% औरंगजेब के समय दक्खिनी (दक्षिण) मनसबदारों के वेतन से की जाती थी।

Imp. * अकबर द्वारा मनसबदारों की 66 रैंक बनायी गयी किन्तु वास्तव में 33 रैंक प्रचलित थी।
* अकबर द्वारा मनसबदारों की तीन श्रेणियां बनायी गई - I. 10 से 400 तक मनसबदार - मनसबदार, II. 500 - 2500 तक उमरा, III. 3000 से अधिक या उससे ऊपर वाले - उमरा-ए-आजम / उम्दातुल-मुल्क कहा जाता था
* अकबर द्वारा जात और सवार दो रैंक देना प्रारम्भ किया गया तब उसके द्वारा मनसबदारों की तीन श्रेणियां बना दी गयी - I. प्रथम श्रेणी → जात और सवार रैंक बराबर (5000 ...)
II. द्वितीय श्रेणी → सवार रैंक, जात रैंक की आधी / अधिक (5000 जात 3000 सवार)
III. तृतीय श्रेणी → सवार रैंक, जात रैंक की आधी से कम (5000 जात 2000 सवार)

जात एवं सवार → प्रारम्भ में जब अकबर द्वारा मनसबदारी व्यवस्था शुरू की गई तब सभी मनसबदारों को केवल एक रैंक दी जाती थी जैसे पांच हजारी, चार हजारी किन्तु बाद में अकबर के द्वारा सभी मनसबदारों को जात एवं सवार दो रैंक देना प्रारम्भ किया जैसे 5000 जात, 5000 सवार। बदायूंनी द्वारा इसका यह कारण बताया गया कि कुछ मनसबदार अपनी मनसब के बराबर घुड़सवार नहीं रखते थे इसलिए इस दोष को दूर करने के लिए अकबर ने जात, सवार रैंक देना प्रारम्भ किया। जहां तक जात, सवार के अर्थ का प्रश्न है, इसकी विभिन्न इतिहासकारों ने अलग-2 व्याख्या की है, किन्तु उनमें मोरलैण्ड की व्याख्या अधिक सही मानते हैं। मोरलैण्ड के अनुसार जात रैंक का अभिप्राय था - उस मनसबदार की व्यक्तिगत रैंक क्या होगी और उसे कितना वेतन मिलेगा जबकि सवार रैंक का अभिप्राय - उसके द्वारा सैनिक सेवा के लिए कितने घुड़सवार रखे जायें।

अकबर द्वारा गठित की गयी मनसबदारी प्रथा उसके उत्तराधिकारियों के समय में भी प्रचलित रही। किन्तु उसके उत्तराधिकारियों के समय में मनसबदारी प्रथा में कुछ और नये नियमों का समावेश हुआ। जिनमे चार बातें प्रमुख थीं -

दुअस्पा सिह अस्पा का नया नियम मनसबदारी प्रथा में जहांगीर के समय में लागू किया गया। इसका वास्तविक अर्थ दुगुने घुड़सवार से होता था। दुअस्पा सिहअस्पा मनसबदार की सवार रैंक में जोड़ा जाता था। जब मनसबदार की सवार रैंक को दुअस्पा सिहअस्पा कर देते थे तब उस मनसबदार द्वारा अपनी सवार रैंक का दुगुने घुड़सवार रखना पड़ता था।

1/3 एवं 1/4 का नियम - मनसबदारी प्रथा में यह नियम शाहजहां के समय में लागू किया गया। इसका उल्लेख करते हुए लाहौरी ने अपने बादशाहनामा में लिखा है कि ऐसे मनसबदार जिनकी नियुक्ति किसी एक प्रान्त में की जाती थी और उसी प्रान्त में उसे जागीर दी जाती थी। वह अपनी सवार रैंक का 1/3 घुड़सवार रखता था किन्तु ऐसे मनसबदार जिनकी नियुक्ति किसी एक प्रान्त में की जाती थी और उसे जागीर दूसरे प्रान्त में दी जाती थी वह अपनी सवार रैंक का 1/4 घुड़सवार रखेगा।

Month scale का नया नियम मनसबदारी प्रथा में शाहजहां के समय में लागू हुआ। इसके अन्तर्गत अब शाहजहां द्वारा मनसबदारों के वेतन का नये सिरे से पुनर्निर्धारण किया गया। जिसके अनुसार अब किसी भी मनसबदार को पूरे 12 महीने का वेतन न देकर किसी को 8 महीने, किसी को 6 किसी को 4 महीने का वेतन दिया गया। इसका कारण प्रो॰ अतहर अली कृत औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग में यह बताया है कि शाहजहां के समय में परगनो और हासिल में बहुत अधिक अन्तर आ गया था।

मशरूत का नया नियम मनसबदारी प्रथा में औरंगजेब के समय में लागू हुआ। इसका यह अभिप्राय था कि जब किसी मनसबदार को किसी नये पद पर नियुक्त किया जाता था और यह महसूस किया जाता था कि उस नये पद का उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए उसे अपनी सवार रैंक से अधिक घुड़सवारों की जरूरत है तब उसकी सवार रैंक में अस्थायी वृद्धि कर दी जाती थी उसे ही मशरूत कहा जाता था। किन्तु जब उसे उस पद से हटा दिया जाता था तब उसकी सवार रैंक में की गयी वृद्धि को रद्द कर दिया जाता था।

मनसबदारी प्रथा के दोष-

i. कुछ मनसबदार अपनी मनसब के बराबर घुड़सवार नहीं रखते थे।

ii. मनसबदार के द्वारा ही अपने घुड़सवारो की नियुक्ति की जाती थी और वही उन्हें वेतन देता था। इसलिए मनसबदार के घुड़सवारो की स्वामी भक्ति मुगल सम्राट के प्रति न होकर मनसबदार के प्रति होती थी।

iii. शाहजहां के समय तक मनसबदारो की नियुक्ति बहुत सीमित मात्रा में की गयी किन्तु औरंगजेब के समय में मनसबदारो की नियुक्ति इतनी अधिक मात्रा में कर दी गयी थी कि सारी जागीर भूमि समाप्त हो गयी थी और अब नवनियुक्त मनसबदारो को देने के लिए सम्राट (पैबाकी) के पास कोई जागीर भूमि (पैबाकी) नहीं बची। इसे ही जागीरदारी संकट के नाम से जानते है। यह मनसबदारों में असन्तोष का एक मुख्य कारण बना। प्रो॰ इरफान हबीब के ~~इस~~ ~~का~~ अग्रेरियन सिस्टम अण्डर द मुगलस् में जागीरदारी संकट को मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण माना।

पैबाकी → जो भूमि जागीर भूमि के लिए निर्धारित की गयी किन्तु जिसे जागीर में नहीं लिया गया था।

मुगल कालीन स्थापत्य कला

लगभग सभी मुगल बादशाहो की इमारतो के निर्माण में विशेष रूचि थी इसलिए मुगल काल में स्थापत्य कला के क्षेत्र में काफी विकास हुआ। उदाहरण के लिए जैसा कि बाबर ने स्वयं अपनी आत्मकथा बाबरनामा में लिखा है कि उसके द्वारा आगरा, ~~में~~ दिल्ली, बयाना, धौलपुर में अनेक इमारतो का निर्माण करवाया गया। किन्तु उनमें से अब केवल दो मस्जिदे उपलब्ध है-

i. सम्भल (UP) में स्थित जामा मस्जिद

ii. पानीपत के काबुली बाग में स्थित बादशाही मस्जिद

बाबर का मुगल स्थापत्य कला को सबसे प्रमुख और स्थायी योगदान चार बाग पद्धति को लागू करना था। यह ईरानी स्थापत्य कला का एक मुख्य अंग था। मुगल के मकबरो का निर्माण चारबाग पद्धति से निर्मित है।

* हुमायूं द्वारा निर्मित इमारतो में सबसे प्रमुख दीन-पनाह को माना जाता था दीन-पनाह महलनुमा किला था जिसका निर्माण दिल्ली में करवाया।

* मुगल स्थापत्य कला का वास्तविक विकास अकबर के समय से प्रारम्भ हुआ।
* अकबर का मुगल स्थापत्य कला को सबसे बड़ा योगदान स्थापत्य कला की ईरानी पद्धति और भारतीय पद्धति को मिलाकर एक ~~की~~ नयी शैली का विकास करना था, जिसे इतिहासकारो द्वारा हिन्दु-मुस्लिम शैली के नाम से सम्बोधित किया गया। बाद में अकबर तथा उसके बाद के सभी मुगल सम्राटो के समय में सभी इमारतो का निर्माण इस मिश्रित शैली पर ही किया गया।
* अकबर के समय में निर्मित पहली इमारत हुमायूं का मकबरा माना जाता है जिसका निर्माण दिल्ली में अकबर की सौतेली मां हाजी बेगम के द्वारा करवाया गया। इसका डिजाइन ईरानी शिल्पकार मीरक मिर्जा गयास द्वारा तैयार किया गया। इसकी दो मुख्य विशेषताए थी -

i. मुगलकाल में अकबर के समय निर्मित पहली ऐसी इमारत है जिसे हिन्दु मुस्लिम शैली पर बनाया गया

ii. यह एकमात्र मुगल मकबरा था जिसमें दोहरे गुम्बद का प्रयोग किया

* अकबर द्वारा अनेक किलो का निर्माण करवाया गया जिनमें आगरा का किला और लाहौर का किला अधिक महत्वपूर्ण माने जाते है। इन दोनो किलो का डिजायन कासिम खां द्वारा तैयार किया गया। दोनो किले एक ही डिजायन पर बनाये गये और दोनो एक साथ 1565-1580 की अवधि में बने। दोनो में लाल पत्थर का प्रयोग किया गया।
* इसके अलावा अकबर ने इलाहाबाद का किला और अटक (पंजाब) का किला भी महत्वपूर्ण माने जाते थे।
* अकबर द्वारा 1569 में फतेहपुर सीकरी को बनाया। उसने 1569-1585 तक आगरा की जगह इसको राजधानी बनाया।
* सबसे प्रमुख इमारत फतेहपुर सीकरी के महल माने जाते है। जिनमें पांच महल अधिक महत्वपूर्ण थे-

i. पंचमहल ii. तुर्की सुल्ताना का महल iii. बीरबल का महल

iv. जोधा बाई का महल v. मरियम का महल

* अन्य प्रमुख इमारत - बुलन्द दरवाजा - इसका निर्माण अकबर ने 1572 में अपनी गुजरात विजय के उपलक्ष्य मे करवाया। यह विश्व का सबसे ऊंचा दरवाजा माना जाता है। ~~व~~ जमीन से इसकी ऊंचाई 176 फीट जबकि फर्श से 134 फीट।

* जहांगीर के समय में निर्मित दो इमारतें कुछ हद तक स्थापत्य कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती हैं –

i. अकबर का मकबरा → सिकन्दरा (आगरा), डिजाइन - स्वयं अकबर द्वारा अपने जीवनकाल में तैयार किया। किन्तु बाद में इसका निर्माण जहांगीर द्वारा 1605-1613 की अवधि में बनवाया गया।

ii. एतमादुद्दौला का मकबरा → इसकी मुख्य विशेषताएं हैं - 1. पहला मुगल मकबरा था जिस पर गुम्बद का निर्माण नहीं करवाया गया। यह पांच मंजिल का है। हिन्दु मुस्लिम शैली की तुलना में बौद्ध शैली के काफी नजदीक है।

→ एतमादुद्दौला नूरजहां के पिता थे। यह आगरा में स्थित है। इसका निर्माण नूरजहां बेगम के द्वारा 1626 में करवाया गया। यह पहली मुगल इमारत थी जो पूर्णतः सफेद संगमरमर का बना था। इसमें नूरजहां द्वारा पहली बार पेट्रा (पित्रादुरा) ड्यूरा शैली का प्रयोग किया गया।

* शाहजहां - मुगलकाल में स्थापत्य कला सर्वाधिक विकास शाहजहां के समय में हुआ इसलिए शाहजहां के काल को मुगल स्थापत्य कला का स्वर्ण काल माना जाता है। उदाहरण के लिए शाहजहां द्वारा सर्वप्रथम आगरा के किले में कुछ नयी इमारतों का निर्माण करवाया गया। जिनमें - दीवाने-आम, दीवाने खास, मोती मस्जिद, मुसम्मन बुर्ज प्रमुख है।

* शाहजहां द्वारा 1638 में दिल्ली के पास शाहजहांबाद के नाम से नया नगर बसाया गया। 1638 में ही दिल्ली में लाल किले का निर्माण करवाया। लाल किले का डिजाइन हमीद अहमद ने तैयार किया। लाल किले में शाहजहां द्वारा निर्मित सबसे प्रमुख - दीवाने-आम, दीवाने खास, हीरा महल, रंगमहल
दीवाने खास की दीवारों पर शाहजहां ने यह वाक्य लिखवाया कि अगर पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है।

* शाहजहां द्वारा 1644 में दिल्ली में जामा मस्जिद बनवायी।

* मयूर सिंहासन का डिजाइन ईरानी शिल्पकार बेबादल खाँ द्वारा शाहजहां द्वारा ~~लाहौरी~~ लाहौरी के अनुसार इसके निर्माण पर एक करोड़ रू खर्च किए और इसी में कोहिनूर हीरा लगवाया गया।

ताजमहल - शाहजहां द्वारा निर्मित सबसे प्रमुख इमारत है। जिसका निर्माण आगरा में अपनी पत्नी मुमताज बेगम की स्मृति में करवाया गया। इसके निर्माण में 1631-1653 तक कुल 22 वर्ष लगे। डिजाइन - उस्ताद ईसा खाँ
यह पूर्णतः सफेद संगमरमर का बना है। यह एकमात्र ऐसा मुस्लिम मकबरा है जिसका गुम्बद अष्टकार रूप में बना है। इसके चारों कोनों पर जो मीनारें बनी हैं वो थोड़ी बाहर की तरफ झुकी हुई बनी है।

औरंगजेब के समय में निर्मित तीन इमारतें स्थापत्य कला की दृष्टि से कुछ हद तक महत्वपूर्ण मानी जाती हैं -

बादशाही मस्जिद (लाहौर) - 1674 में निर्माण करवाया।

रबिया उद् दौरानी का मकबरा → रबिया औरंगजेब की पत्नी थी और यह मकबरा औरंगजेब द्वारा औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में 1679 में निर्मित करवाया। इसे भारत का दूसरा ताजमहल। दक्षिण का ताजमहल के नाम से जाना जाता है। क्योंकि इसे ताजमहल की डिजाइन पर ही बनाया गया। इसे बीबी का मकबरा भी कहते हैं।

दिल्ली के लाल किले में मोती मस्जिद का निर्माण करवाया

मुगलकालीन चित्रकला

यद्यपि ~~कुरान~~ इस्लाम में चित्र बनाना वर्जित है। किन्तु मुगल सम्राटों द्वारा ईरानी परम्परा का अनुसरण करते हुए अपने दरबार में चित्रकारों को जो राजकीय संरक्षण प्रदान किया गया उसके फलस्वरूप मुगल काल में चित्रकला के क्षेत्र में भी काफी विकास हुआ। उदाहरण के लिए हुमायूं ने ईरान में अपने निर्वासन के दौरान ईरानी चित्रकला का बहुत बारीकी अध्ययन किया और भारत लौटते समय वह दो ईरानी चित्रकारों को अपने साथ भारत लाया - i. ~~अब्दुस्समद~~ अब्दुस्समद ii. मीर सैयद अली। जिनका बाद में अकबर के समय में चित्रकला के विकास में मुख्य योगदान रहा था।

* मुगल काल में चित्रकला का वास्तविक विकास अकबर के समय से प्रारम्भ हुआ और अबुल फजल द्वारा अकबर के दरबार में रहने वाले प्रमुख चित्रकारों की संख्या 17 बतायी गयी है। जिनमें से 4 चित्रकार अधिक प्रख्यात थे - i. अब्दुस्समद ii. मीर सैयद अली iii. दसवन्त iv. बसावन। इनमें भी अकबर अब्दुस्समद से अधिक प्रभावित था इसीलिए उसने अब्दुस्समद को शीरीं कलम की उपाधि दी गयी।

* अकबर द्वारा सर्वप्रथम अब्दुस्समद के नेतृत्व में आगरा में एक चित्रशाला स्थापित की गई। और उसने भारत के विभिन्न भागों से चित्रकारों को बुलाकर अब्दुस्समद के नेतृत्व में नियुक्त किया। जिन्हें अब्दुस्समद द्वारा ईरानी चित्रकला का प्रशिक्षण दिया गया।

अकबर के समय में मुख्य रूप से तीन प्रकार के चित्र बनाए गए-

1. [illegible] (कथात्मक) - मीर हम्जा के जीवन से संबंधित 1400 चित्र बनाए गए।
2. विभिन्न ग्रन्थों के अनुवाद - अकबर के आदेश पर मीर सैयद अली द्वारा हम्जानामा में चित्र बनाए गए।
3. भित्ति चित्र - अकबर के समय में निर्मित फतेहपुर सीकरी के भित्ति चित्र अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

* जहाँगीर - मुगल काल में चित्रकला का सर्वाधिक विकास जहाँगीर के समय में हुआ। इसलिए जहाँगीर के काल को मुगल चित्रकला का स्वर्ण काल कहा जाता है। जहाँगीर स्वयं कुशल चित्रकार था। उसकी चित्रकला में उसकी दक्षता की प्रशंसा अंग्रेज यात्री सर टॉमस रो के द्वारा भी यात्रा वृत्तान्त में की गई।
* जहाँगीर के समय के चित्रकारों में पांच चित्रकार अत्यन्त महत्वपूर्ण थे-

i. अबुल हसन ii. उस्ताद मंसूर iii. फर्रुख बेग
iv. बिशनदास v. मनोहर

किन्तु इनमें भी जहाँगीर अबुल हसन और उस्ताद मंसूर से अधिक प्रभावित था। इसीलिए उसने अबुल हसन (कटा हुआ) को नादिर-उल-जमा की और उस्ताद मंसूर को नादिर-अल-असर की उपाधि दी।

* जहाँगीर के समय में मुख्य रूप से तीन प्रकार के चित्र बने-

i. पशु पक्षियों के चित्र - इनको बनाने में उस्ताद मंसूर को दक्ष मानते थे।
ii. व्यक्ति चित्र - अकबर के शासनकाल की भाँति जहाँगीर के समय में भी बड़ी संख्या में व्यक्ति चित्र बनाए गए। व्यक्ति चित्र बनाने में बिशनदास और मनोहर को दक्षता प्राप्त थी। यहाँ तक कि जहाँगीर के आदेश पर बिशनदास ने ईरान जाकर ईरान के सम्राट शाह अब्बास I और उसके परिवार के सदस्यों के बड़ी संख्या में व्यक्ति चित्र बनाकर भारत लाया।
iii. जहाँगीर के आदेश पर बड़ी संख्या में प्राकृतिक दृश्यों के, दरबारी दृश्यों, शिकार दृश्यों के लघु चित्र बनाए गए। इन चित्रों को बनाने में अबुल हसन और फर्रुख बेग दक्ष माने जाते थे। अबुल हसन द्वारा जहाँगीर के राज्याभिषेक का जो चित्र बनाया गया वह उसका सर्वश्रेष्ठ चित्र था, जिसे जहाँगीर द्वारा अपनी आत्मकथा जहाँगीरनामा के मुखपृष्ठ पर लगवाया गया।

* जहाँगीर के समय में मुगल चित्रकला पर यूरोपीय चित्रकला का प्रभाव पड़ा। यूरोपीय चित्रकला का अनुसरण करते हुए जहाँगीर के समय के चित्रकारों द्वारा बड़ी संख्या में ईसाई धर्म से संबंधित चित्र बनाए गए। इसके अतिरिक्त चित्रकार यूरोपीय चित्रकला का अनुसरण करते हुए चित्रों में हल्के रंगों का प्रयोग किया गया।

* मुगलकाल में जहाँगीर के समय में अनेक [illegible] चित्र बनाए गए। जैसे - जहाँगीर द्वारा विश्व के बादशाहों की मिट्टी की [illegible] का चित्र, जहाँगीर और ईरान के सम्राट शाह अब्बास I को गले मिलते हुए चित्र।

मुगलकालीन संगीत कला

मुगलकाल में संगीत कला का सर्वाधिक विकास अकबर के समय में हुआ। अबुल फजल ने आइने अकबरी में अकबर के समय के प्रमुख संगीतकारों की संख्या 36 बताई है। जिनमें से चार संगीतकार अधिक प्रसिद्ध थे।

1. तानसेन ii. बाज बहादुर iii. लाल कलावन्त iv. बाबा रामदास

* इनमें भी तानसेन सर्वाधिक प्रसिद्ध था। तानसेन मूलतः ग्वालियर का निवासी था। इनका प्रारम्भिक नाम (कटा हुआ) रामतनु पाण्डे था। तानसेन ने ग्वालियर के महाराजा मानसिंह तोमर के द्वारा निर्मित संगीतशाला में संगीत का प्रशिक्षण प्राप्त किया। किन्तु बाद में वह रीवा के शासक रामचन्द्र भगा के द्वारा अपना दरबारी संगीतकार नियुक्त किया गया। बाद में तानसेन की ख्याति सुनकर अकबर ने उसे रीवा से बुलाकर अपना दरबारी संगीतकार नियुक्त किया। उसने तानसेन को कण्ठाभरणवाणी विलास की उपाधि दी। वह अकबर के नवरत्नों में एक माना जाता था।

* बाज बहादुर - मालवा का सुल्तान था, कुशल संगीतकार था। किन्तु जब अकबर द्वारा 1562 में मालवा पर अधिकार कर लिया गया तब (कटा हुआ) बाज बहादुर अकबर के दरबार में रहने लगा और उसे 1000 की मनसब दी गई।

* अकबर के बाद शाहजहाँ के समय में भी संगीतकला के क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ क्योंकि शाहजहाँ की संगीत कला में गहरी रुचि थी और वह ध्रुपद राग का बहुत अच्छा गायक था।

शाहजहाँ के समय के कुशल संगीतकारों में लाल खाँ, पण्डित जगन्नाथ, सुरंग खाँ, सुखसेन (घरसेन) थे। लाल खाँ ध्रुपद राग का विशेषज्ञ था। शाहजहाँ द्वारा लाल खाँ को गुण समुद्र की उपाधि दी गई।

पण्डित जगन्नाथ संस्कृत के महान विद्वान होने के साथ-साथ संगीत के विशेषज्ञ थे और इनके द्वारा संगीत कला पर संस्कृत भाषा में दो ग्रन्थों की रचना की गई

i. रसगंगाधर ii. गंगालहरी

मुगलकालीन साहित्य

~~अकबर~~ अनुवादित ग्रन्थ (फारसी साहित्य का विकास) –

जब अकबर द्वारा फारसी को राजभाषा घोषित किया गया था तब अकबर द्वारा संस्कृत, अरबी और तुर्की के कुछ प्रमुख ग्रन्थो का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया गया –

1. महाभारत – अब्दुल कादिर बदायूनी, नकीब खां, शेख सुल्तान
   फारसी नाम → रज्मनामा
2. वाल्मिकी कृत रामायण – बदायूनी, नकीब खां, शेख सुल्तान
   फारसी नाम – रामायण
3. विष्णु शर्मा रचित पंचतंत्र – अबुल फजल
   फारसीनाम – अनवर-ए-सुहैल
   अरबी भाषा में अनुवाद – अब्दुला इब्नुल मुकफ्फा
   अरबी नाम → कलिला वा दिमना
4. कल्हण रचित राजतरंगिणी – मुल्ला शाह मोहम्मद
5. ~~फैजी कृत~~ भास्कराचार्य कृत लीलावती – फैजी (गणित पर लिखा ग्रन्थ)
6. नल दमयन्ती की कथा – फैजी

* तारीखे अल्फी अकबर के आदेश पर फारसी भाषा में नकीब खां, जफर बेग, मुल्ला मुहम्मद ने रचना की। इसमें पिछले 1000 वर्षों का इस्लाम का इतिहास लिखा गया।

हिन्दी साहित्य का विकास – मुगल काल में हिन्दी भाषा में सर्वाधिक साहित्य की रचना अकबर के समय में हुयी। सूरदास, तुलसीदास, रसखान, अब्दुल रहीम खानेखाना हिन्दी के चार महान कवि थे।

सूरदास के द्वारा सूरसागर की रचना और तुलसीदास द्वारा रामचरितमानस की रचना अकबर के समय में की गई।

रसखान द्वारा प्रेमवाटिका की रचना की गयी।

अब्दुर्रहीम खानेखाना द्वारा रहीम के नाम से हिन्दी में दोहे लिखे गये

जहांगीर के समय में हिन्दी भाषा के सबसे प्रमुख कवि केशवदास थे। यद्यपि बुन्देलखण्ड के शासक वीरसिंह देव बुन्देला के दरबारी कवि थे किन्तु वह अधिक समय जहांगीर के दरबार में रहते थे। केशवदास द्वारा चार ग्रन्थो महत्वपूर्ण है
रचित

i. जहांगीर चन्द्रिका ii. वीरसिंह देव चरित्र
iii. कवि प्रिया iv. अलंकार मंजरी

शाहजहां के समय में हिन्दी भाषा अकबर के शासनकाल की भांति हिन्दी भाषा के अनेक विद्वान हुए। जिनमें सुन्दर कविराय, कवीन्द्र आचार्य, सेनापति, मतिराम और चिंतामणि मुख्य माने जाते है।

सुन्दरकविराय – सुन्दर श्रृंगार
कविन्द्र आचार्य – कविन्द्र कल्पतरू
सेनापति – कवित्त रत्नाकर

बिहारी – यद्यपि आमेर के शासक मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे और उन्होने शाहजहां के समय में बिहारी सतसई की रचना की।

अकबर के नवरत्न

i. अबुल फजल
ii. फैजी – अबुल फजल का बड़ा भाई, फारसी का महान कवि था। इसके नेतृत्व में अकबर ने अनुवाद विभाग तथा उसका अध्यक्ष बनाया
iii. मिर्जा अजीज कोका – अकबर की दूसरी धाय जीजी अनगा का पुत्र था। 7000 का मनसबदार, कुशल सेनानायक था।
iv. अब्दुर्रहीमखानेखाना – बैराम खां का पुत्र था। कुशल राजनीतिज्ञ, सेनानायक था। जहांगीर का राजनीतिक गुरु था। ~~अर~~ फारसी, तुर्की के साथ-2 हिन्दी भाषा का भी प्रमुख विद्वान था।
v. मानसिंह – आमेर के शासक, 7000 का मनसबदार था।
vi. टोडरमल – वित्त विशेषज्ञ, दीवान (वित्तमन्त्री) के पद पर नियुक्त
vii. तानसेन – महान संगीतज्ञ
viii. बीरबल – वास्तविक ~~न~~ नाम – महेशदास अकबर ने इसे राजा बीरबल की उपाधि दी। वह अपनी हाजिर जवाबी के लिए प्रसिद्ध था। अकबर का अंतरंग मित्र था। यह ओरछा (MP) का निवासी था।
ix. मुल्ला दो प्याजा →

अकबर की राजपूत नीति

अकबर की राजपूत नीति से अभिप्राय उसकी राजस्थान के राजपूत राजाओं के प्रति नीति से माना जाता है। अकबर के पहले लगभग सभी

दिल्ली सुल्तानो द्वारा राजपूत राज्यों को जीतकर स्थायी रूप से सल्तनत में मिलाया गया किन्तु राजपूत राजा सल्तनत काल में लगातार अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते रहे। जिसके फलस्वरूप दिल्ली सुल्तान स्थायी रूप से राजपूत राज्यों पर अधिकार नहीं रख सके। किन्तु अकबर ने दिल्ली सुल्तान के विपरीत राजपूत राज्यों के प्रति उदारता, सहयोग और वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की नीति का अनुसरण किया। जिसके पीछे चार मुख्य कारण
1. अफगान अकबर के सबसे प्रबल शत्रु माने जाते थे। उनकी शक्ति का दमन करने के लिए अकबर राजपूत राज्यों का सहयोग आवश्यक समझता था।
II. मुगल अमीरवर्ग पर नियंत्रण बनाये रखने के लिए
III. अकबर भारत में मुगल साम्राज्य के स्थायित्व के लिए यहां के स्थानीय राजनैतिक शक्तियो का सहयोग आवश्यक समझता था और उस समय राजपूत उत्तर भारत की प्रमुख राजनैतिक शक्ति माने जाते थे। जिनके पास विशाल राज्य होने के साथ-2 बड़ी सेनायें भी थी।
IV. अकबर राजपूतों की वीरता के साथ-2 स्वामी भक्ति से भी काफी प्रभावित हुआ

* जब राजपूत राजाओं द्वारा अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली गयी तब उनके राज्य वापस लौटा दिये और उन्हे आन्तरिक शासन में पूरी छूट दे दी।
* इसके साथ ही उसने राजपूत राजाओ को बड़ी-2 मनसबे प्रदान की।
* अकबर ने राजपूत राजाओ को महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदो पर नियुक्त किया। मानसिंह को काबुल (1581-87), बिहार (1587-94), बंगाल (1594-1606) का गवर्नर नियुक्त किया, बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का गवर्नर बनाया

* अकबर के समय में 6 राजपूत राज्य प्रमुख माने जाते हैं -
I. मेवाड़ II. आमेर
III. जोधपुर IV. बीकानेर
V. जैसलमेर VI. बून्दी

इन राज्यों में से कुछ राज्य ऐसे थे जिन्होंने बिना किसी विरोध के स्वैच्छा से अकबर की आधीनता स्वीकार की। आमेर पहला राजपूत राज्य था जहां के शासक राव भारमल ने 1562 में बिना किसी विरोध के अकबर की आधीनता स्वीकार की और अपनी पुत्री हरकाबाई का विवाह अकबर के साथ किया। जिसे अकबर द्वारा मरियम-उल-जमानी की उपाधि दी गई। भारमल को अमीर-उल-उमरा की उपाधि दी
* आमेर के बाद बीकानेर दूसरा राजपूत राज्य था जहां के शासक राव कल्याणमल ने अकबर के नागौर दरबार में उपस्थित होकर उसकी अधीनता को स्वीकार किया।
* जैसलमेर तीसरा राज्य था जहां के शासक हरराय भाटी ने भी नागौर दरबार में अकबर की अधीनता स्वीकार की।

कुछ राजपूत राज्य ऐसे थे जिन्होंने प्रारम्भिक विरोध के बाद अकबर की आधीनता को स्वीकार किया- बुन्दी और जोधपुर राज्य
उदाहरण के लिए जब अकबर द्वारा 1569 में बुन्दी राज्य के अधिकार में स्थित रणथम्भौर के किले पर आक्रमण किया तब बुन्दी के शासक सुरजन राव हाडा के द्वारा उसका कड़ा विरोध किया गया किन्तु पराजित होने के बाद उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। अकबर द्वारा उसे 2000 की मनसब देकर बनारस का फौजदार नियुक्त किया गया।
* बुन्दी के बाद जोधपुर जहां के शासक राव चन्द्रसेन ने भी अकबर के नागौर दरबार में उपस्थित हुआ किन्तु जब वह बिना आधीनता स्वीकार किए वहां से लौट गया तब अकबर ने जोधपुर को खालसा में मिला लिया और रायसिंह को वहां का गवर्नर बनाया। फलस्वरूप राव चन्द्रसेन ने 1571 से 1581 तक सिवाना और भाद्राजून (जालौर) को आधार बनाकर अकबर के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया। इसीलिए इतिहासकारो द्वारा चन्द्रसेन को मारवाड़ का प्रताप के नाम से सम्बोधित किया। किन्तु 1581 में चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद अकबर ने उसके भाई मोटा राजा उदयसिंह को 1583 में जोधपुर का शासक स्वीकार कर लिया। अकबर की आधीनता मानने के साथ-2 अपनी पुत्री जगत गुसाईं (जोधाबाई) का विवाह अकबर पुत्र सलीम (जहांगीर) के साथ किया। जिससे खुर्रम (शाहजहां) का जन्म हुआ।

अकबर और मेवाड़- अकबर के समय में मेवाड़ के तीन शासक हुए-
1. महाराणा उदय सिंह (1537-1572)
II. महाराणा प्रताप (1572-1597)
III. महाराणा अमरसिंह (1597-1620)

महाराणा उदयसिंह- अकबर द्वारा अक्टूबर, 1567 में चित्तौड़ पर आक्रमण किया तब महाराणा उदयसिंह की अनुपस्थिति में जयमल और पत्ता (फतेहसिंह) के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना द्वारा अकबर के आक्रमण का प्रतिरोध किया।

* किन्तु अकबर फरवरी 1568 में चित्तौड़ पर अधिकार करने में कामयाब हुआ।
* 1572 में महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद महाराणा प्रताप मेवाड़ के शासक बने। महाराणा प्रताप के द्वारा भी अकबर के विरुद्ध प्रतिरोध की नीति का अनुसरण किया गया। अतः अकबर ने महाराणा प्रताप को समझाने के उद्देश्य से चार अलग-2 दूत उनके पास भेजे।

i. जलाल (जलालुद्दीन) खाँ कुर्ची (1572)
ii. मानसिंह (1573)
iii. भगवंत दास (1573)
iv. टोडरमल (1573)

* किन्तु जब चारों दूत अपने उद्देश्य में असफल रहे तब अकबर ने 1576 में मानसिंह और आसफ खाँ के नेतृत्व में एक मुगल सेना महाराणा प्रताप के विरुद्ध भेजी। जिसके फलस्वरूप 18 जून 1576 को मानसिंह के नेतृत्व में मुगल सेना और महाराणा प्रताप के बीच हल्दीघाटी का युद्ध हुआ। अबुल फजल ने इस युद्ध को खमनौर का युद्ध कहा। जबकि बदायूनी ने इसे गोगुन्दा का युद्ध कहा। कर्नल टॉड ने इसे मेवाड़ का थर्मोपल्ली कहा।
* हाकिम खाँ सूर नामक मुगल सरदार राणा प्रताप के पक्ष में लड़ा।
* बदायूनी भी इस युद्ध में मुगल सेना में उपस्थित था।
* महाराणा प्रताप का हाथी- रामप्रसाद था।
* महाराणा प्रताप की पराजय किन्तु उनके युद्ध से निकलकर भाग जाने के बाद झाला बीदा के द्वारा राजपूत सेना का नेतृत्व किया।
* युद्ध के बाद 1576-85 की अवधि में राणा प्रताप द्वारा कुम्भलगढ़ किले को आधार बनाकर अकबर के विरुद्ध संघर्ष किया गया। इस अवधि में भी
* 1582 में दिवेर (राजसमंद) के युद्ध में राणा प्रताप ने सुल्तान खाँ को पराजित करके उसका वध कर दिया।
* 1585 के बाद अकबर द्वारा मेवाड़ के विरुद्ध कोई सैनिक अभियान नहीं भेजा गया तब राणा प्रताप ने चावण्ड (उदयपुर) को अपनी राजधानी बनाया।
* 1597 में चावण्ड में राणा प्रताप की मृत्यु हो गयी।

महाराणा प्रताप की मृत्यु के बाद महाराणा अमरसिंह ने अकबर की अधीनता स्वीकार न करके प्रतिरोध की नीति अपनायी।

अकबर की दक्षिण नीति

अकबर की दक्षिण के दो मुख्य उद्देश्य थे-

1. दक्षिण भारत के राज्यों को जीतकर उन्हें स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य में मिला लेना चाहता था।
2. अकबर दक्षिण भारत के राज्यों पर पुर्तगालियों के प्रभाव को स्थापित होने से रोकना चाहता था।

अकबर के समय में दक्षिण भारत में 4 चार राज्य थे-

i. खानदेश ii. अहमदनगर
iii. बीजापुर iv. गोलकुण्डा

* अकबर द्वारा सर्वप्रथम 1591 में इन चारों राज्यों के पास इस उद्देश्य से अलग-2 राजदूत भेजे गये थे जिससे कि वे अकबर की अधीनता स्वीकार कर ले।

i. फैजी को खानदेश राजा- अली खाँ (अकबर ने राजा की उपाधि दी)
ii. अमीनुद्दीन अहमदनगर शासक- बुरहान निजाम शाह
iii. मिर्जा अमीन मसूदी बिजापुर सुल्तान- इब्राहिम आदिलशाह II
iv. मिर्जा मसूद को गोलकुण्डा शासक- इब्राहिम कुतुबशाह

किन्तु केवल खानदेश के शासक अली खां के द्वारा ही अकबर की अधीनता स्वीकार की गई। बाकी तीनो राज्यो ने अधीनता मानने से इन्कार कर दिया तब अकबर द्वारा 1595 में अब्दुर्रहीम खानेखाना और प्रिंस मुराद के नेतृत्व में सैनिक अभियान अहमदनगर के खिलाफ भेजा। यद्यपि इस समय मुजफ्फर निजाम शाह सुल्तान था किन्तु उसके अल्पवयस्क होने की स्थिति में चाँद बीबी द्वारा सेना का नेतृत्व किया गया। चाँद बीबी मुजफ्फर निजाम शाह की बुआ और बीजापुर के सुल्तान अली आदिल शाह की पत्नी थी।
चाँद बीबी के कड़े प्रतिरोध के कारण जब मुगल सेना अहमदनगर पर अधिकार नहीं कर सकी तब 1596 में अहमदनगर के सुल्तान ने मुगलों

महाराणा उदयसिंह- अकबर द्वारा नवम्बर, 1567 में चित्तौड़ पर आक्रमण किया गया तब महाराणा उदयसिंह की अनुपस्थिति में जयमल और फत्ता (फतेहसिंह) के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना द्वारा अकबर के आक्रमण का प्रतिरोध किया।

* किन्तु अकबर फरवरी 1568 में चित्तौड़ पर अधिकार करने में कामयाब हुआ।
* 1572 में महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद महाराणा प्रताप मेवाड़ के शासक बने। महाराणा प्रताप के द्वारा भी अकबर के विरुद्ध प्रतिरोध की नीति का अनुसरण किया गया। अतः अकबर ने महाराणा प्रताप को समझाने के उद्देश्य से चार अलग-2 दूत उनके पास भेजे।

i. जलाल (जलालुद्दीन) खाँ कुर्ची (1572)
ii. मानसिंह (1573)
iii. भगवंत दास (1573)
iv. टोडरमल (1573)

* किन्तु जब चारों दूत अपने उद्देश्य में असफल रहे तब अकबर ने 1576 में मानसिंह और आसफ खाँ के नेतृत्व में एक मुगल सेना महाराणा प्रताप के विरुद्ध भेजी। जिसके फलस्वरूप 18 जून 1576 को मानसिंह के नेतृत्व में मुगल सेना और महाराणा प्रताप के बीच हल्दीघाटी का युद्ध हुआ। अबुल फजल ने इस युद्ध को खमनौर का युद्ध कहा। जबकि बदायूनी ने इसे गोगुन्दा का युद्ध कहा। कर्नल टॉड ने इसे मेवाड़ का थर्मोपल्ली कहा।
* हाकिम खाँ सूर नामक मुगल सरदार राणा प्रताप के पक्ष में लड़ा।
* बदायूनी भी इस युद्ध में मुगल सेना में उपस्थित था।
* महाराणा प्रताप का हाथी- रामप्रसाद था।
* महाराणा प्रताप की पराजय किन्तु उनके युद्ध से निकलकर भाग जाने के बाद झाला बीदा के द्वारा राजपूत सेना का नेतृत्व किया।
* युद्ध के बाद 1576 - 85 की अवधि में राणा प्रताप द्वारा कुम्भलगढ़ किले को आधार बनाकर अकबर के विरुद्ध संघर्ष किया गया। इस अवधि में भी
* 1582 में दिवेर (राजसमंद) के युद्ध में राणा प्रताप ने सुल्तान खाँ को पराजित करके उसका वध कर दिया।
* 1585 के बाद अकबर द्वारा मेवाड़ के विरुद्ध कोई सैनिक अभियान नहीं भेजा गया तब राणा प्रताप ने चावण्ड (उदयपुर) को अपनी राजधानी बनाया।
* 1597 में चावण्ड में राणा प्रताप की मृत्यु हो गयी।

महाराणा प्रताप की मृत्यु के बाद महाराणा अमरसिंह ने अकबर की आधीनता स्वीकार न करके प्रतिरोध की नीति अपनायी।

अकबर की दक्षिण नीति

अकबर की दक्षिण के दो मुख्य उद्देश्य थे-

i. दक्षिण भारत के राज्यों को जीतकर उन्हें स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य में मिला लेना चाहता था।
ii. अकबर दक्षिण भारत के राज्यों पर पुर्तगालियों के प्रभाव को स्थापित होने से रोकना चाहता था।

अकबर के समय में दक्षिण भारत में 4 चार राज्य थे-

i. खानदेश ii. अहमदनगर
iii. बीजापुर iv. गोलकुण्डा

* अकबर द्वारा सर्वप्रथम 1591 में इन चारों राज्यों के पास इस उद्देश्य से चार अलग-2 राजदूत भेजे गये थे जिससे कि वे अकबर की अधीनता स्वीकार कर ले।

i. फैजी को खानदेश राजा- अली खाँ (अकबर ने राजा की उपाधि दी)
ii. अमीनुद्दीन अहमदनगर शासक - मुजफ्फर निजाम शाह
iii. मिर्जा अमीन मसूदी बिजापुर सुल्तान - इब्राहिम आदिलशाह II
iv. मिर्जा मसूद को गोलकुण्डा शासक - इब्राहिम कुतुबशाह

किन्तु केवल खानदेश के शासक अली खां के द्वारा ही अकबर की आधीनता स्वीकार की गई। बाकी तीनों राज्यों ने आधीनता मानने से इन्कार कर दिया तब अकबर द्वारा 1595 में अब्दुर्रहीम खानेखाना और प्रिंस मुराद के नेतृत्व में सैनिक अभियान अहमदनगर के खिलाफ भेजा। यद्यपि इस समय मुजफ्फर निजाम शाह सुल्तान था किन्तु उसके अल्पवयस्क होने की स्थिति में चाँद बीबी द्वारा सेना का नेतृत्व किया गया। चाँद बीबी मुजफ्फर निजाम शाह की बुआ और बीजापुर के सुल्तान अली आदिल शाह की पत्नी थी।

चांद बीबी के कड़े प्रतिरोध के कारण जब मुगल सेना अहमदनगर पर अधिकार नहीं कर सकी तब 1596 में अहमदनगर के सुल्तान की मुगलो

के साथ एक सन्धि हुई। जिसके अनुसार अहमदनगर के सुल्तान द्वारा मुगल आधीनता स्वीकार कर ली गयी।

* मुजफ्फर निजाम शाह की जगह बहादुर निजाम शाह को सुल्तान स्वीकार किये
* बरार का प्रान्त अहमदनगर के सुल्तान द्वारा मुगल सम्राट को सौंप दिया गया।
* इस सन्धि के बाद जब अहमदनगर के सुल्तान द्वारा इस सन्धि का उल्लंघन करके बरार पर अपना पुनः अधिकार करने का प्रयास किया तब 1599 में अकबर ने स्वयं अहमदनगर पर आक्रमण किया और 1600 ई. में उसने अहमदनगर राज्य का आधा जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया। किन्तु इसी जब खानदेश के शासक राजा अली खां की मृत्यु हो जाने के बाद उसके पुत्र मीरन बहादुर शाह ने स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया तब अकबर ने 1600 ई. में ही खानदेश राज्य को जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया ~~तथा असी~~
* असीरगढ़ विजय अकबर की अन्तिम विजय थी। असीरगढ़ खानदेश का महत्वपूर्ण किला था जिसे अकबर द्वारा 6 जनवरी 1601 को जीता गया। अकबर ने खानदेश का नाम बदलकर दानदेश कर दिया। अपने पुत्र दानियाल को खानदेश का गवर्नर नियुक्त किया।
* इसी समय अकबर के ज्येष्ठ पुत्र सलीम द्वारा इलाहाबाद में अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर देने के कारण अकबर दक्षिण भारत के अन्य राज्यों को नहीं जीत सका।

(औरंगजेब 1658-1707)

धार्मिक नीति - अकबर द्वारा जिस धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अनुसरण किया गया था उसे बाद में जहांगीर, शाहजहां द्वारा जारी रखा गया। किन्तु औरंगजेब ने अकबर की नीति के विपरीत कट्टर धार्मिक नीति का अनुसरण किया। जिसके पीछे दो मुख्य कारण थे-

I. औरंगजेब व्यक्तिगत रूप से एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह अकबर की नीति का कट्टर आलोचक था।

II. कुछ इतिहासकारो का यह मानना है कि औरंगजेब द्वारा कट्टर धार्मिक नीति का अनुसरण करने के पीछे राजनीतिक कारण थे क्योंकि उत्तराधिकार के युद्ध में उसने स्वयं को इस्लाम का रक्षक घोषित करके दारा के विरुद्ध जिन कट्टरपंथी मुगल सरदारो और उलेमा वर्ग का सहयोग प्राप्त किया था उनको सन्तुष्ट करने के लिए उसने यह नीति अपनायी।

* औरंगजेब द्वारा सर्वप्रथम दरबार में प्रचलित सभी गैर मुस्लिम यहां तक कि गैर सुन्नी परम्पराओ का अनुसरण करना बन्द कर दिया। उदाहरण के लिए उसने दरबार में नौरोज का त्यौहार मनाना बन्द कर दिया।
* औरंगजेब ने दरबार में संगीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया और दरबारी संगीतकारो को दरबार से निष्कासित कर दिया।
* औरंगजेब ने दरबार में हिन्दु त्यौहारो को मनाना बन्द कर दिया
* उसने झरोखा दर्शन, तुलादान को भी बन्द कर दिया।
* उसके द्वारा 1669 में सभी प्रान्तीय गवर्नरो के नाम इस बात के लिए फरमान (शाही आदेश) भेजे गए कि उनके द्वारा अपने-2 प्रान्तो में स्थित मन्दिरो की सूची तैयार की जाए और उन्हें तोडा जाए। मन्दिरो को तोडने के कार्यो की निगरानी के लिए प्रान्तो में मुहतसिब नियुक्त किए गए।

मुहतसिब - सदाचार ~~निरी~~ निरीक्षक। मुख्य कार्य - इस बात की जांच करना था कि मुसलमानो के द्वारा अपने दैनिक जीवन में कहां तक मुस्लिम परम्पराओ का

अनुसरण किया जाता था। यदि कोई मुस्लिम इस्लाम में वर्जित परम्पराओं का अनुसरण करता हुआ पाया जाता तो उसे वह दण्डित करता था। इसके साथ ही बाजारों में तौल-नाप की जांच करता था। किन्तु मुगल काल में औरंगजेब के समय में नियुक्त किए गए मुहतसिब को मुख्य कार्य मन्दिरों को तोड़ने का सौंपा।

* औरंगजेब के आदेश पर मुगल साम्राज्य के विभिन्न भागों में जिन मन्दिरों को तोड़ा गया उनमें तीन मन्दिर महत्वपूर्ण थे-
  i. सोमनाथ का मन्दिर ii. बनारस का विश्वनाथ मन्दिर
  iii. मथुरा का केशवराय का मन्दिर
* औरंगजेब द्वारा 1679 में जजिया कर को पुनः लागू किया गया।

औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह- धार्मिक कट्टर नीति के फलस्वरूप हुए जिनमें प्रमुख माने जाते हैं-

i. जाट विद्रोह → मथुरा के आस-पास 1670 में गोकुल जाट के नेतृत्व में हुआ। गोकुल के बाद विद्रोह का नेतृत्व राजाराम के द्वारा किया गया। राजाराम के बाद चूड़ामण ने नेतृत्व किया।

ii. सतनामी विद्रोह - सतनामी हिन्दू सम्प्रदाय था जिसकी स्थापना 16वीं शताब्दी में बीरभान के द्वारा की गयी। सतनामी दादू से प्रभावित थे। • मुख्य केन्द्र- नारनौल। सतनामी विद्रोह 1672 में नारनौल और उसके आस-पास हुआ।

iii. सिख विद्रोह → औरंगजेब के आदेश पर पंजाब और कश्मीर में सिख गुरुओं और मन्दिरों को नुकसान पहुंचाया जा रहा था तब इसका सिक्खों के 9वें गुरु तेगबहादुर के द्वारा कड़ा विरोध किया गया। फलस्वरूप तेग बहादुर को गिरफ्तार करके 1675 में दिल्ली में औरंगजेब के आदेश पर उनका वध कर दिया गया। गुरु तेग बहादुर के बाद उनके पुत्र गुरु गोविन्द सिंह (10वें गुरु) ने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए सिक्ख धर्म को खालसा में परिवर्तित कर दिया। 1699 में खालसा की स्थापना की।

औरंगजेब की दक्षिण नीति

औरंगजेब की दक्षिण नीति के उद्देश्य थे-

दक्षिण भारत के राज्यों को जीतकर उन्हें स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य में मिला लेना था।

ii. दक्षिण भारत में स्थित बीजापुर और गोलकुण्डा शिया मत के अनुयायी थे और वे मुगल सम्राट के बजाय ईरान के सम्राट के प्रति स्वामीभक्ति रखते थे। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था इसलिए वह इन शिया राज्यों के स्वतन्त्र को समाप्त कर देना चाहता था।

iii. औरंगजेब शिवाजी के नेतृत्व में दक्षिण में स्थापित नयी मराठा शक्ति का दमन कर देना चाहता था।

* औरंगजेब के समय में दक्षिण भारत में तीन राज्य शक्तिशाली माने जाते थे-
  i. बीजापुर ii. गोलकुण्डा iii. मराठा राज्य
* औरंगजेब की बीजापुर गोलकुण्डा विजय → औरंगजेब द्वारा 1686 में व्यक्तिगत रूप से बीजापुर पर आक्रमण किया गया। बीजापुर के अन्तिम सुल्तान सिकन्दर आदिल शाह को पराजित करके बीजापुर को साम्राज्य में मिलाया।
* बीजापुर विजय के बाद 1687 में औरंगजेब द्वारा गोलकुण्डा के सुल्तान अबुल हसन पर आक्रमण किया गया। अबुल हसन को पराजित करके किया।

औरंगजेब के मराठों के साथ संबंध → औरंगजेब के मराठों के साथ संबंधों को इतिहासकारों द्वारा चार चरणों में विभाजित किया गया-

i. औरंगजेब एवं शिवाजी (1658-1680) → शिवाजी का जन्म 1627 ई. में शिवनेर के पहाड़ी किले में हुआ। शिवनेर जुन्नार (महाराष्ट्र) नगर के पास स्थित था। पिता → शाहजी भोंसले उस समय बीजापुर के सुल्तान मोहम्मद आदिल शाह के सैनिक सेवा में नियुक्त थे। उन्हें पूना का किला जागीर में मिला हुआ था। 1640 में शाहजी भोंसले ने शिवाजी को अपनी मां जीजाबाई के साथ पूना के किले में भेज दिया था। अपने एक विश्वासपात्र सरदार दादाजी कोण्डदेव को शिवाजी का संरक्षक नियुक्त किया। दादाजी कोण्डदेव के द्वारा ही शिवाजी को सैनिक, राजनीतिक प्रशिक्षण दिया (राजनीतिक गुरु)।

* शिवाजी के पहले महाराष्ट्र में कोई संगठित मराठा राज्य नहीं था और महाराष्ट्र के विभिन्न प्रदेश अलग-2 मराठा सरदारों के अधिकार में थे। ये मराठा सरदार बीजापुर की अधीनता में थे। किन्तु शिवाजी महाराष्ट्र के इन समस्त प्रदेशों को जीतकर एक स्वतन्त्र मराठा राज्य की स्थापना करना चाहते थे।

इस उद्देश्य से शिवाजी द्वारा तोरण पहला ~~किला~~ मराठा किला था जिसे शिवाजी द्वारा बीजापुर के सुल्तान से 1646 में छीना।

* इसके बाद पुरन्दर इसरा महत्वपूर्ण किला था जिसे 1648 में शिवाजी द्वारा मराठा सरदार नीलोजी नीलकण्ठ से छिना गया।
* इसके बाद शिवाजी ने जावली का किला 1656 में मराठा सरदार चन्द्रराव मोरे से छिना था। जावली विजय से शिवाजी की सैनिक और आर्थिक शक्ति काफी मजबूत हुयी क्योंकि जावली के किले के साथ-2 इससे प्रचुर विशाल क्षेत्र शिवाजी को प्राप्त हुआ। इसके साथ ही जावली के किले में मौजूद मोरे मराठा सरदारो का विशाल राजकोष मिला।
* इसके बाद शिवाजी द्वारा मुगल प्रदेशो पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया गया। शिवाजी द्वारा मुगल साम्राज्य पर पहला आक्रमण 1657 में जुन्नार नामक कस्बे पर हुआ।
* इस प्रकार जब 1658 में औरंगजेब मुगल सम्राट बना तबतक शिवाजी द्वारा महाराष्ट्र का विशाल प्रदेश जीतकर एक स्वतन्त्र मराठा राज्य की स्थापना की।
* औरंगजेब द्वारा शिवाजी के विरूद्ध प्रारम्भ में जो भी सैनिक अभियान भेजे गये उनमें सबसे प्रमुख 1660 में शाइस्ता खाँ के नेतृत्व में भेजा गया। जिसने पूना के किले के सहित अनेक मराठा किले शिवाजी से छिनकर अपने अधिकार में कर लिये।
* फलस्वरूप शिवाजी ने पूना के किले में शाइस्ता खाँ पर रात्री आक्रमण करके उसे दक्षिण भारत से हटा दिए जाने में सफल हुए।
* शाइस्ता खाँ के असफल रहने पर औरंगजेब द्वारा मिर्जा राजा जयसिंह को दक्षिण भारत के चार प्रान्तो का गवर्नर बनाकर शिवाजी की शक्ति का दमन करने का प्रयास में आदेश किया।
* मिर्जा राजा जयसिंह ने शिवाजी को पराजित करके उन्हें समर्पण करने के लिए मजबूर किया।
* अन्त में शिवाजी के अनुरोध पर जून, 1665 में दोनो के बीच पुरन्दर की संधि हुई जिसके मुख्य प्रावधान इसप्रकार हैं-

I. शिवाजी द्वारा 23 किले और 4 लाख हूण की आय का प्रदेश मुगलो को सौंप दिया मराठा सिक्का था। [1 हूण = 3.5 रुपये]
II. 12 किले और 1 लाख हूण की आय का प्रदेश शिवाजी के पास रहा।
III. शिवाजी के पुत्र शम्भाजी 5 हजार मराठा घुड़सवारो सहित मुगल सम्राट की सेवा में नियुक्त रहेंगे।
IV. शिवाजी द्वारा मुगल अधीनता स्वीकार करली गयी।
V. यदि मुगल सेना द्वारा भविष्य में बीजापुर पर आक्रमण किया जाता है तब शिवाजी द्वारा बीजापुर के विरूद्ध मुगल सेना की मदद की जायगी।

शिवाजी की आगरा यात्रा - मिर्जा राजा जयसिंह की सलाह पर शिवाजी द्वारा औरंगजेब से मिलने के लिए आगरा की यात्रा की किन्तु जब मिर्जा राजा की सलाह के विपरीत औरंगजेब द्वारा शिवाजी को कैद कर लिया गया किन्तु शिवाजी मुगल कैद से निकलकर भागने में सफल हो गये।

* आगरा से शिवाजी मथुरा, मथुरा से इलाहाबाद, इलाहाबाद से बुन्देलखण्ड, बुन्देलखण्ड से गोण्डवाना, गोण्डवाना से गोलकुण्डा, गोलकुण्डा से पूना 25 दिन में आये।
* पूना लौटने के बाद शिवाजी द्वारा सर्वप्रथम मराठा राज्य के लिये प्रशासन का गठन किया गया। उसके बाद उन्होंने अपनी राजधानी रायगढ़ में 16 जून, 1674 को हिन्दु धर्मशास्त्रो के आधार पर अपना राज्याभिषेक सम्पन्न करवाया।
* शिवाजी का राज्याभिषेक काशी के पंडित विश्वेश्वर गागाभट्ट द्वारा किया।
* शिवाजी द्वारा छत्रपति की उपाधि धारण की गयी।
* यद्यपि शिवाजी का दूसरा राज्याभिषेक अक्टूबर 1674 में उनके राज-पुरोहित निश्चलपुरी गोस्वामी द्वारा तांत्रिक विधा से करवाया गया।
* शिवाजी की अन्तिम विजय कर्नाटक विजय थी। कर्नाटक का प्रदेश शिवाजी 1677 में बीजापुर के सुल्तान सिकन्दर आदिलशाह से छीना गया। जिसमें दो जिले सम्मिलित थे - I. जिंजी II. वेलूर
* शिवाजी की मृत्यु 1680 में रायगढ़ में हुयी।
* इस प्रकार शिवाजी के जीवनकाल औरंगजेब मराठा शक्ति का दमन नहीं कर सका।

II. औरंगजेब एवं शम्भाजी (1680 - 1689)

* शिवाजी के दो पुत्र थे - I. शम्भाजी II. राजाराम
* शिवाजी की मृत्यु के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी मराठा छत्रपति बने। किन्तु शम्भाजी अपने उग्र स्वभाव के कारण शिवाजी के विपरीत महाराष्ट्र की जनता में काफी बदनाम थे। यहां तक कि शम्भाजी द्वारा शिवाजी के समय के अष्टप्रधान के अधिकारी मन्त्रीयो के साथ-2 अनेक महत्वपूर्ण मराठा सरदारो का वध करवा दिया गया।

अतः औरंगजेब ने इसका लाभ उठाकर उसके द्वारा बीजापुर, गोलकुण्डा को

जीत लेने के बाद 1689 में शम्भाजी को उनके मुख्य सलाहकार कवि कलश के साथ गिरफ्तार करके उन्हें घोर यातनाएं देकर उनका वध करवा दिया। इस प्रकार 1689 तक ~~सभी~~ औरंगजेब की दक्षिण नीति काफी सफल रही।

8. औरंगजेब एवं राजाराम (1689-1700)

* 1689 में शम्भाजी की मृत्यु के बाद उनके पुत्र शाहू व्यस्क नहीं थे। अतः शम्भाजी के छोटे भाई राजाराम को मराठा छत्रपति बनाया गया। राजाराम द्वारा औरंगजेब की अपार सैनिक शक्ति का मुकाबला करने के लिए जो व्यवस्था लागू की वह इस प्रकार है -

i. राजाराम ने शिवाजी के समय की राजतन्त्रात्मक व्यवस्था का त्याग करके सत्ता का विकेन्द्रीयकरण किया। राजाराम द्वारा जागीर प्रथा को लागू किया गया। महाराष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों को जागीरों के रूप में विभिन्न मराठा सरदारों में बांट दिया। सभी सरदारों को अपनी-2 जागीरों में पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की। जिसके फलस्वरूप महाराष्ट्र में विभिन्न मराठा सरदारों के रूप में सत्ता के अनेक केन्द्र बन गये। छत्रपति केवल नाममात्र का शासक रह गया। इस प्रकार राजाराम द्वारा लागू इस व्यवस्था के फलस्वरूप मराठा राज्य मराठा संघ में परिवर्तित हो गया।

ii. इसके अतिरिक्त राजाराम द्वारा मुगल आक्रमणों के विरुद्ध छापामार युद्ध नीति प्रयोग किया गया। जिसके फलस्वरूप इसके समय में औरंगजेब मराठा शक्ति का दमन करने में असफल रहा।

औरंगजेब एवं ताराबाई (1700-1707)

* 1700 में राजाराम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शिवाजी II छत्रपति बना। किन्तु शिवाजी II अल्प व्यस्क होने के कारण उसकी मां ताराबाई उसकी संरक्षक नियुक्त हुई। 1700-1707 तक ताराबाई के नेतृत्व में मराठों द्वारा मुगल आक्रमणों का प्रतिरोध किया गया।
* जिस समय ताराबाई के हाथ में मराठों का नेतृत्व आया उनके अधिकार में केवल 8 किले थे।
* i. सतारा, ii. पार्ली iii. पन्हाला iv. सिंहगढ़ v. विशालगढ़ vi. रायगढ़ vii. तोरण viii. वागिन खेडा
* ताराबाई के कड़े विरोध के कारण औरंगजेब व्यक्तिगत रूप से आक्रमण करने के बावजूद भी इन 8 किलों पर अधिकार नहीं कर सका।

वागिन खेडा अन्तिम मराठा खेडा था जिसका घेरा औरंगजेब द्वारा 1706 में डाला गया। किन्तु इस समय औरंगजेब के गम्भीर रूप से बीमार हो जाने के कारण यहां का घेरा उठाकर वापस अहमदनगर लौटना पड़ा। जहां बाद में 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गयी।

इस प्रकार औरंगजेब अपने जीवनकाल में मराठा शक्ति का दमन नहीं कर पाया और अन्ततः उसकी दक्षिण नीति असफल रही तथा मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण सिद्ध हुई।

* सर जदुनाथ सरकार ने (हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब) में लिखा है कि जिस प्रकार नेपोलियन बोनापार्ट के लिए स्पेन एक नासूर बन गया था उसी तरह औरंगजेब के लिए दक्षिण भारत एक नासूर सिद्ध हुआ।

शिवाजी की शासन व्यवस्था

1. केन्द्रीय शासन व्यवस्था -

अष्टप्रधान → शिवाजी द्वारा केन्द्रीय सरकार में जिन 8 मन्त्रियों की नियुक्ति की गयी थी। उन्हें ही अष्टप्रधान के नाम से जाना जाता है।

1. पेशवा → प्रधानमन्त्री को कहा जाता था और मराठा छत्रपति के बाद पेशवा का पद ही राज्य में सबसे महत्वपूर्ण था। उसका मुख्य कार्य सभी मन्त्रियों के कार्यों में समन्वय बनाये रखना था।

पहला पेशवा - शिवाजी ने शामराज नीलकंठ को राज्य विस्तार के बाद मोरोपंत पिंगले पहला महान् पेशवा -

2. अमात्य (मजमुआदार) - वित्त मन्त्री था।
3. मन्त्री (वाकया नवीस) - मराठा दरबार में व्यवस्था बनाये रखना और मराठा दरबार की दैनिक घटनाओं को लिखना, छत्रपति से मिलने वाले लोगों की सूची तैयार करना। इस प्रकार वह जनता और मराठा छत्रपति के बीच कड़ी का काम करता था।
4. सचिव (सुरु नवीस) - राजकीय पत्र विभाग का अध्यक्ष था और छत्रपति द्वारा अन्य राजाओं को जो भी पत्र लिखे जाते थे, राज्याधिकारियों को छत्रपति द्वारा दिए शाही आदेश उन सब को लिखना, प्रेषित करना और उनका ब्यौरा रखना मुख्य कार्य था।
5. सुमन्त (दबीर) → विदेश मन्त्री था।

6. सेनापति (सरे नौबत) → मराठा सेना का अध्यक्ष था।
7. पण्डितराव (दानाध्यक्ष) - धर्म एवं दान विभाग का अध्यक्ष
8. न्यायाधीश - न्यायपालिका का अध्यक्ष

(मराठा स्वराज्य)

* शिवाजी द्वारा सर्वप्रथम अपने समस्त राज्य को तीन सम्भागों में बांटा -
i. उत्तरी प्रान्त → अध्यक्ष - मोरोपन्त पिंगले
ii. दक्षिणी प्रान्त → "-" - अन्ना जी दत्तो
iii. दक्षिण-पूर्वी प्रान्त → "-" - दत्ता जी पंत

* शिवाजी द्वारा अपने समस्त राज्य को 14 प्रान्तों (जिलों) में विभाजित किया। प्रान्त का अध्यक्ष सूबेदार होता था। मुख्य कार्य - अपने प्रान्त में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना था।
* किन्तु बाद में पेशवा काल में सूबेदार को मामलातदार के नाम से सम्बोधित किया।
* सूबेदार के अतिरिक्त कमाविसदार अन्य अधिकारी था, जो भू-राजस्व संबंधी कार्यों को देखता था।

* प्रान्त (जिले) को कुछ परगनों में विभाजित किया गया और परगने को महाल भी कहा जाता था। प्रत्येक परगने में दो अधिकारी नियुक्त थे -
i. देशमुख - परगने का अध्यक्ष। मुख्य कार्य - शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना था।
ii. ~~देशपाण्डे~~ देशमुख को अपनी व्यक्तिगत जमीन पर सरकार कोई भूमिकर नहीं देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त उसे परगने की आय का 5% और दिया जाता था। इसके अलावा इसे गांव के दस्तकारों से सभी प्रमुख त्यौहारों पर भेंट प्राप्त करने का अधिकार था।
ii. देशपाण्डे → परगने का भू-राजस्व संबंधी कार्य देखता था। वेतन के बदले परगने की आय का 2.5% दिया जाता था। उसकी व्यक्तिगत जमीन भी भूमिकर से माफ थी

गांव - प्रत्येक महाल में अनेक गांव सम्मिलित होते थे। गांव में 4 अधिकारी होते थे -
i. पटेल - (पाटिल) गांव का अध्यक्ष। पटेल को मुकदम भी कहते थे।
ii. कुलकर्णी - भू-राजस्व संबंधी कार्य देखता था।
iii. चौगुल - पटेल का सहायक।
iv. महार - गांव सुरक्षा व्यवस्था को देखना।

शिवाजी के भू-राजस्व सुधार

1. शिवाजी द्वारा जमींदारों के माध्यम से भू-राजस्व कर वसूल करने की व्यवस्था को समाप्त कर दिया तथा भू-राजस्व अधिकारियों द्वारा ही किसानों से भूमिकर वसूल किया जाता था।
2. शिवाजी द्वारा भूमिकर की दर उपज का $\frac{2}{5}$ या 40% लागू की।
3. भूमिकर निर्धारण के लिये पैमाइश की पद्धति प्रचलित की। भूमि की नाप के लिये छड़ी/काठी का प्रयोग किया जाता था।
4. महाराष्ट्र में किसान को मिरासदार कहा जाता था।
5. भूमिकर के अलावा शिवाजी के समय में आय के अन्य मुख्य स्रोत - चौथ एवं सरदेशमुखी थे।

चौथ - कर था। जिसे मराठों द्वारा अन्य राज्यों से वसूल किया जाता था। यह उन राज्यों की आय का 25% होता था। इसके बदले में मराठों द्वारा उन राज्यों में भविष्य में लूटमार न करने की गारन्टी दी जाती थी।
सरदेशमुखी - कर था जो मराठों द्वारा केवल पड़ोसी राज्यों से वसूल किया जाता था। यह उन राज्यों की आय का 10% होता था। सरदेशमुखी इस बात का प्रतीक था, जो उन राज्यों द्वारा मराठों की सम्प्रभुता को स्वीकार कर लिया गया है। उन राज्यों में आन्तरिक शान्ति व्यवस्था बनाए रखना मराठों का उत्तरदायित्व था। उन राज्यों की अन्य राज्यों के आक्रमणों से रक्षा करना था।

शिवाजी की सैन्य व्यवस्था

शिवाजी द्वारा मराठा राज्य के लिए एक विशाल और शक्तिशाली सेना का गठन किया गया। जिसमें 1 लाख पैदल सैनिक (मावली सैनिक), 45 हजार पागा घुड़सवार (बारगीर), 60 हजार सिलहदार घुड़सवार थे।
* पागा घुड़सवार सिलहदारों से श्रेष्ठ माने जाते थे। पागा घुड़सवारों को हथियार और घोड़ा राज्य द्वारा उपलब्ध कराया जाता था किन्तु सिलहदारों द्वारा हथियार और घोड़ा स्वयं को खरीदना पड़ता था।
* घुड़सवार सेना में शिवाजी के समय सबसे छोटी सैनिक टुकड़ी 25 घुड़सवारों की होती थी। इसका अध्यक्ष हवलदार कहलाता था।

5 हवलदारो पर एक जुमलादार (125 घुड़सवार)
10 जुमलदारो पर एक हजारी (1250 ..)
* घुड़सवार सेना में सबसे बड़ा पद 5 हजारी होता था।
पैदल सैनिक (पायक)
पैदल सेना में सबसे छोटी टुकड़ी → 9 सैनिक। अध्यक्ष - नायक
5 नायक - एक हवलदार
2/3 हवलदारो पर - जुमलदार
10 जुमलदार पर - एक हजारी
पैदल सेना में सबसे बड़ा पद 7 हजारी होता था।

* शिवाजी के समय में उनके अधिकार में 240 किले थे। शिवाजी द्वारा एक नौसेना का गठन किया गया था।
* नौसेना अध्यक्ष को दरिया सारंग कहते थे।

मुख्य बातें—
1. मराठा स्वराज्य - शिवाजी के समय में उनके राज्य के अन्तर्गत जो प्रदेश सम्मिलित थे, उन्हें ही मराठा स्वराज्य कहा गया है।
2. जी. एस. सरदेसाई - "शिवाजी न केवल महाराष्ट्र में बल्कि सम्पूर्ण भारत में हिन्दु पदशाही (साम्राज्य) की स्थापना करना चाहते थे।" पुस्तक → मैनकरेन्ट्स ऑफ मराठा हिस्ट्री में कहा।
3. मराठा स्वतन्त्रता संग्राम → 1689 — 1707 के काल को मराठा इतिहास में मराठा स्वतन्त्रता संग्राम के नाम से जाना जाता है। क्योंकि 1689 में शम्भाजी का वध करवा देने के बाद औरंगजेब ने अपनी समस्त सैनिक शक्ति महाराष्ट्र अधिकार स्थापित करने में लगा दी। किन्तु मराठे हरस्थिति में अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखना चाहते थे। इसलिए महाराष्ट्र की समस्त जनता ने मुगलो के खिलाफ विद्रोह कर दिया था। सारा महाराष्ट्र युद्ध क्षेत्र में परिवर्तित हो गया। प्रारम्भ में मराठों ने राजाराम के नेतृत्व में और फिर ताराबाई के नेतृत्व में अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया।
4. सर अजाम व्यवस्था - का उल्लेख पेशवा काल में मिलता है। मराठा सरदारो को उनके सैनिको के वेतन के बदले में जो जागीरे दी जाती थी उन्हें मोकासा कहते थे और मराठा सरदारों को व्यक्तिगत वेतन के बदले में जो जागीरे दी जाती थी उन्हें सर अजाम कहा जाता था।

पेशवाओं की शक्ति का उत्थान तथा मराठा शक्ति के उत्थान में पेशवाओं का योगदान

1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों में उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष हुआ (आजम एवं मुअज्जम)। आजम उस समय दक्षिण भारत में औरंगजेब के पास मौजूद था। अतः जब आजम आगरा पर अधिकार करने के उद्देश्य से उत्तर भारत के लिए रवाना हुआ तब उसने छत्रपति शम्भाजी के पुत्र शाहू को मुगल कैद से रिहा करके इस उद्देश्य से महाराष्ट्र भेज दिया गया था कि वह छत्रपति के पद के लिए अपना दावा प्रस्तुत करेगा और ताराबाई अपने पुत्र छत्रपति शिवाजी II के होते हुए शाहू को छत्रपति स्वीकार नहीं करेगी।

शाहू तथा ताराबाई के बीच सत्ता के लिए जो संघर्ष होगा उसके कारण मराठे गृहयुद्ध में उलझ जायेंगे और वे दक्षिण भारत में स्थित मुगल प्रान्तों पर आक्रमण नहीं कर सकेंगे।

शाहू के महाराष्ट्र पहुंचने पर ताराबाई के विरुद्ध अनेक मराठा सरदारों द्वारा शाहू का पक्ष लिया गया। जिनमें बालाजी विश्वनाथ प्रमुख थे। इन मराठा सरदारों की मदद से ही शाहू ने ताराबाई और उसके पुत्र छत्रपति शिवाजी II को सतारा से निष्कासित करके खुद को छत्रपति घोषित किया (1708 में)। शाहू 1708 से लेकर 1749 तक छत्रपति रहा।

छत्रपति शाहू द्वारा बालाजी विश्वनाथ की सेवाओं से खुश होकर उसे 1713 में पेशवा के पद पर नियुक्त किया। 1713 से 1720 तक पेशवा रहा। चूंकि शाहू को युद्धों का और प्रशासन का कोई अनुभव नहीं था। इसलिए उसके समय में छत्रपति का पद कमजोर होता चला गया और पेशवा का पद शक्तिशाली होता चला गया। मराठा इतिहास में बालाजी विश्वनाथ प्रथम महान पेशवा माना जाता है।

पेशवा के रूप में बालाजी विश्वनाथ की मुख्य उपलब्धियां →

1. शाहू के विरोधियों की शक्ति का दमन → बालाजी विश्वनाथ ने महल षड्यन्त्र के द्वारा शाहू की सबसे मुख्य प्रतिद्वन्द्वी ताराबाई की शक्ति का दमन किया। क्योंकि सतारा से निष्कासित कर दिये जाने के बाद ताराबाई उसके पुत्र शिवाजी II के द्वारा कोल्हापुर के छत्रपति शम्भाजी II के पास शरण ली। बालाजी विश्वनाथ की सलाह पर छत्रपति शम्भाजी II ने एक षड्यंत्र के द्वारा ताराबाई और उसके पुत्र शिवाजी II को कोल्हापुर के किले में कैद किया।

2. शासन का पुनर्गठन करना - जब महाराष्ट्र पर मुगल आक्रमणों की सम्भावना समाप्त हो गयी तब शाहू की सलाह पर बालाजी विश्वनाथ ने मराठा राज्य के शासन का पुनर्गठन किया। जिसके अनुसार -

I. छत्रपति राजाराम के समय में मराठा सरदारों को जो अस्थायी जागीरे दी गयी थी अब उन पर सरदारों का वंशानुगत अधिकार स्वीकार कि

II. छत्रपति के पास कोई खालसा भूमि नहीं थी अतः अब सभी मराठा सरदार अपनी-2 जागीरों की आय का 34% छत्रपति को देंगे 66% स्वंय रखेंगे।

इस प्रकार बालाजी विश्वनाथ ने जो यह वित्तीय व्यवस्था लागू की इसके द्वारा उसने मराठा छत्रपति को अपनी आय के लिए मराठा सरदारों पर निर्भर बना दिया।

II. बालाजी विश्वनाथ के द्वारा सभी प्रमुख प्रशासनिक पदों को वंशानुगत बनाया।
III. बालाजी विश्वनाथ का सबसे मुख्य कार्य 1719 की मुगल मराठा सन्धि को मानते है। यह सन्धि बालाजी विश्वनाथ और सैयद बन्धु हुसैन अली खां के बीच हुयी। सन्धि के प्रावधान–
I. दक्षिण के 6 मुगल प्रान्तो से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार मराठो को प्राप्त हो गया।
II. इसके बदले में छत्रपति शाहू द्वारा 15 हजार मराठा घुड़सवार मुगल सम्राट की सैनिक सेवा में नियुक्त किए जाएगे।
III. छत्रपति शाहू द्वारा 10 लाख रु. मुगल सम्राट को दिए जाएंगे।
IV. शाहू की मां ~~यशोबाई~~ यसुबाई और उसकी पत्नी को मुगल कैद से रिहा कर दिया गया।
4. बालाजी विश्वनाथ के द्वारा ही अपने पुत्र बाजीराव प्रथम ~~के~~ के लिए ~~सस~~ उत्तर भारत में विस्तारवादी नीति का अनुसरण करने का मार्ग प्रशस्त किया।

पेशवा बाजीराव I (1720 - 1740) -

बालाजी विश्वनाथ के दो पुत्र थे - I. बाजीराव I II. चिमनाजी अप्पा
छत्रपति शाहू ने बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव I को पेशवा नियुक्त किया। वह मराठा इतिहास में दूसरा महान पेशवा माना जाता है। बल्कि शिवाजी के बाद मराठा इतिहास में दूसरा महान व्यक्ति बाजीराव I को ही मानते हैं। बाजीराव I मुख्य कार्य–
1. बाजीराव I के नेतृत्व में मराठो द्वारा पहली बार उत्तर भारत में विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया गया। उदाहरण के लिए पेशवा बाजीराव ने अपनी इस नीति की व्याख्या करते हुए कहा था कि अब समय आ गया है कि हमें विदेशियो को हिन्दुस्तान से निकालकर बाहर कर देना चाहिए। हमें सूखे वृक्ष ~~पर~~ के तने पर प्रहार करना चाहिए। शाखाएं तो स्वतः ही हमारे अधिकार में आ जाएगी। हमें मराठा झण्डे को कृष्णा नदी से लेकर अटक (पंजाब) तक फहरा देना चाहिए।
II. बाजीराव I द्वारा उत्तर भारत पर निरन्तर आक्रमण करके और मालवा पहले मुगल प्रान्त था जिसे 1728 में बाजीराव I ने अम्झेरा के युद्ध में मालवा के गवर्नर गिरधर बहादुर को पराजित करके मालवा पर कब्जा कर लिया था।

[अम्झेरा → धार, MP]

~~आधुनिक काल~~ ~~Modern~~ History

~~भारत में यूरोपीय कम्पनियों का आगमन~~

III. मालवा के बाद गुजरात दूसरा प्रान्त था जिसे 1731 में बाजीराव I ने जीतकर अपने अधिकार में किया।
IV. बाजीराव I द्वारा मालवा, गुजरात दोनो प्रान्त बाद में जागीरो के रूप में अपने चार सहायक मराठा सरदारो को सौंप दिये गये। ~~व~~ जो 4 मराठा राज्यो के संस्थापक बने। इन चारो को ही मराठा संघ के 4 सरदार माना जाता है।

I. दत्ताजी गायकवाड	III. मल्हार राव होल्कर
II. रघुजी भोंसले I	IV. रानोजी सिन्धिया

* दत्ताजी गायकवाड को उसने गुजरात का आधा प्रान्त जागीर में दिया था जिसने बड़ौदा को अपनी राजधानी बनाया।
* रघुजी भोंसले ~~B~~ I को उसने गुजरात का शेष भाग जागीर में दिया जिसने बाद में नागपुर को अपनी राजधानी बनाया। नागपुर के भोंसले राज्य का संस्थापक था।
* मल्हार राव होल्कर को उसने मालवा का आधा भाग जागीर में दिया जिसने बाद में इन्दौर को अपनी राजधानी बनाया।
* रानोजी सिंधिया को उसने मालवा ~~का~~ का शेष भाग जागीर में दिया जिसने ग्वालियर को अपनी राजधानी बनाया।

V. बाजीराव I द्वारा बुन्देलखण्ड के शासक छत्रसाल बुन्देला के अनुरोध पर उसे इलाहाबाद के गवर्नर मोहम्मद खां बंगश की कैद से मुक्त करवाकर उसका राज्य उसे वापिस दिलवाया था और इस मदद की एवज में छत्रसाल बुन्देला के द्वारा बुन्देलखण्ड का आधा राज्य बाजीराव को सौंप दिया। बाजीराव I ने उसका प्रशासक गोविन्द पन्त खरे को नियुक्त किया।
VI. बाजीराव I के आदेश पर उसके छोटे भाई चिमनाजी अप्पा के द्वारा बेसिन पर आक्रमण करके ~~बेसिन~~ पुर्तगालियो को पराजित करके सालसेट तथा बेसिन के दोनो बन्दरगाह अपने अधिकार में कर लिये।
VII. बाजीराव के निजामुलमुल्क के साथ संबंध – औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल अमीर वर्ग में सर्वाधिक योग्य अमीर निजामुलमुल्क आसफजाह था। जब मुगल सम्राट मोहम्मद शाह द्वारा निजामुलमुल्क को बाजीराव के विरुद्ध भेजा गया तब बाजीराव और निजामुलमुल्क के बीच दो युद्ध लड़े गये -

II. पालखेड का युद्ध – (औरंगाबाद, महाराष्ट्र) → पालखेड का युद्ध निजाम और बाजीराव के बीच मार्च, 1728 में लड़ा गया। जिसमें इसने निजाम को पराजित किया। उसके बाद निजाम और बाजीराव के बीच मार्च, 1728 में मुंगीशिवगांव की सन्धि हुयी। सन्धि के प्रावधान –

I. निजाम द्वारा शाहू को महाराष्ट्र का एकमात्र छत्रपति स्वीकार कर लिया। साथ ही उसने यह आश्वासन दिया कि वह भविष्य में शाहू के विरुद्ध कोल्हापुर के छत्रपति शम्भाजी II की मदद नहीं करेगा।

II. निजाम द्वारा दक्षिण के 6 मुगल प्रान्तो से मराठो का चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार स्वीकार किया।

III. भोपाल का युद्ध (दिसम्बर, 1737) – निजाम और बाजीराव I के बीच जिसमें एक बार पुनः बाजीराव ने निजाम को पराजित किया। इसके बाद निजाम और बाजीराव के बीच जनवरी, 1738 में दोराहा सराय की सन्धि हुयी। प्रावधान –

I. निजामुलमुल्क द्वारा मालवा और गुजरात पर मराठो का अधिकार स्वीकार किया गया।

II. भविष्य में इस सन्धि की पुष्टि वह मुगल सम्राट से करवायेगा।

पेशवा बालाजी बाजीराव (1740 – 1761)

पेशवा बाजीराव I के दो पुत्र थे – I. बालाजी बाजीराव, II. रघुनाथ राव राघोबा

छत्रपति शाहू के द्वारा बाजीराव I की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र बालाजी बाजीराव को पेशवा नियुक्त किया। वह मराठा इतिहास में तीसरा महान पेशवा माना जाता है। पेशवा के रूप में मुख्य कार्य –

I. बालाजी बाजीराव के द्वारा भी उत्तर भारत में अपने पिता की विस्तारवादी नीति का ही अनुसरण किया। उदाहरण के लिये उसने 1751 में रघुजी भोंसले I के नेतृत्व में एक मराठा सेना बंगाल पर आक्रमण करने के लिए भेजी जिसने बंगाल के नवाब अली वर्दी खां को पराजित करके उड़ीसा का प्रान्त उससे छीनकर अपने अधिकार में ले लिया। अली वर्दी खां ने बंगाल और बिहार के लिए 12 लाख के वार्षिक चौथ के रूप में देना स्वीकार कर लिया।

II. सांगोला समझौता (1751) → 1749 में छत्रपति शाहू की मृत्यु हो गयी थी और शाहू के कोई पुत्र नहीं था इसलिए उसकी मृत्यु के बाद ताराबाई का पौत्र रामराजा छत्रपति बना। किन्तु बालाजी बाजीराव रामराजा को छत्रपति मानने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए उसने 1751 में ताराबाई और रामराजा को वार्ता के लिए पूना आमंत्रित किया। और पूना में ही रामराजा बालाजी बाजीराव के बीच 1751 में सांगोला समझौता हुआ। जिसके अनुसार रामराजा द्वारा छत्रपति की सारी शक्तियां पेशवा को हस्तान्तरित कर दी गयी और इस प्रकार सांगोला समझौते के बाद छत्रपति का पद समाप्त हो गया। अब पेशवा ही मराठा संघ / राज्य का अध्यक्ष बन गया।

III. मराठो का पंजाब पर अधिकार (1757) – मुगल सम्राटो की दुर्बलता का लाभ उठाकर 1757 के प्रारम्भ में अहमदशाह अब्दाली के द्वारा पंजाब को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया गया। किन्तु इसके कुछ समय बाद 1757 में ही रघुनाथराव राघोबा के नेतृत्व में मराठों द्वारा पंजाब पर आक्रमण करके अहमदशाह अब्दाली की सेना को पंजाब से निकालकर पंजाब पर अधिकार कर लिया। दत्ताजी सिन्धिया को पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया।

IV. 1758 में मराठो द्वारा मुगल सम्राट आलमगीर II को अपने संरक्षण में ले लिया गया और अपने मित्र इमादुलमुल्क को वजीर के पद पर नियुक्त किया। इस प्रकार बालाजी बाजीराव के समय में मराठा शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी। किन्तु बालाजी बाजीराव के समय में मराठा शक्ति का पतन भी प्रारम्भ हो गया।

पानीपत का तृतीय युद्ध (1761) → 1759 में अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब से मराठो को निष्कासित करके पंजाब पर अधिकार कर लिया तथा दत्ताजी सिन्धिया का वध कर दिया गया। फलस्वरूप बालाजी बाजीराव द्वारा अपने चचेरे भाई सदाशिव राव भाऊ के नेतृत्व में एक लाख मराठा सेना अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध भेजी गयी। इस मराठा सेना के साथ बहुत बड़ी संख्या में प्रमुख मराठा सरदारो को भी भेजा गया। इस सेना के साथ पेशवा का ज्येष्ठ पुत्र विश्वास राव भी गया। इस मराठा सेना के तोपखाने का अध्यक्ष इब्राहिम शाह गार्दी था। किन्तु इस युद्ध में मराठो को किसी भी हिन्दु शासक का समर्थन नहीं मिला जबकि अहमदशाह को भारतीय

मुसलमानों का समर्थन प्राप्त था। मुख्य रूप से अवध का नवाब सुजाउद्दौला और मुगल वजीर नजीबुद्दौला अहमदशाह के पक्ष में लड़े।
* इस युद्ध में अन्ततः मराठों की पराजय हुयी। सदाशिवराव भाऊ और पेशवा के पुत्र विश्वासराव सहित अधिकांश मराठा सरदार इस युद्ध में मारे गये। और 50 हजार मराठा सैनिक मारे गये।
इस युद्ध के बाद मराठा शक्ति का पतन प्रारम्भ हो गया।

अध्याय-13

मुगल राजनीति में नूरजहाँ जुन्ता की भूमिका

जहाँगीर

13 अगस्त, 1569 ई. को अकबर की कछवाहा रानी मरियम उज्जमानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम शेख मुहम्मद सलीम रखा गया। सोलह वर्ष की आयु में उसका विवाह आमेर नरेश भगवानदास की पुत्री मानबाई से कर दिया गया। राजकुमार खुसरो इसी दाम्पत्य की देन था। खुसरो के पितृ-भक्ति विहीन व्यवहार से दु:खी होकर मानबाई ने 1604 ई. में आत्महत्या कर ली थी। अकबर की मृत्यु के बाद 3 नवम्बर, 1605 ई. को सलीम नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी की उपाधि के साथ मुगल सिंहासन पर बैठा।

खुसरो का विद्रोह-अकबर के अन्तिम दिनों में सलीम के स्थान पर उसके बड़े पुत्र खुसरो को बादशाह बनाने का असफल षड्यन्त्र रचा गया था। जहाँगीर के बादशाह बनने के बाद भी पिता-पुत्र में तनाव बना रहा। जहाँगीर ने उसे बन्दी बना लिया। परन्तु खुसरो अपने साथियों सहित आगरा से निकल भागा। दिल्ली होते हुए वह लाहौर पहुँचा। तरनतारन में उसने सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुनसिंह का आशीर्वाद भी प्राप्त किया। जहाँगीर ने अपने जीवन में पहली बार तत्परता से कदम उठाते हुए खुसरो के विद्रोह को कुचल दिया। विद्रोही खुसरो को कारागार में डाल दिया गया। उसके साथियों को कठोर यातनाएँ देकर मार डाला गया। गुरु अर्जुन को भी मृत्युदण्ड दिया गया।

नूरजहाँ

प्रारम्भिक जीवन-नूरजहाँ का मूल नाम मेहरुन्निसा था, जो गयासबेग नामक एक फारसी की पुत्री थी। खुरासान में गयासबेग के पिता की मृत्यु हो जाने पर उसने अपने दो पुत्र और गर्भिणी स्त्री के साथ भारत की ओर प्रस्थान किया। कन्धार में उसकी पत्नी अस्मत बेगम ने 1578 ई. में एक कन्या को जन्म दिया जिसका नाम मेहरुन्निसा रखा गया। जिस कारवाँ के साथ गयासबेग आया था उसका स्वामी मलिक मसूद नामक व्यापारी था, जिसने गयासबेग को अकबर के दरबार में नौकरी दिलवा दी। गयासबेग अपनी योग्यता से उन्नति करता गया और उसे काबुल का दीवान बना दिया गया। इसी बीच मेहरुन्निसा एक मनोहारी युवती के रूप में विकसित हुई। अनुपम सौन्दर्य और स्त्री-सुलभ कमनीयता के कारण युवराज सलीम उस पर मोहित हो गया। किन्तु अकबर को यह सब पसन्द नहीं था। अत: मेहरुन्निसा का विवाह फारस के एक युवक

अलीकुलीखाँ के साथ कर दिया, जिसे बाद में सलीम ने 'शेर अफगान' की उपाधि दी। सम्राट बनने के बाद जहाँगीर ने शेर अफगान को बर्दवान का फौजदार बना दिया। सम्भवत: मेहरुन्निास का मनोहारी सौन्दर्य अभी तक जहाँगीर के मन-मस्तिष्क पर छाया हुआ था। अत: शेर अफगान पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर, बंगाल के गवर्नर कुतुबुद्दीनखाँ को उसे दरबार में पेश करने का आदेश दिया। कुतुबुद्दीन ने शेर अफगान को बन्दी बनाने का प्रयास किया, तो दोनों में संघर्ष छिड़ गया, जिसमें शेर अफगान मारा गया। मेहरुन्निसा और उसकी पुत्री लाडली बेगम को दरबार में लाया गया। मेहरुन्निसा को अकबर की विधवा सलीमा बेगम की परिचारिका बना दिया। चार वर्ष बाद मार्च, 1611 ई. में जहाँगीर ने मेहरुन्निसा से विवाह कर लिया।

शेर अफगान की मृत्यु और जहाँगीर के इस विवाह के सम्बन्ध में अनेक विवादास्पद धारणाएँ पायी जाती हैं। डॉ. बेनीप्रसाद का मत है कि मार्च, 1611 ई. के पूर्व जहाँगीर ने मेहरुन्निसा को देखा तक नहीं था और न जहाँगीर का शेर अफगान की हत्या में कोई हाथ था। लेकिन डॉ. ईश्वरीप्रसाद का मत है कि युवक सलीम का मेहरुन्निसा के प्रति आसक्त होना सामान्य बात है और कदाचित शेर अफगान की हत्या में भी उसका हाथ था। समस्त घटनाचक्र के अध्ययन से स्पष्ट है कि युवक सलीम मेहरुन्निसा से प्रेम करता था। शेर अफगान की हत्या के सम्बन्ध में स्पष्ट है कि उस पर कोई निश्चित अभियोग नहीं लगाया गया और न उसे अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का अवसर दिया गया। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में इस घटना का संकेत मात्र भी नहीं दिया है, जिससे भी सन्देह उत्पन्न होता है। डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि, ''यदि प्रेमासक्ति की धारणा सत्य है तो शेर अफगान की हत्या का उद्देश्य भी स्पष्ट है।'' नि:सन्देह मेहरुन्निसा को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा ही शेर अफगान की हत्या का मूल कारण था।

नूरजहाँ से विवाह के परिणाम-मेहरुन्निसा से विवाह होने पर जहाँगीर की चिर-अभिलाषा पूर्ण हुई। वह मेहरुन्निसा को पाकर इतना प्रफुल्लित हो उठा कि उसे 'नूरमहल' (प्रासाद की ज्योति) की उपाधि दे दी, जो बाद में 'नूरजहाँ' (विश्व की ज्योति) की उपाधि में परिवर्तित कर दी गई। नूरजहाँ अत्यन्त ही महत्त्वाकां णी रमणी थी। उसने राजकीय मामलों में हाथ बँटाना आरम्भ किया और धीरे-धीरे शासन की समस्त सत्ता अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया। जहाँगीर उसके सौन्दर्य एवं ताजगी के प्रभाव से अभिभूत हो गया। उसके सम्बन्धियों को दरबार में उच्च पद देकर विभिन्न उपाधियों से विभूषित किया गया। उसका पिता एतमादुद्दौला तथा भाई आसफखाँ दरबार के प्रभावशील व्यक्तियों में हो गये। जहाँगीर भी अपनी आयु और अस्वस्थता के कारण आलसी होता जा रहा था, अत: धीरे-धीरे राजसत्ता नूरजहाँ के हाथों में केन्द्रित होने लगी। शाही फरमानों में भी सम्राट जहाँगीर के नाम के साथ नूरजहाँ का नाम भी लिखा जाने लगा। वह सम्राट की भाँति प्रजा को झरोखा दर्शन देने लगी। नूरजहाँ इतनी शक्ति-सम्पन्न हो गई कि जहाँगीर केवल नाममात्र का शासक रह गया। स्वयं जहाँगीर कहने लगा कि, ''मैंने हिन्दुस्तान की बादशाहत नूरजहाँ बेगम को दे दी है।'' ऐसी स्थिति में सारा राजनैतिक वातावरण ही बदल गया। नूरजहाँ ने अपनी स्थिति को दृढ़ करने हेतु एक दल बना लिया, जिसे 'नूरजहाँ गुट' कहा जाता है। इस गुट में नूरजहाँ के माता-पिता, भाई और शाहजादा खुर्रम शामिल थे। उसने अपनी भतीजी (आसफ खाँ की पुत्री) का विवाह खुर्रम से कर अपने गुट को और अधिक मजबूत कर लिया। नूरजहाँ का पिता योग्य एवं निपुण शासक था तथा उसका भाई

असाधारण प्रतिभा का अर्थशास्त्री था। नूरजहाँ स्वयं भी बुद्धिमान स्त्री थी। उसमें प्रशासकीय एवं राजनैतिक समस्याओं के रहस्य को तुरन्त समझने और शीघ्र उनका समाधान निकालने की क्षमता थी।

मुगल राजनीति में नूरजहाँ जुन्ता की भूमिका

नूरजहाँ का मुगल दरबार में प्रभाव और प्रभुत्व असीम था। अत: सम्पूर्ण नूरजहाँ के काल (1611-1627 ई.) को 'नूरजहाँ प्रभाव-युग' की संज्ञा दी जाती है। नूरजहाँ प्रभाव-युग को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम तो 1611 ई. से 1622 ई. तक जिसमें नूरजहाँ पर अपने माता-पिता का नियन्त्रण था और वे उसकी महत्त्वाकांक्षा को संयमित करते रहे। अत: वह पूर्ण स्वतन्त्र होकर कार्य नहीं कर सकी। दूसरा 1622 ई. 1627 ई. तक, जिसमें उसके माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह अनियन्त्रित हो गयी। अत: उसने पूर्ण स्वच्छन्द होकर प्रशासनिक कार्य किये। इस नूरजहाँ प्रभाव-युग के परिणाम अत्यन्त ही घातक सिद्ध हुए थे।

नूरजहाँ प्रभाव-युग के प्रथम भाग में नूरजहाँ अपने गुट की अधिष्ठात्री और राजतन्त्र की एकमात्र स्वामिनी बनी रही। उसका अपने पति पर भी अच्छा प्रभाव था। इस प्रभाव के फलस्वरूप ही जहाँगीर का दैनिक मद्यपान उत्तरोत्तर कम होता गया था। उसने सम्राट को शासकीय चिन्ताओं से अधिकाधिक मुक्त रखने का प्रयास किया। अपने इस प्रभाव-युग में शक्ति-संग्रह तथा दलबन्दी के मामलों में वह असाधारण रूप से अनुरागशील बनी रही। अपने पिता, भाई तथा अन्य सम्बन्धियों को दरबार में उच्च एवं प्रभावशाली पदों पर प्रतिष्ठित करवाया। इस काल में उसने शाहजादा खुर्रम को अपना सहयोग एवं समर्थन देकर गौरव और समृद्धि के सर्वोत्कृष्ट शिखर पर पहुँचा दिया। उसका युवराज बनना एक निर्विवाद सम्भावना लगती थी। जिस किसी ने उसकी सत्ता व प्रभाव का विरोध किया उसे निकाल बाहर किया गया। उस समय दरबार में दो गुट बने हुए थे, एक नूरजहाँ के समर्थकों का था, जिसका नेतृत्व उसका भाई आसफ खाँ कर रहा था। दूसरा गुट नूरजहाँ के विरोधियों का था, जिसका नेतृत्व महाबत खाँ कर रहा था। 1612 ई. में आसफ खाँ ने अपनी पुत्री अर्जुमन्द बानू बेगम का विवाह शाहजादे खुर्रम से कर दिया। फलस्वरूप दरबार में आसफ खाँ का प्रभाव और अधिक बढ़ गया। जहाँगीर पर नूरजहाँ का इतना प्रभाव था कि वह उसकी इच्छा के बिना कोई निर्णय नहीं कर सकता था। नूरजहाँ के इस प्रभाव ने साम्राज्य की राजनीति में घातक परिणाम पैदा कर दिये। उसमें अनेक गुण होते हुए भी वह एक स्त्री थी। एक स्त्री की सत्ता में प्रभुता स्थापित होने से अनेक बुरी परम्पराएँ स्थापित हो गयीं। चूँकि अकेली नूरजहाँ राज्य के प्रत्येक मामले की देखभाल करने में असमर्थ थी, अत: प्रशासन में अकुशलता और अनैतिकता शामिल होना स्वाभाविक था। लेकिन इस प्रभाव-युग में नूरजहाँ की माता अस्मत बेगम उसकी मुख्य परामर्शदात्री थी, जिसने अपनी महत्त्वाकांक्षिणी और चंचल प्रकृति की पुत्री को संयमित बनाये रखने में श्रेयस्कर काम किया। अस्मत बेगम एक सुशिक्षित एवं सन्तुलित विचारों वाली महिला थी। अत: उसने नूरजहाँ के चंचल स्वभाव को पूर्ण नियन्त्रण में रखा।

नूरजहाँ प्रभाव-युग के दूसरे भाग में वह अधिक स्वच्छन्द होकर कार्य करने लगी, क्योंकि इस युग में उसके माता-पिता की मृत्यु हो गयी थी और अब उस पर नियन्त्रण रखने वाला

कोई नहीं रहा। फिर इस प्रभाव-युग में जहाँगीर भी बहुधा बीमार रहता था। अत: वह सभी ओर से मुक्त हो चुकी थी। जहाँगीर की बीमारी के कारण दरबार में अनेक गुट बन गये और नूरजहाँ के विरोधी शक्ति-सम्पन्न होने लगे। अपने प्रथम प्रभाव-युग में उसने शहजादे खुर्रम को अवलम्बन प्रदान कर उसके युवराज बनने की तीव्र सम्भावना उत्पन्न कर दी थी, लेकिन अपने प्रभाव-युग के दूसरे भाग में जब नूरजहाँ ने अपनी पुत्री लाडली बेगम का विवाह जहाँगीर के सबसे छोटे पुत्र शहरयार (जिसका उपनाम नैशुदनी अर्थात् निखट्टू था) से कर दिया तो खुर्रम के युवराज बनने की सम्भावना धूल में मिल गई क्योंकि अब वह अपने दामाद शहरयार का पक्ष लेने लगी और उसे युवराज बनाने का स्वप्न देखने लगी। नूरजहाँ के इस व्यवहार ने खुर्रम को विद्रोह के लिए विवश कर दिया। उसका भाई आसफ खाँ जो नूरजहाँ प्रभाव-युग के प्रथम भाग में नूरजहाँ-गुट का आधार स्तम्भ था, वह भी नूरजहाँ का विरोधी बन गया क्योंकि वह अपने दामाद खुर्रम को युवराज बनाने के पक्ष में था, अत: उसने खुर्रम का पक्ष ग्रहण कर लिया। इस प्रकार इस दूसरे भाग में नूरजहाँ की नीतियों ने साम्राज्य में गृह-कलह के बीज बो दिये। समस्त साम्राज्य गृह-युद्धों एवं विद्रोहों से परिप्लावित हो उठा। नूरजहाँ की सत्ता के प्रति अनुरागशीलता ने उच्च अधिकारियों को स्वामिभक्तिपूर्ण सेवाओं के प्रति उदासीन बना दिया। नूरजहाँ का विरोध करने वाले स्वामिभक्त अमीर-उमरावों को भी सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा। फलस्वरूप सत्ताप्रिय इस रमणी और स्वामिभक्त सरदारों के बीच असहयोग की खाई और गहरी होती गई। खुर्रम के विद्रोह के चिन्ह पूरी तरह से समाप्त भी नहीं हुए थे, कि महाबत खाँ को, जिसने अपने शौर्य और स्वामिभक्ति के कारण 'अमीर-उल-उमरा' की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, विद्रोह का झण्डा फहरा कर सम्राट को भी बन्दी बनाने के लिए विवश होना पड़ा, क्योंकि नूरजहाँ की नीतियों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि बेगम इसी प्रकार अपनी मनमानी करती रही तो उसे सपरिवार नष्ट होना पड़ेगा। नूरजहाँ ने जनसाधारण एवं राज्यकर्मचारियों को बहुमूल्य भेंट देकर उन्हें प्रसन्न करने का मार्ग अपनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य में घूसखोरी और दुराचार फैल गये। इस प्रकार नूरजहाँ की नीतियों ने न केवल दरबार को दलबन्दी और षड्यन्त्रों का अड्डा बनाया, बल्कि साम्राज्य की ठोस नींव को भी डगमगा दिया।

नूरजहाँ का मूल्यांकन–जहाँगीर से विवाह होने के समय नूरजहाँ की आयु 34 वर्ष की थी और वह एक बच्ची की माँ भी बन चुकी थी। किन्तु पूर्ण वय का मनोहारी सौन्दर्य और उसकी ताजगी अभी भी उसमें विद्यमान थी। शृंगार और आभूषण तो उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते थे। वह उच्च शिक्षा प्राप्त थी तथा संगीत, चित्रकला तथा काव्य में उसे विशेष रुचि थी। वह स्वयं भी फारसी में पद्य रचना किया करती थी। उसके द्वारा प्रचलित वेशभूषा की प्रणाली का प्रभाव औरंगजेब के समय तक बना रहा। नूरजहाँ बड़ी उदार हृदय स्त्री थी। निर्धन व असहाय व्यक्तियों की सहायता करना तथा अनाथ कन्याओं के विवाह का व्यय भार वहन करने का तो उसने नियम बना रखा था। उसमें पुरुषोचित मेधा और महत्त्वाकांक्षा थी। अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को शीघ्र ही प्रभावित करने की उसमें अद्‌भुत क्षमता थी। वह गम्भीर और धैर्यवान थी। आवेश में उसने कभी अपने मस्तिष्क का सन्तुलन नहीं खोया। 1613 ई. में वह 'पट्टमहिषी' बनायी गयी थी और अन्त तक उसने इस पद के गौरव को बनाये रखा। वह अपने पति की बड़ी सावधानी से देखभाल करती थी। मुगल दरबार की वैभव-समृद्धि के लिए उसने सफल प्रयत्न किये। जहाँगीर

अध्याय–21

मुगल साम्राज्य का पतन

बाबर ने जिस मुगल साम्राज्य की स्थापना की थी, वह अकबर के काल में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। जहाँगीर ने उस साम्राज्य को वैभवपूर्ण बनाया और शाहजहाँ ने उसे ऐश्वर्यता प्रदान की। इस विपुल और अपार ऐश्वर्य ने विदेशी यात्रियों की आँखों को भी चकाचौंध कर दिया। लेकिन इस वैभव और ऐश्वयं में घुन लगे हुए थे जो साम्राज्य की नींव को खोखला कर रहे थे। अत: औरंगजेब के शासनकाल में यह वैभव और ऐश्वर्य धूमिल पड़ने लगा और औरंगजेब की नीतियों ने तो यह स्पष्ट कर दिया कि अब मुगल साम्राज्य का अन्त निकट आ गया है। इसलिए कुछ विद्वान औरंगजेब को मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। औरंगजेब का उत्तरदायित्व सिद्ध करते हुए इसके निम्नलिखित कारण बताये हैं–

(1) औरंगजेब की धर्मान्धता–औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी और धर्मान्ध शासक था। वह अपने आपको केवल सुन्नी मुसलमानों का बादशाह मानता था। फलस्वरूप उसने देश में कुरान द्वारा निर्देशित नियम बनाये और लोगों को इन नियमों का पालन करने के लिए बाध्य किया। भारत को इस्लामी राज्य में परिवर्तित करने की प्रबल इच्छा के कारण उसे गैर–मुसलमानों को इस्लाम धर्म में दीक्षित कराने का एक सुनियोजित अभियान छेड़ना पड़ा। दूसरी ओर देश की गैर–मुस्लिम प्रजा अपने धर्म और संस्कृति को बनाये रखने हेतु दृढ़ संकल्प थी। अत: दोनों में पारस्परिक विरोध होना तो स्वाभाविक ही था। औरंगजेब ने इस बात पर कभी ध्यान ही नहीं दिया कि उसकी इस धर्मान्ध नीति के परिणाम क्या होंगे? उसकी धर्मान्धता ने समस्त हिन्दू जाति को क्रुद्ध कर दिया; जिससे जाटों, सतनामियों, सिक्खों, मराठों आदि के विद्रोह फूट पड़े और समस्त साम्राज्य विद्रोहों की आग से झुलसने लगा। उसकी धर्मान्ध नीति ने स्वामिभक्त राजपूतों को जो साम्राज्य के आधार स्तम्भ माने जाते थे, क्रुद्ध कर साम्राज्य के आधार स्तम्भों को ही गिरा दिया। उसका विनाश तो उसी समय आरम्भ हो गया था जबकि उसने मारवाड़ के स्वामिभक्त वीर राठौड़ों से संघर्ष मोल लिया। हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त कर वहाँ की देव मूर्तियों को अपमानजनक ढंग से नष्ट करना तथा हिन्दुओं पर जजिया–कर लगाने से तो साम्राज्य के विनाश की पुष्टि होने लग गयी। उसने शिया मुसलमानों को भी नष्ट करने का प्रयास किया। फलस्वरूप देश की न केवल हिन्दू प्रजा ही उसकी शत्रु बनी बल्कि शिया मुसलमान भी उसके कट्टर शत्रु बन गये।

(2) औरंगजेब की शंकालु प्रवृत्ति–अपनी शंकालु प्रवृत्ति के कारण औरंगजेब की शासन–व्यवस्था अत्यन्त केन्द्रित थी और सारे अधिकार वह अपने हाथ में रखता था। सम्राट अपने पुत्रों को प्रशासन के कार्य में शिक्षित कर उन्हें शासन–व्यवस्था का दायित्व सौंप सकता था,

लेकिन उसे सदैव यह भय बना रहता था कि उसके पुत्र उसे कहीं बन्दी बनाकर साम्राज्य पर अधिकार न कर लें, क्योंकि स्वयं औरंगजेब ने अपने पिता को बन्दी बनाकर साम्राज्य पर अधिकार किया था। अपनी इस शंकालु प्रवृत्ति के कारण वह अपने पुत्रों को न केवल प्रशासन से दूर रखता था, बल्कि उनके पीछे गुप्तचर भी लगाये रखता था। इसका परिणाम यह निकला कि उसके पुत्र आदेशों व नीतियों का विरोध करने को तत्पर रहते थे। इतना ही नहीं, उसके पुत्र उसके विरुद्ध षड्यन्त्र और विद्रोह करने को भी इच्छुक रहते थे। शाहजादा अकबर इस प्रवृत्ति से नाराज होकर राजपूतों से जा मिला था और उसके विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था। अपनी शंकालु प्रवृत्ति के कारण ही वह अपना कोई योग्य उत्तराधिकारी भी तैयार न कर सका। औरंगजेब अपने मन्त्रियों, अधिकारियों व सेनापतियों को भी शंका की दृष्टि से देखता था। इसलिए राज्य के छोटे-से-छोटे काम भी वह स्वयं करने का प्रयत्न करता था। फलतः उसके मन्त्री और अधिकारी मात्र क्लर्क बनकर रह गये और सेनापति घोर संकट के समय भी असहाय होकर सम्राट के आदेशों के लिए मुँह ताकने लगे। इससे प्रशासन में दायित्व की भावना ही समाप्त हो गयी। अतः जब तक सम्राट में शारीरिक योग्यता रही, साम्राज्य को नियन्त्रित रखा, किन्तु उसकी वृद्धावस्था और मृत्यु के बाद साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा।

(3) औरंगजेब के प्रशासन में दोष–जैसाकि ऊपर बताया गया है, औरंगजेब ने अत्यन्त ही एकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था स्थापित की थी। ऐसी शासन-व्यवस्था की सफलता सम्राट की शक्ति एवं योग्यता पर निर्भर करती है। जब तक औरंगजेब में शारीरिक योग्यता बनी रही, प्रशासन का काम ठीक-ठाक चलता रहा। वृद्धावस्था में भी वह दरबार में उपस्थित होकर प्रशासन का कार्य करने का प्रयत्न करता रहा, लेकिन उस समय ऐसा लगने लगा था कि अब सम्राट का वृद्ध जर्जर शरीर सदा के लिए अवकाश माँग रहा है। उस समय सर्वत्र साम्राज्य में यह अनुभव किया जाने लगा था कि प्रशासन की बागडोर उसके हाथ से निकली जा रही है। इसके अतिरिक्त उसके विचारों में धार्मिक पक्षपात का रंग चढ़ा हुआ होने के कारण उसके निर्णय सदा दोषपूर्ण रहते थे। ऐसी स्थिति में प्रशासन में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार ने साम्राज्य को खोखला करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। ''मआसिर-ए-आलमगीरी'' में हमें ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं कि औरंगजेब के शासन में छोटे-बड़े सभी अधिकारी भ्रष्ट आचरण से धन कमाते थे। इतना ही नहीं, स्वयं सम्राट बड़ी-बड़ी रकमें अथवा भेंटें ग्रहण कर अपने अधिकारियों के इच्छित स्थानों पर तबादले करता था। इस प्रकार प्रशासन में कोई भी व्यक्ति भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं था। ऐसे प्रशासन की सफलता संदिग्ध तो थी ही, उसका विनाश भी अवश्यम्भावी था।

(4) औरंगजेब की दक्षिण नीति–औरंगजेब की दक्षिण नीति न केवल साम्राज्य के लिए बल्कि स्वयं उसके लिये भी विनाशकारी सिद्ध हुई। दक्षिण भारत में मुख्यतः तीन शक्तियाँ थीं–बीजापुर, गोलकुण्डा और मराठा। ये तीनों शक्तियाँ पारस्परिक संघर्षरत रहने के कारण न तो मुगलों से लड़ने का साहस जुटा पा रही थीं और न उन्हें इसके लिए अवकाश ही मिल पा रहा था। फलस्वरूप दक्षिण में शक्ति-सन्तुलन बना हुआ था। लेकिन औरंगजेब ने इस शक्ति-सन्तुलन को नष्ट कर दिया। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा को मात्र इसलिए नष्ट कर दिया, क्योंकि वे शिया राज्य थे इसलिए औरंगजेब की दृष्टि में अपराधी थे। जब बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्य समाप्त हो गये तब उसकी सीधी टक्कर मराठों से होने लगी। औरंगजेब ने नवोदित मराठा शक्ति

को नष्ट करने हेतु सब कुछ लुटा दिया। लेकिन वह मराठा शक्ति को नहीं दबा सका, बल्कि उसने तो मराठों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित कर दिया। अन्तिम 25 वर्ष उसने दक्षिण के युद्धों में ही व्यतीत किये, फलस्वरूप बड़े-बड़े अधिकारी भी दक्षिण पहुँच गये और केन्द्रीय शासन दूसरी श्रेणी के लोगों के हाथ में आ गया, जिनमें प्रशासनिक क्षमता नाममात्र की भी नहीं थी। फलस्वरूप प्रशासन में अराजकता के साथ-साथ उत्तर भारत में अनेक विद्रोह उठ खड़े हुए। दक्षिण के लम्बे युद्धों के कारण साम्राज्य का राजकोष रिक्त हो गया। वस्तुतः दक्षिण औरंगजेब के लिये ऐसा विषैला फोड़ा सिद्ध हुआ जिससे उसका सर्वनाश हो गया। दक्षिण के निरन्तर युद्धों के कारण लम्बे समय तक उत्तर भारत में उसकी अनुपस्थिति से न केवल केन्द्रीय सत्ता कमजोर हुई बल्कि सारे साम्राज्य की शासन-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। ऐसे साम्राज्य के स्थायित्व की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती।

(5) औरंगजेब द्वारा कर-वृद्धि–अकबर के समय जो कर-निर्धारण का तरीका था, औरंगजेब ने उसे बन्द कर दिया। औरंगजेब के पूर्व सरकार की देखरेख में सरकारी अधिकारी लगान वसूल किया करते थे। किन्तु औरंगजेब ने ठेकेदारी प्रथा प्रारम्भ कर दी अर्थात् किसानों से लगान वसूल करने का ठेका दिया जाने लगा जो मनमानी दर से भू-लगान वसूल करते थे। फलस्वरूप लाखों किसानों की दशा बिगड़ गई। निरन्तर युद्धों के कारण कृषि और व्यापार नष्टप्राय हो गये। अकाल, महामारी आदि के कारण तो स्थिति ने विकराल रूप धारण कर लिया। चूँकि युद्धों में अत्यधिक जन-धन की हानि उठानी पड़ी, अतः इस क्षति को पूरा करने के लिए उसने किसानों व जनसाधारण पर कर-भार बढ़ा दिया। तात्कालिक परिस्थितियों में साधारण कर-वसूली भी बड़ी कठिनाई से हो रही थी और जब करों में वृद्धि कर दी गई तो सर्वत्र साम्राज्य में असन्तोष और विद्रोह की भीषण अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। स्वयं औरंगजेब ऐसी स्थिति देखकर कहा करता था उसकी मृत्यु के बाद कैसा प्रलय आयेगा? वास्तव में जिस प्रलय की कल्पना औरंगजेब ने की थी, उस प्रलय की पृष्ठभूमि का निर्माण तो उसने स्वयं ही कर दिया था।

(6) औरंगजेब की अन्य त्रुटियाँ–यद्यपि औरंगजेब बड़ा विद्वान् और बुद्धिमान शासक था, लेकिन चालाकी और मक्कारी भी उसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह निम्नतम साधन अपनाने में भी नहीं चूकता था। षड्यन्त्र और चालाकी से शत्रु को जीतना उसका स्वभाव था, जिसमें वह पारंगत था। उसके इस स्वभाव के कारण उसने अपने अनेक पदाधिकारियों को अपना शत्रु बना लिया। उसने शियाओं और विशेषकर इस्लामी और दाऊदी बोहरों पर भीषण अत्याचार किये तथा उनके उपदेशों व रीति-रिवाजों को नष्ट कर दिया। शाही नौकरियों में पक्षपात किया। औरंगजेब ने सबसे बड़ी गलती यह की कि उसने राजपूतों को शत्रु बनाकर उनकी सहानुभूति खो दी, जबकि साम्राज्य को उनकी सेवाओं की बड़ी आवश्यकता थी। उसने यह मानकर भी गलती की कि राजनैतिक, सैनिक और धार्मिक शासन प्रबन्ध की कुशलता से राज्य सफल हो जाता है, इसलिये उसने देश की सांस्कृतिक विधाओं को विकसित करने का कोई प्रयास नहीं किया। यहाँ की ललित कलाओं की ओर ध्यान न देने से भारतीय सभ्यता का ही पतन हो गया। वह तो अपने दीर्घ शासनकाल में प्रजा को जीवन व सम्पत्ति की सुरक्षा का आश्वासन भी न दिला सका। ऐसी व्यवस्था का तो अन्त निश्चित ही था।

अन्य कारण–उपर्युक्त कारणों से औरंगजेब को मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। लेकिन औरंगजेब तो केवल आंशिक उत्तरदायी था। वस्तुत: मुगल साम्राज्य के पतन के कुछ मौलिक कारण थे जो औरंगजेब के पूर्व भी विद्यमान थे और कुछ नये कारण उसकी मृत्यु के बाद उत्पन्न हो गये थे। इसलिये केवल औरंगजेब को मुगल साम्राज्य के पतन के लिये उत्तरदायी नहीं माना जा सकता। मुगल साम्राज्य के पतन के लिये अन्य निम्नलिखित कारण भी थे–

(1) मुगल सम्राटों की दुर्बलताएँ–मध्ययुगीन साम्राज्य मात्र सम्राटों की योग्यता पर टिका हुआ था। यदि सम्राट योग्य और चरित्रवान होता था तो साम्राज्य को स्थायित्व प्राप्त होता था। किन्तु औरंगजेब के उत्तराधिकारी न तो योग्य थे और न चरित्रवान्। वे अब तलवार के स्थान पर स्त्री और शराब से अधिक लगाव रखने लगे। औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह प्रथम को तो लोग "मस्त राजा" ही कहा करते थे। जहाँदारशाह अपनी प्रेयसी लालकुंवर के प्रेम में ही डूबा रहता था। फर्रुखसियर के समान तो मुगल वंश में कोई डरपोक शासक हुआ ही नहीं था। अहमदशाह और उसके उत्तराधिकारी तो सर्वथा निकम्मे व पथ-भ्रष्ट थे। फुलस्वरूप साम्राज्य की शक्ति स्वार्थी और षड्यन्त्रकारी लोगों के हाथ में चली गई, जिन्होंने साम्राज्य का सर्वनाश कर दिया। मुगल सम्राटों ने अपने जीवन के आदर्श और यहाँ तक कि दीवानी व फौजदारी कानून अरब, बगदाद और काहिरा से आयात किये, जो भारतीय सिद्धान्तों से भिन्न थे। अत: मुगल सम्राटों को लोकमत का समर्थन नहीं मिल सका और न उन्होंने इसके लिए कभी प्रयास ही किया। जन-समर्थन खोकर कोई सत्ता स्थायी नहीं रह सकती। इसके अतिरिक्त अकबर को छोड़कर सभी मुगल सम्राटों में धार्मिक कट्टरता विद्यमान थी। इस धार्मिक कट्टरता के कारण साम्राज्य के समस्त गैर-मुसलमान साम्राज्य के कट्टर शत्रु बन गये और उन्होंने जमकर मुगलों से लोहा लिया, जिससे साम्राज्य का अन्त में पतन हो गया।

(2) मुगल सामन्तों का नैतिक पतन–जिस प्रकार मुगल सम्राटों का नैतिक पतन हो चुका था, उसी प्रकार उनके सामन्तों का भी नैतिक पतन हो गया। सामन्तों में राजभक्ति और कर्त्तव्यपरायणता लोप हो गयी और वे स्वार्थी एवं विलासी हो गये। यदि कोई सामन्त योग्य भी होता तो वह स्वार्थी भी होता और राज्य के प्रति वफदार नहीं होता। सैयद बन्धु, अवध का सूबेदार, सफदरजंग और दक्षिण का सूबेदार निजाम यद्यपि योग्य थे, किन्तु वे अत्यधिक स्वार्थी भी थे और उन्होंने मुगल बादशाहों को केवल अपनी स्वार्थसिद्धि का साधन बना दिया। सम्राट के साथ-साथ सामन्तों में विलासिता बढ़ गई और उनके रनिवासों में भी सुन्दर स्त्रियों की भीड़ रहने लगी। वे युद्धक्षेत्र में भी अपना रनिवास साथ रखने लगे और शराब के आदी हो गये। ऐसे सामन्तों के युवक पुत्रों का दुश्चरित्र होना तो स्वाभाविक ही था। फलस्वरूप समस्त सामन्तीय व्यवस्था का ही नैतिक पतन हो गया। सर जदुनाथ सरकार ने ठीक ही लिखा है कि, "कोई भी मुगल सामन्त एक या दो पीढ़ियों से अधिक समय तक अपना महत्त्व बनाये नहीं रख सका था। यदि किसी सामन्त की वीरता के विषय में इतिहासकार ने तीन पृष्ठ लिखे तो उसके पुत्र के कार्यों का वर्णन केवल एक ही पृष्ठ में हुआ और उसके पौत्र का वर्णन केवल कुछ इस प्रकार के शब्दों में, 'उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया' समाप्त हो जाता।" मुगल सामन्त तो साम्राज्य की शक्ति के आधार थे और जब सामन्तों का नैतिक पतन हो गया तो साम्राज्य का आधार ही समाप्त हो गया।

---

(3) दोषपूर्ण सैनिक प्रणाली–मुगल सेना का मौलिक संगठन दोषपूर्ण था। इसकी अलग-अलग टुकड़ियाँ अलग-अलग मनसबदारों द्वारा भरतीं की जाती थीं और वे उसी की देखरेख में कार्य करती थीं। सैनिकों को शाही खजाने से वेतन न मिलकर मनसबदारों द्वारा चुकाया जाता था। अत: सम्राट और सिपाही में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रह गया था। सैनिक अपने मनसबदार को ही अपना सरदार मानते थे। अत: अपने मनसबदार के हितों के लिए शत्रु से घूस लेकर सम्राट से विश्वासघात करना साधारण बात थी। इससे मुगल सेना का नैतिक पतन हो गया। सम्राट की कोई सुदृढ़ सेना नहीं रह गई थी जिस पर वह अपना अधिकार रख सके। मनसबदारों की पारस्परिक ईर्ष्या के कारण वे कभी-कभी तो तीन-चौथाई जीते हुए युद्ध को या घेरे को इसलिए सफल नहीं होने देते थे कि विजय का श्रेय किसी अन्य मनसबदार को प्राप्त न हो जाय। सैनिक अपराधों तक को औरंगजेब माफ कर देता था, जिससे सेना में अनुशासन नाम की कोई चीज नहीं रह गई। इसके अतिरिक्त मुगलों ने बदलती हुई नवीन सैनिक प्रणाली के प्रति उदासीनता दिखाई। अकबर के काल में ही भारतीय तोपों की अपेक्षा पाश्चात्य तोपों का महत्त्व स्पष्ट हो गया था, क्योंकि पाश्चात्य तोपें हल्की होने से बड़ी सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जा सकती थीं। लेकिन मुगल शासक ऐसी तोपों का महत्त्व नहीं समझ सके। मुगलों ने सामुद्रिक शक्ति की भी अवहेलना की, इसलिए जहाजी बेड़ों की लड़ाई से वे सर्वथा अनभिज्ञ रहे। अत: आगे चलकर यूरोपीय शक्तियों ने सामुद्रिक युद्धों में मुगलों को करारी मात दी। प्राश्चात्य हथियारों और नवीन युद्ध प्रणाली के प्रति उपेक्षा मुगलों के लिए घातक सिद्ध हुई।

(4) मुगलों की क्षीण आर्थिक स्थिति–अकबर ने जिस पक्षपातरहित नीति का अवलम्बन किया था, उससे देश समृद्ध हुआ और सरकार की आय में भी वृद्धि हुई थी। किन्तु उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में आर्थिक ढाँचा बिल्कुल बिगड़ने लग गया। सरकार ने उत्पादकों पर कर का इतना बोझ लाद दिया कि उससे वे बिल्कुल दब गये। अकबर के काल में भू-लगान सीधा किसानों से लिया जाता था, किन्तु उसके पुत्र और पौत्र के शासनकाल में यह पद्धति समाप्त कर दी गई और औरंगजेब तथा उसके उत्तराधिकारियों के काल में तो यह प्रथा लगभग समाप्त कर इसके स्थान पर ठेकेदारी प्रथा जारी कर दी गई, जिससे किसानों का शोषण भी हुआ और सरकारी आय में भी कमी हुई। देश के आय के साधनों को देखते हुए मुगल सम्राटों की फिजूलखर्ची ने देश को रसातल में भेज दिया। मुगल सम्राटों ने अपने वैभव और ऐश्वर्य के लिए धन का अपव्यय भी किया। शाहजहाँ ने न केवल कन्धार और मध्य एशिया के युद्धों में निरर्थक धन खर्च किया बल्कि अपनी इमारतों व शौक पर भी अत्यधिक धन खर्च किया। औरंगजेब के काल में तो विद्रोहों और दक्षिण युद्धों के कारण मुगल सरकार बिल्कुल दिवालिया हो गयी। अत: बहादुरशाह प्रथम के समय तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि वह न तो अच्छी सेना रख सकता था और न ठीक प्रकार से शासन ही चला सकता था। आलमगीर द्वितीय के शासनकाल में तो स्वयं सम्राट भूखा मरने लगा और शाही परिवार के जेब खर्च को वजीर हड़पने लगा। सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि एक बार तो तीन दिन तक जनानखाने के रसोई घर में चूल्हा तक नहीं जला। आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसी दिवालिया मुगल सरकार भी पचास वर्ष तक चलती रही। लेकिन ऐसी सरकार का अन्त तो निश्चित ही था।

सूफी मत

सूफी मत पर लिखा गया साहित्य मलफुजात के नाम से जाना जाता था।
सूफीमत को तसवुफ भी कहा जाता था।

* सूफी मत की उत्पत्ति इस्लाम धर्म से हुई। इसकी उत्पति मध्य एशिया से हुई है।
* सूफीमत का पहला संत अबु हाशिम था, जो 8 वीं शताब्दी में हुआ। वह इराक में कूफा नामक नगर का निवासी था।
* सूफीमत की प्रथम महिला सन्त राबिया को माना जाता है, जो अबुहाशिम की समकालीन तथा इराक के पसरा की निवासी थी।
* सूफीमत वहादत-उल-वुजुत के सिद्धान्त को मानता है। इसका अर्थ है- आत्मा का परमात्मा के साथ एकीकरण हो जाना। आत्मा का परमात्मा के साथ एकीकरण को (मोक्ष) वसल। मारिफत कहते हैं।
* वहादत-उल-वुजुत का सिद्धान्त 10 वीं शताब्दि के मुहीउद्दीन इब्नुल अरबी के द्वारा प्रतिपादित
* सूफी मत में गुरु को पीर तथा मुर्शिद कहा जाता था तथा शिष्य को मुरीद कहा जाता था।

खानकाह → यह सूफी सन्तों का निवास स्थान होता था।
जमैयतखाना → बड़ा कमरा, जो सूफी सन्तों की खानकाह से जुड़ा होता था जिसमें सूफी सन्त अपने शिष्यों को उपदेश देते थे
समा → दरगाह परकी गयी संगीत सभाएँ

ऐसे मुस्लिम सन्त जिन्होने अपने-आप को सांसारिक जीवन से अलग कर लिया था और सदैव ईश्वर भक्ति में लीन रहते थे तथा सादा व सरल जीवन व्यतीत करते थे। जो सूफ नामक ड्रेस पहनते थे। उन्हें सूफी कहा जाता था।

सूफी मत में प्रारम्भ में कुछ ऐसे सन्त हुए जिनका सूफीमत के विकास में मुख्य योगदान रहा तथा जिनके द्वारा सूफी मत के नये विचारो, सिद्धान्तो व दर्शन का प्रतिपादन किया गया। ऐसे सन्तों में अल-गजाली, अल हुजवीरी का मुख्य योगदान रहा।

अल हुजवीरी → द्वारा 10 वीं शताब्दी में एक ग्रन्थ की रचना की गई जिसे काशफ-उल-महबूब के नाम से जानते हैं और यह सूफीमत पर लिखा गया पहला प्रभावी ग्रन्थ माना जाता है।

अलगजाली का मुख्य योगदान यह था - उसने ईस्लाम धर्म का गहन अध्ययन किया तथा इस्लाम के सिद्धान्तो की नये ढंग से व्याख्या की। उसने इस्लाम व सूफी मत के बीच समन्वय करके अलगाव को समाप्त किया।

बाद में सूफीमत अनेक सिलसिलो में विभाजित हो गया था। अबुल फजल ने कुल 14 सिलसिलो का उल्लेख किया है, जिनमें सूफी मत का विभाजन हुआ। जिनमें से भारत में चार सिलसिले काफी लोकप्रिय हो गए

चिश्ती सिलसिला → संस्थापक → 10वीं शताब्दी में अबु ईशाक चिश्ती द्वारा ईरान में
भारत में चिश्ती सिलसिले का आगमन 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। भारत में आने वाले प्रथम चिश्ती सन्त शेख मुइनुद्दीन चिश्ती को माना जाता है। वह मूल रूप से ईरान स्थित संजर नामक नगर के निवासी थे।

मोहम्मद गौरी के द्वारा जब 1192 में तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद अजमेर पर कब्जा कर लिया उसके पहले वे अजमेर आकर बस गये थे। गौरी द्वारा उन्हें सुल्तान-उल-हिन्द की उपाधि दी गयी। इनके गुरु का नाम उस्मान-हारून था जो जनता में गरीब नवाज के नाम से जाने जाते थे।
इनकी मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है-
i. सभी चिश्ती सन्त किसी प्रकार का सरकारी पद तथा सरकारी भेंट प्राप्त करना उचित नहीं मानते थे।
ii. व्रत / उपवास के द्वारा अपने शरीर को अधिक कष्ट देने में विश्वास था।
iii. यह एकमात्र सिलसिला था जो हिन्दु धर्म के काफी नजदीक माना जाता है। चिश्ती सन्तो ने हिन्दु धर्म की अनेक बातों को ग्रहण किया।

मोइनुद्दीन चिश्ती के बाद भारत में चिश्ती सिलसिले के प्रमुख सन्त →
हमीदुद्दीन नागौरी → यह मोइनुद्दीन चिश्ती के प्रमुख शिष्य थे तथा नागौर जाकर बस गये थे। इनकी आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित होकर गुरु मोइनुद्दीन चिश्ती के द्वारा सुल्तान-उत-तारीकिन की उपाधि दी। यही एकमात्र सूफी सन्त थे जिन्होने कृषि को अपना व्यवसाय बनाया

कुतुबद्दीन बख्तियार काकी → ये मोइनुद्दीन के शिष्य थे तथा दिल्ली में जाकर बस गये थे। यह इल्तुतमिश के गुरु थे। यही एक मात्र सूफी सन्त थे जिनकी समा के दौरान मृत्यु हुई।

शेख फरीदुद्दीन गंज-ए-शक्कर → ये कुतुबद्दीन बख्तियार के शिष्य थे तथा इनके द्वारा अजोधन में अपनी खानकाह बनाई। फरीद का मुख्य रूप से पंजाब में सूफी मत को लोकप्रिय बनाने में योगदान रहा तथा गुरुनानक पर उनका गहरा प्रभाव था। गुरु ग्रन्थ साहिब में गोविन्द सिंह ने इनकी शिक्षाओं को शामिल किया। ये सुल्तान बलबन के दामाद थे।

निजामुद्दीन औलियां → ये फरीद के शिष्य थे तथा दिल्ली में अपनी खानकाह स्थापित की। सुल्तान नासिरुद्दीन से लेकर ग्यासुद्दीन तुगलक तक सात दिल्ली सुल्तानों का समय देखा।
ये जनता में महबूब-ए-इलाही के नाम से प्रसिद्ध थे। चिश्ती सिलसिले को लोकप्रिय बनाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। इन्ही के द्वारा सूफी मत पर एक पुस्तक की रचना की गई जो रहतुल कुलुब के नाम से जानी जाती है।

अमीर खुसरो, जियाउद्दीन बरनी, अमीर हसन देहलवी ये तीनों इनके प्रमुख शिष्य थे तथा अमीर हसन देहलवी के द्वारा सूफीमत पर एक ग्रन्थ जिसे फवायद - उल - फुवैद कहा जाता है। अमीर खुसरो द्वारा अफजल - उर - फौद ग्रन्थ की रचना की।

निजामुद्दीन औलिया के दो प्रमुख शिष्य → ① नासिरुद्दीन चिराग देहलवी
② बुरहानुद्दीन गरीब

बुरहानुद्दीन गरीब मोहम्मद तुगलक के आदेश से दक्षिण भारत जाकर दौलताबाद में अपनी खानकाह स्थापित की तथा दक्षिण भारत में सूफी मत को स्थापित करने का श्रेय इन्ही को दिया जाता है।

नासिरुद्दीन चिराग देहलवी द्वारा दिल्ली में खानकाह स्थापित की। इनके द्वारा सूफीमत पर दो ग्रन्थो की रचना की गई-

① खैरुल मजलिस ② मिफ्ता - उल - आशिकीन

शेख हुसैनी गैसुदराज → ये देहलवी के शिष्य थे तथा दिल्ली पर तैमूरलंग के आक्रमण के बाद दक्षिण भारत में स्थित गुलबर्गा में बस गये। इनके द्वारा दक्षिण भारत में सूफी मत को काफी लोकप्रिय बनाया गया तथा गुलबर्गा सूफीमत का सबसे प्रमुख केन्द्र बन गया।

गैसुदराज पहले सूफी सन्त थे जिन्होंने सरकारी भेंट स्वीकार की। इन्हें बहमनी राज्य के सुल्तान ताजुद्दीन फिरोजशाह के द्वारा चार गांव जागीर में दिए गए।

हुसैनी गैसुदराज के बाद चिश्ती सिलसिले का लगभग पतन हो गया। लेकिन बाद में अकबर के समय शेख सलीम चिश्ती के नेतृत्व में चिश्ती सिलसिले को दोबारा लोकप्रियता मिली।

सोहरावर्दी सिलसिला

सोहरावर्दी मत की स्थापना 12वीं शताब्दी में बगदाद में शिहाबुद्दीन सोहरावर्दी के द्वारा की गई। किन्तु भारत में इस सिलसिले का प्रथम सन्त बहाउद्दीन जकारिया को माना जाता है। जिन्होंने मुल्तान में अपनी खानकाह स्थापित की। वह सुल्तान इल्तुतमिश के समकालीन थे। इल्तुतमिश द्वारा उन्हें शेख - उल - इस्लाम के पद पर नियुक्त किया गया।

* इस मत के सन्त सरकारी पद / भेंट प्राप्त करना अनुचित मानते थे।
* ये दीर्घ उपवास करने व शरीर को कष्ट देने में विश्वास नहीं करते थे बल्कि वे एक सन्तुलित एवं आरामदायक जीवन पसन्द करते थे।
* इनमें वंशानुगत उत्तराधिकारी की प्रथा विद्यमान थी।

बहाउद्दीन जकारिया के बाद भारत में इसके प्रमुख सन्त

1. शेख सदरुद्दीन आरिफ (मुल्तान) → ये बहाउद्दीन जकारिया के पुत्र थे जो उनकी मृत्यु के बाद मुल्तान की खानकाह के अध्यक्ष बने।
2. जलालुद्दीन सुर्ख बुखारी → जकारिया के सबसे प्रिय शिष्य माने जाते थे इनके द्वारा अपनी खानकाह उच्छ में स्थापित की। इस प्रकार भारत में सोहरावर्दी मत के मुल्तान व उच्छ दो मुख्य केन्द्र बन गए।
3. रुकनुद्दीन अबुल फथ → सदरुद्दीन आरिफ के पुत्र थे तथा अपने पिता के बाद मुल्तान के खानकाह को ग्रहण किया।
4. जलालुद्दीन मखदूम - ए - जहानिया → बुखारी के बाद उच्छ खानकाह को ग्रहण किया। मुहम्मद - बिन - तुगलक ने इन्हें शेख - उल - इस्लाम के पद पर नियुक्त किया।

शियाउद्दीन सोहरावर्दी द्वारा एक पुस्तक जिसको अवारिफ - उल - मवारिफ कहा जाता है। भारत में इनके अलावा इस मत को लोकप्रिय बनाने में जलालुद्दीन तबरीजी का भी मुख्य योगदान है। ये शियाउद्दीन के शिष्य थे। इन्होंने लखनऊ में अपनी खानकाह स्थापित की।

बाद में ये मत दो शाखाओं में विभाजित हो गया -

① बा शरा ② बे शरा

बाशरा शाखा के सन्त इस्लामी प्रथा में विश्वास करते थे, जबकि बेशरा मत वाले इस्लामी परम्परा में विश्वास नहीं था।

कादरी सिलसिला

इसकी स्थापना 12वीं शताब्दी में बगदाद में अब्दुल कादिर जिलानी के द्वारा किया गया तथा भारत में इसका आगमन 15वीं शताब्दी में आने वाले प्रथम कादिर सन्त मोहम्मद गौस को माना जाता है। इनकी खानकाह उच्छ में थी तथा सिकन्दर लोदी इनका अनुयायी था। अपनी पुत्री का विवाह इनके साथ किया।

इनके बाद भारत में इसे लोकप्रिय बनाने में नासिरुद्दीन महमूद जिलानी

का मुख्य योगदान रहा लेकिन बाद में यह सिलसिला कुछ शाखाओं में विभाजित हो गया, जिनमें मीर खैल शाखा सबसे प्रमुख थी।

* मीर खैल शाखा के संस्थापक शेख मियां मीर खैल थे, जिन्होने लाहौर में अपनी खानकाह स्थापित की। ये अकबर, जहांगीर, शाहजहां तीन मुगल सम्राटों के समकालीन थे। शाहजहां का ज्येष्ठ पुत्र दारा इनके विचारों से काफी प्रभावित था। वह इनके शिष्य मुल्ला शाह बदख्शी को अपना गुरु मानते थे। दारा के द्वारा सूफी मत पर दो ग्रन्थों की रचना की गई – ① सकीनात - उल - औलिया
② सफीनात - उल - औलिया

सकीनात औलिया में शेख मियां मीर की जीवनी लिखी हैं तथा सफीनात में कुछ प्रमुख सूफी सन्तों की जीवनियां लिखी।

नक्शबन्दी सिलसिला

* इसकी स्थापना 13वी शताब्दी में बगदाद में बहाउद्दीन नक्शबन्दी द्वारा की गई। इसी सिलसिले को ख्वाजगा के नाम से भी जानते हैं। इसके संत कट्टर इस्लाम में विश्वास करते थे। वे हजरत मोहम्मद के इस्लाम को ही मानते थे। हजरत मोहम्मद के बाद जो परिवर्तन हुए उनके वे कट्टर विरोधी थे।
* भारत में इसका आगमन 16वी शताब्दी में अकबर के समय हुआ। भारत आने वाला प्रथम सन्त ख्वाजा बाकी बिल्ला को मानते हैं।
* किन्तु भारत में इस मत को लोकप्रिय बनाने में प्रमुख योगदान शेख अहमद सरहिन्दी का माना जाता है। वह अकबर व जहांगीर के समकालीन अकबर की उदार धार्मिक नीति के कट्टर आलोचक थे। इसलिए अकबर व बाद में जहांगीर ने दो बार जैल में बन्द किया।
* शेख अहमद सरहिन्दी वहादत - उल - वुजूद के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते थे इसकी जगह वहादत उल शुहूद का नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

इनके अनुसार आत्मा व परमात्मा में समानता का सम्बन्ध नही है तथा आत्मा परमात्मा का अंश नही है। इनमें स्वामी व सेवक का संबंध है।

* सरहिन्दी स्वंय को मजतदिद व कय्यूम मानते थे। मजतदिद → इस्लाम का उद्धारक, कय्यूम → ईश्वर का पैगम्बर

* इनका सूफी मत पर लिखा गया ग्रन्थ मुक्तूबात ख्वाजी था।

सरहिन्दी के बाद भारत में इस मत के प्रमुख सन्त →

मोहम्मद मासूम → औरंगजेब के गुरु थे। ऐसा माना जाता है कि औरंगजेब द्वारा इन्ही की सलाह पर मुगल दरबार में संगीत पर प्रतिबन्ध लगाया व जजिया कर पुनः लागू किया।

शाह वली उल्ला → 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुगल सम्राट बहादुरशाह के समकालीन थे। उनका मुख्य योगदान वहादत - उल - वुजूद व शुहूद में सांमजस्य स्थापित करना था।

ख्वाजा मीर दर्द → भी 18वीं शताब्दी में हुए। वे उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे। इनके द्वारा एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसको इल्में इलाही मुहम्मदी के नाम से जाना गया। वे हजरत मुहम्मद की शिक्षाओं का पालन करना ही मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन मानते थे।

इन चार सिलसिलो के अतिरिक्त कुछ और मत भारत में विकसित हुए →

फिरदौसी सिलसिला का भारत में मुख्य केन्द्र राजगीर को माना जाता हैं, जो बिहार प्रान्त में है। इसकी स्थापना शरफुद्दीन मनेरी द्वारा की गई।
ऋषि सिलसिला की उत्पत्ति व प्रसार कश्मीर में हुआ। इसके संस्थापक शेख नुरुद्दीन को माना जाता है। इस पर शैव मत का प्रभाव था।

यद्यपि सूफी मत के विभिन्न सिलसिलो में कुछ अन्तर मिलता है, किन्तु फिर भी कुछ ऐसी मौलिक सिद्धान्त जिन पर सभी एक मत है –

i. सभी सूफी सन्त ईश्वर की एकता में विश्वास करते थे।
ii. सभी सन्तो का मानना था कि प्रेम के द्वारा ही ईश्वर प्राप्ति सम्भव। इसलिए सृष्टि के प्रत्येक जीव के प्रति दया भाव रखने पर बल देते थे तथा मांस भक्षण नहीं करते थे
iii. यद्यपि ईस्लाम में संगीत वर्जित था लेकिन ये सन्त संगीत को ईश्वर प्राप्ति का मुख्य माध्यम मानते थे। उदाहरण के लिए औलिया का यहां तक मानना था कि संगीत से हृदय को असीम शक्ति प्राप्त होती है जिससे ईश्वर के साथ साक्षात्कार हो जाता है।
iv. ये ईश्वर की प्राप्ति के लिए गुरु / पीर का निर्देशन आवश्यक मानते थे।

Date
Page

5. बलूतेदार → महाराष्ट्र में ग्रामीण दस्तकार व अन्य ग्राम सेवक बलूतेदार होते थे इनकी संख्या 12 होती थी।

भक्ति आन्दोलन

अभिप्राय → हिन्दु धर्मशास्त्रो के अनुसार मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति माना जाता है। हिन्दु धर्म शास्त्रों में मोक्ष प्राप्ति के 3 मुख्य माध्यम माने गये हैं -

I. ज्ञान   II. कर्म   III. भक्ति

* सल्तनत काल के दौरान अनेक ऐसे हिन्दु सन्त हुए जिन्होंने हिन्दु धर्म एवं समाज में सुधार के लिए जो आन्दोलन चलाया। उसमें उन्होंने पूर्ण समर्पण के भाव से ईश्वर की भक्ति पर विशेष बल दिया। इसलिए इतिहासकारो द्वारा इस सुधार आन्दोलन को भक्ति आन्दोलन की संज्ञा दी गयी

उत्पत्ति के कारण -

I. कुछ इतिहासकारो जिनमें डॉ. ताराचन्द (इनफ्लेन्स आफ इस्लाम इन इंडियन कल्चर), डॉ. युसुफ हुसैन (द ग्लेम्पस ऑफ मिडवाइल इण्डियन कल्चर) इनका मानना है कि भक्ति आन्दोलन की उत्पति हिन्दु धर्म पर इस्लाम के प्रभाव के फलस्वरूप हुई किन्तु इन इतिहासकारो के इस मत को पूरी तरह सही नहीं माना जाता क्योंकि भारत में भक्ति की परम्परा इस्लाम धर्म के आगमन से पहले ही प्रचलित रही।

II. अधिकांश इतिहासकारो का मत मानना है कि भक्ति आन्दोलन की उत्पति वास्तव में दक्षिण भारत में हुई और दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में आलवार सन्तों (वैष्णव) का मुख्य योगदान था। जिनकी कुल संख्या 12 थी।

* जिनमें प्रमुख थे - I. पेरियालवार   II. मम्मालवार   III. तिरुमल शाई   IV. कुलशेखर   V. भूतम्   VI. आंडाल (महिला) → (दक्षिण की मीरा)
* ये सभी वैष्णव मत के अनुयायी थे।
* इनमें से अधिकांश आलवार सन्त निम्न जाति के थे किन्तु इन सन्तों ने पूर्ण समर्पण और श्रद्धा के भाव से ईश्वर की भक्ति पर बल दिया तथा उनका जीवन अत्यन्त सरल, पवित्र जीवन का निर्वाह किया,

उनके फलस्वरूप इन्होंने दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन को काफी लोकप्रिय बनाया। आलवार सन्तो द्वारा ईश्वर की भक्ति के लिए तमिल भाषा में अनेक पदों की रचना की गयी थी। जिन्हें बाद में 10 वीं शताब्दी में नाथ मुनि के द्वारा एक ग्रन्थ के रूप में संकलित कर लिया गया था जिसे नालियार दिव्य प्रबन्धम् के नाम से जाना जाता है। यह भक्ति मत पर लिखा गया पहला प्रमाणिक ग्रन्थ था।

बाद में दक्षिण भारत से ही भक्ति आन्दोलन का प्रसार उत्तर भारत मे रामानन्द के द्वारा किया गया। बाद मे उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में रामानन्द के अतिरिक्त कबीर, नानक, वल्लभाचार्य, चैतन्य आदि सन्तो का मुख्य योगदान रहा है।

बाद मे जाकर भक्ति आन्दोलन सगुण और निर्गुण दो विचारधाराओं में विभाजित हो गया।

सगुण विचारधारा के सन्तो का यह मानना था कि एक ईश्वर का एक निश्चित स्वरूप होता है और उसे विष्णु, राम। कृष्ण किसी भी नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। रामानन्द, वल्लभाचार्य, चैतन्य आदि सगुण विचारधारा के प्रमुख सन्त थे।

निर्गुण विचारधारा के सन्तो का यह मानना था कि ईश्वर निर्गुण और निराकार होता है और उसे किसी भी नाम से सम्बोधित नही किया जा सकता। कबीर तथा नानक निर्गुण विचारधारा के प्रमुख सन्त थे।

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त-

1. रामानुज - जन्म 11 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में तिरुपति (AP) में हुआ। वह विष्णु के उपासक थे। रामानुज द्वारा प्रतिपादित मत विशिष्टाद्वैत था। विशिष्टाद्वैत से उनका यह अभिप्राय था कि ईश्वर सर्व शक्तिमान है और ईश्वर से ही जगत की उत्पत्ति हुयी है और वही जगत का पालन और विनाश करता है। आत्मा और जगत ईश्वर के ही विभिन्न रूप है। किन्तु आत्मा भी निरन्तर ईश्वर भक्ति द्वारा उसे प्राप्त कर सकती है।

रामानुज के द्वारा श्रीसम्प्रदाय की स्थापना की गयी।

रामानुज द्वारा संस्कृत में श्रीभाष्य की रचना की गयी।

यद्यपि रामानुज ने निम्न वर्ग के लोगो को अपना शिष्य नहीं बनाया था किन्तु पहली बार यह घोषित किया कि यदि निम्न वर्ग के लोग भी पूर्ण समर्पण और श्रद्धा के भाव से ईश्वर की भक्ति करे तो वे भी मोक्ष प्राप्त कर सकते है।

गुरु → यमुनाचार्य

2. निम्बार्क - रामानुज के समकालीन थे और वह तैलंग ब्राह्मण थे। किन्तु बाद में उत्तर भारत आकर वृंदावन में बस गये। निम्बार्क कृष्ण के उपासक थे। निम्बार्क राधा और कृष्ण के सामूहिक रूप को ही कृष्ण का वास्तविक रूप मानते थे।

निम्बार्क द्वारा प्रतिपादित मत द्वैताद्वैत था।

द्वैताद्वैत से उनका अभिप्राय था कि ईश्वर, आत्मा और जगत तीनो में एकता होते हुये भी परस्पर विभिन्नता विद्यमान है। उनमें भिन्नता इस रूप में है, क्योंकि ईश्वर के साथ-2 आत्मा और जगत का भी एक पृथक अस्तित्व है। किन्तु उनमें एकता इस रूप में विद्यमान है क्योंकि आत्मा और जगत अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर पर निर्भर करते है।

निम्बार्क द्वारा स्थापित सम्प्रदाय सनकादि सम्प्रदाय था।

राजस्थान में निम्बार्क सम्प्रदाय की पीठ अजमेर में स्थित सलेमाबाद है जिसे स्वामी परशुनाथ (परशुराम) के द्वारा स्थापित की गयी।

3. मध्वाचार्य - जन्म 1199 में कर्नाटक में स्थित बेजली नामक गांव में। मध्वाचार्य विष्णु के उपासक थे। उनके द्वारा प्रतिपादित मत द्वैतवाद। द्वैतवाद से उनका यह अभिप्राय था कि ईश्वर का आत्मा और जगत से पृथक अस्तित्व है, किन्तु ईश्वर ही आत्मा और जगत को नियंत्रित करता है। ईश्वर और आत्मा में बराबर का संबंध न होकर स्वामी और सेवक का संबंध होता है।

मध्वाचार्य द्वारा स्थापित सम्प्रदाय ब्रह्म सम्प्रदाय था।

मध्वाचार्य द्वारा संस्कृत में रचित पुस्तक - पूर्णप्रज्ञ भाष्य

4. रामानन्द - जन्म 14 वीं शताब्दी के अन्त में इलाहाबाद में हुआ किन्तु रामानन्द की अधिकांश शिक्षा बनारस में हुयी।

रामानन्द भक्ति आन्दोलन के अत्यन्त प्रगतिशील सन्त माने जाते है

जिन्होंने भक्ति आन्दोलन को लोकवादी रूप प्रदान किया। रामानन्द प्रारम्भ में रामानुज द्वारा स्थापित श्रीसम्प्रदाय के अनुयायी बने किन्तु बाद में वह श्रीसम्प्रदाय के अध्यक्ष बने। रामानन्द रामानुज द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत के मत में ही विश्वास करते थे। किन्तु वह रामानुज के विपरीत विष्णु की जगह राम के उपासक थे।

रामानन्द पहले भक्ति सन्त थे जिन्होंने संस्कृत की जगह हिन्दी को अपने उपदेशों का माध्यम बनाया। इसलिए उनके उपदेशों का आम जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा।

रामानन्द जातिगत भेदभाव के कट्टर विरोधी थे और उनका मानना था कि जन्म के आधार पर ही किसी भी व्यक्ति को मोक्ष प्राप्ति से वंचित नहीं किया जा सकता।

रामानन्द ने उच्च वर्ग के साथ-2 निम्न वर्ग के लोगों को अपना शिष्य बनाया उनके 12 प्रमुख शिष्यों में से रैदास, कबीर, सेना (नाई) निम्न जाति के थे।

रामानन्द द्वारा स्त्रियों को भी अपना शिष्य बनाया और सुरसरी तथा पद्मावती उनकी प्रमुख शिष्याएँ थी।

रामानन्द के द्वारा भक्ति मत पर हिन्दी भाषा में आनन्द भाष्य ग्रन्थ लिखा गया।

5. वल्लभाचार्य - जन्म 1479 में बनारस में हुआ। किन्तु वह मूलतः तेलंगाना के निवासी थे। कुछ समय के लिए वे विजयनगर के सम्राट कृष्णदेवराय के दरबार में भी रहे। किन्तु बाद में वृंदावन में बस गये।

बाद में वृंदावन को छोड़कर इलाहाबाद में रहने लगे। इलाहाबाद में इन्होंने जल समाधि ले ली।

वल्लभाचार्य श्रीनाथ जी के उपासक थे और श्रीनाथजी कृष्ण के बाल रूप को माना जाता है।

वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित सम्प्रदाय वल्लभ सम्प्रदाय / पुष्टिमार्गीय था। वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त शुद्धाद्वैत था। शुद्धाद्वैत से उनका अभिप्राय यह था कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और वही जगत की उत्पत्ति और विनाश करता है। जगत ही ईश्वर का प्रत्यक्ष रूप है। जगत आत्मा और तत्वों से मिलकर बना है। उन्होंने आत्मा की परमात्मा के साथ एकता पर विशेष बल दिया।

वल्लभाचार्य का U.P., राजस्थान, गुजरात में भक्ति आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में मुख्य योगदान रहा।

वल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ का भी वल्लभ सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने में मुख्य योगदान रहा था। उनकी भक्ति भाव से प्रभावित होकर अकबर ने उन्हें जतीपुरा का गाँव धार्मिक जागीर के रूप में दिया गया।

अष्टछाप → वल्लभसम्प्रदाय में 8 ऐसे सन्त कवि हुए जिन्हें अष्टछाप के नाम से जाना जाता है। i. कुम्भनदास ii. कृष्णदास iii. परमानन्ददास iv. सूरदास v. चतुर्भजदास vi. गोविन्ददास vii. नन्ददास viii. छीतस्वामी

(प्रथम 4 वल्लभाचार्य अन्तिम 4 विट्ठलनाथ के अनुयायी। कुल - 84 थे)

6. चैतन्य → जन्म 1486 में नदिया / नवद्वीप (बंगाल) में हुआ।

बचपन का नाम - विश्वम्भर

उनका नाम गौरांग भी था। सम्प्रदाय - चैतन्य सम्प्रदाय

गुरु - ईश्वर पुरी (गौड़ीय परम्परा पर)

ईश्वरपुरी ने ही उनमें कृष्ण के प्रति भक्ति का भाव जागृत किया। किन्तु चैतन्य बाद में स्थायी रूप से जगन्नाथ पुरी में बस गये। बंगाल तथा उड़ीसा में भक्ति आन्दोलन को लोकप्रिय बनाया।

उन्होंने बांग्ला भाषा को उपदेशों का माध्यम बनाया। चैतन्य का भक्ति आन्दोलन का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने कीर्तन और नृत्य को ईश्वर की प्राप्ति का मुख्य माध्यम माना क्योंकि उनका मानना था कि श्रद्धा और भक्ति के साथ-2 कीर्तन, नृत्य के द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि व्यक्ति का परमात्मा के साथ साक्षात्कार हो जाता है।

चैतन्य ने बिना किसी जातिगत और धर्म के भेदभाव के निम्न वर्ण के साथ-2 मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाया था और उनका प्रमुख शिष्य हरिदास इस्लाम का अनुयायी था।

7. कबीर → जन्म 1440 में बनारस में माना जाता है। कबीर प्रसिद्ध भक्ति सन्त रामानन्द के शिष्य थे। किन्तु रामानन्द के विपरीत

गोपालदास - सुखनिधान ग्रन्थ
बीजक का सकलन भागोदास ने किया

निर्गुण परम्परा के सन्त थे। (शिष्यों द्वारा पदों को संकलित किया जिसे ब्रासग्रन्थ कहते है
कबीर का धार्मिक कर्मकाण्डो और आडम्बरो मे विश्वास नहीं था। उन्होंने न केवल हिन्दु धर्म बल्कि इस्लाम धर्म में भी व्याप्त धार्मिक आडम्बरो की भी कटु आलोचना की थी।

कबीर ~~अ भावना~~ पहले भक्ति सन्त थे जिन्होंने ईश्वर की भक्ति के लिए गृहस्थ जीवन का परित्याग आवश्यक नहीं माना।

कबीर ईश्वर की भक्ति के लिए गुरु का निर्देश आवश्यक मानते थे बल्कि वह गुरु का दर्जा ईश्वर से भी बड़ा मानते है।

कबीर पर सूफी मत का गहरा प्रभाव था और उन्हे फारसी ग्रन्थ मिरातुल असर में फिरदौसी सिलसिले का अनुयायी माना गया है।

तीन प्रमुख शिष्य → गोपालदास, धर्मदास, भागोदास

8. नानक → जन्म 1469 में तलवण्डी में हुआ। (पाकिस्तान के शेखुपुरा में) इसे अब ननकाना साहिब कहते है। नानक भी कबीर की भांति निर्गुण सन्त थे। नानक पर भी सूफी मत का गहरा प्रभाव था तथा उन पर चिश्ती सिलसिले के प्रमुख सन्त शेख फरीद का गहरा प्रभाव था।

शिक्षाएं संकलित - गुरुग्रन्थ साहिब

पेशवाओ की शक्ति का उत्थान तथा मराठा शक्ति के उत्थान में पेशवाओं का योगदान

1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों में उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष हुआ (आजम एवं मुअज्जम)। आजम उस समय दक्षिण भारत में औरंगजेब के पास मौजूद था। अतः जब आजम आगरा पर अधिकार करने के उद्देश्य से उत्तर भारत के लिए रवाना हुआ तब उसने छत्रपति शम्भाजी के पुत्र शाहू को मुगल कैद से रिहा करके इस उद्देश्य से महाराष्ट्र भेज दिया गया था कि वह छत्रपति के पद के लिए अपना दावा प्रस्तुत करेगा और ताराबाई अपने पुत्र छत्रपति शिवाजी II के होते हुए शाहू को छत्रपति स्वीकार नहीं करेगी।

शाहू तथा ताराबाई के बीच सत्ता के लिए जो संघर्ष होगा उसके कारण मराठे गृहयुद्ध में उलझ जायेंगे और वे दक्षिण भारत में स्थित मुगल प्रान्तों पर आक्रमण नहीं कर सकेंगे।

अध्याय–23

अर्थव्यवस्था : कृषि, उद्योग, व्यापार, बैंकिंग और नगरीय केन्द्र

आलौच्य काल की अर्थव्यवस्था के विषय में हमें तत्कालीन फारसी और अरबी ग्रन्थों में बहुत ही कम जानकारी मिलती है। किन्तु उपयोगी सामग्री उस काल के संस्कृत तथा क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य में उपलब्ध है। कुछ विदेशी पर्यटकों के विवरणों से भी उस समय में हमारे देश की आर्थिक स्थिति का पता चलता है। मुसलमानों ने भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने के बाद यहाँ की सम्पन्न अर्थव्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। फलस्वरूप 1526 ई. से 1556 ई. तक यहाँ परम्परागत अर्थव्यवस्था प्रचलित रही। आज की भाँति उस समय भी भारत एक कृषि प्रधान देश था। खेती भी प्राचीन ढंग से की जाती थी। हल, कसी, खुरपी, पटेला हंसिया, बैलों की जोड़ी अन्नोपार्जन के काम में लिए जाते थे। सिंचाई के लिए नहरें बहुत कम थी। खेती वर्षा पर निर्भर थी। वर्षा के अभाव में जन–जीवन संतप्त हो जाता था। अन्यथा जीवन बड़ा सरल, परिवर्तनशून्य तथा अनुन्नतिशील था। किन्तु ग्राम समुदाय अपने में पूर्ण थे। ग्रामवासियों की आवश्यकताएँ गाँव में ही पूर्ण हो जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति का एक नियत कार्य था। किसान खेत जोतता, बोता तथा काटता था। स्त्रियाँ घर का काम–काज करती थी तथा पशुओं की सेवा करती थी। बढ़ई, लौहार औजार बनाते थे। किसान उन्हें भोजन देता था। मोची जूते बनाते थे। धोबी, नाई, चरवाहा, ग्वाला, भंगी, पुजारी, ज्योतिषी, वैद्य आदि सभी अपने–अपने निश्चित कार्य करते थे। खेती के साथ–साथ कुछ ग्रामीण उद्योग–धन्धे भी पनपते थे, जैसे–रस्सी और टोकरी बनाना, शक्कर गुड़, इत्र, तेल आदि बनाना। गाँव में छोटे–छोटे बाजार लगते थे, जहाँ कपड़ा, मिठाइयाँ तथा अन्य दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ बिक्री के लिए आती थी। बाजार में कभी–कभी एक आदमी सिक्कों की ढेरी लगाकर बैठता था, जिसका काम एक सिक्के के बदले दूसरे सिक्के देना था।

उपज–यह बताना कठिन है कि उन दिनों खेती का क्षेत्रफल कितना होता था। मुख्य फसलों में गेहूँ, बाजरा, मक्का, चावल, मटर, तिलहन, गन्ना, रुई आदि थी। फलों में आम, अंगूर, केले, खरबूजा, अंजीर, नीबू, खिरनी, जामुन आदि थे। औषधिक जड़ी–बूटियाँ, मसाले और सुगन्धित काष्ठ काफी मात्रा में पैदा किये जाते थे तथा भारत के बाहर उनका विक्रय होता था। अनाज भण्डारण करने का सामान्य तरीका गड्ढों या खत्तियों में रखने का था जिससे बहुत

समय तक अनाज सुरक्षित रखा जा सकता था। दिल्ली के शासकों ने भारतीय फलों की उपज में
वृद्धि और किस्म में तरक्की करने के प्रयास किये थे। उन्होंने बागवानी को भी प्रोत्साहन दिया।
फीरोजशाह तुगलक ने तो दिल्ली क्षेत्र में 1200 बाग लगवाये थे। प्रथम मुगल सम्राट बाबर को
बागों में विशेष रुचि थी। उसने अनेक बागों का निर्माण ईरानी शैली के अनुसार करवाया, जिसमें
कृत्रिम झरने तथा ढलुआ जमीन पर चबूतरे आदि होते थे।

प्रौद्योगिकी-प्राचीनकाल से भारत में जो प्रौद्योगिकी का विकास आरम्भ हुआ, वह
मध्यकाल में भी चलता रहा। मध्यकाल में भी भूमि की कमी नहीं थी तथा अनेक क्षेत्रों में दो
अथवा तीन फसलें हो जाती थीं, बशर्ते कि सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध हो। यद्यपि
मध्यकालीन शासक सिंचाई के साधनों पर पर्याप्त ध्यान देते थे, फिर भी अधिकांश खेती वर्षा पर
निर्भर करती थी। मध्ययुगीन शासकों ने उन्नत प्रौद्योगिकी की सहायता से बांध बनवाये और बड़े-
बड़े जलाशयों से सिंचाई के लिए नहरें निकाली गई। सिंचाई प्रौद्योगिकी के तीन पक्ष थे-नहरों की
खुदाई, कुओं और नदियों से पानी को खींचकर खेतों तक पहुँचाने के लिए नालियाँ बनवाना तथा
पुराने जल-स्रोतों की मरम्मत कर उपयोगी बनाना। मुसलमानों के आने के बाद मुस्लिम शासकों
ने यहाँ मध्य एशिया में पैदा किये जाने वाली फसलें भारत में विकसित कीं। उन्होंने नये फल-
फूलों को पैदा करने की तकनीकी विकसित की। इसके लिए खेती के कुछ नये उपकरणों का भी
विकास किया गया। इन नये उपकरणों की सहायता से आलू की फसल तैयार की जाने लगी,
अँगूरों की उपज करवाई तथा भारत में पहली बार तरबूज पैदा किये गये। यद्यपि खेत जोतने के
लिए हल का ही प्रयोग किया जाता था, लेकिन अब हल के नीचे लोहे के तीखे फलक लगाये
जाने लगे जिससे भूमि को अधिक गहराई से खोदा जा सके। फसल काटने के लिए लोहे की
दरांती का प्रयोग किया गया। तैयार फसल को खलिहान में उसे साफ करने तथा उससे भूसा
निकालने की परम्परागत पद्धति ही काम में ली जाती थी। इस विवरण से स्पष्ट है कि कुछ नई
फसलें पैदा करने के अलावा खेती की प्रौद्योगिकी में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई थी।

आलोच्यकाल में युद्ध प्रौद्योगिकी का निरन्तर विकास होता गया। अब सैनिकों के प्रशिक्षण
की व्यवस्था की गई। मुसलमानों ने युद्धों में तोपें और बन्दूकों का प्रयोग आरम्भ किया। अतः
भारत में तोपें और बारूद बनाने की प्रौद्योगिकी का विकास हुआ। सर्वप्रथम मुगल सम्राट बाबर
ने युद्ध में तुलुगमा पद्धति का प्रयोग किया, जो अधिक कारगर सिद्ध हुई। फलस्वरूप अब शत्रु
सेना को घेरने की नई रणनीतियों का प्रयोग किया जाने लगा। अब सैनिकों की सुरक्षा के लिए
धातु-निर्मित कवचों का प्रयोग अत्यधिक बढ़ गया। परन्तु इस काल में अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण
की प्रौद्योगिकी में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

इस युग में वस्त्र-प्रौद्योगिकी, विशेषकर सूती कपड़ा बुनने की प्रौद्योगिकी का अभूतपूर्व
विकास हुआ। सूती और रेशमी दोनों तरह के कपड़े बुनने की उन्नत तकनीक विकसित हुई।
फलस्वरूप आलौच्यकाल में वस्त्र उद्योग भारत का सबसे बड़ा उद्योग बन गया। नये प्रकार के
कपड़े तैयार होने लगे। ढाका की बनी हुई मलमल तो पूरे विश्व में अपनी बारीकी के लिए प्रसिद्ध
हो चुकी थी। ढाका में ऐसे करघे बनाये गये जिनसे बना हुआ कपड़ा अधिक कीमत का होता
था। सुल्तानों और सम्राटों के वस्त्रों के लिए लाहौर और लखनऊ में 'चीकन' का वस्त्र तैयार किया

जाता था। कालीकट के सिरोंज का कपड़ा तो अत्यन्त बारीक होता था। रेशमी वस्त्रों पर सोने-
चाँदी के तारों से कसीदाकारी की उन्नत तकनीक भी विकसित हुई। सूती और रेशमी वस्त्रों के
अतिरिक्त ऊनी वस्त्र-प्रौद्योगिकी का भी विकास हुआ। कश्मीर में ऊनी शाल बहुत ही मुलायम
बनाये जाते थे। वस्त्रों की रंगाई और छपाई प्रौद्योगिकी भी विकसित हुई। अनेक रसायनों से भाँति-
भाँति के रंग तैयार किये जाते थे। सूती वस्त्र रंगने में, विशेष रूप से बांधनू की रंगाई की प्रौद्योगिकी
अत्यन्त प्रसिद्ध थी।

इस युग में धातु-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई। कांसे, पीतल, लोहे, सोना और
चाँदी के बर्तन, आभूषण, मूर्तियाँ और अस्त्र-शस्त्र बनाने की प्रौद्योगिकी में काफी विकास हुआ।
मुगल सम्राट आभूषणों के बड़े शौकीन थे, अतः आभूषण बनाने वाले शिल्पकार नई-नई
डिजाइन के आभूषण तैयार करते थे जिसमें शिल्पकारों की तकनीक-कुशलता स्पष्ट दिखाई
देती थी। पीतल और कांसे के बर्तन बनाने की प्रौद्योगिकी अत्यन्त विकसित हुई। धातु को गर्म
करके उसे पीट-पीटकर चदरें बनाई जाती थीं और फिर उन चदरों से तश्तरियाँ, थालियाँ,
कटोरियाँ आदि बनाई जाती थीं। इस काल में पीतल की सुन्दर कलात्मक सुराहियाँ बनाने की
तकनीक भी विकसित हुई। धातु के बर्तनों पर सुन्दर नक्काशी का काम होता था। लोहे को शुद्ध
करने की प्रौद्योगिकी से भारतवासी परिचित थे तथा शुद्ध लोहे व सर्वोत्तम इस्पात से तलवारें व
बरछे बनाये जाते थे। धातु-प्रौद्योगिकी के अलावा काष्ठ-प्रौद्योगिकी भी काफी विकसित हुई।
यद्यपि इस समय तक युद्धों में रथों का प्रयोग कम हो गया था, फिर भी काष्ठ-प्रौद्योगिकी से रथों
का निर्माण होता रहा। यद्यपि इस समय तक नौ-सेना विकसित नहीं हुई थी, फिर भी यत्र-तत्र
जहाजों का निर्माण होने लगा। व्यापार-वाणिज्य के विकास के साथ ही नावें बनाने की उच्च
तकनीक विकसित हुई। माल ढोने के लिए मालवाहक जहाजों का भी निर्माण किया जाने लगा।
इनके अलावा लकड़ी का सुन्दर सजावटी सामान भी बनाने की तकनीक विकसित हुई।

यद्यपि आलोच्यकाल में कागज-प्रौद्योगिकी सुविकसित नहीं थी, फिर भी दिल्ली में शमी
तथा सीरियन कागज बनाये जाने का उल्लेख मिलता है। बहुसंख्यक हस्तलेखों से भी कागज की
उपलब्धता प्रमाणित होती है। लाहौर तथा आगरा के शाही कारखानों में कागज तैयार किया जाता
था। विभिन्न प्रयोगों के लिए विभिन्न प्रकार के कागज बनाने की प्रौद्योगिकी भी विकसित हुई,
जैसे शाही फरमानों के लिए शोभायुक्त कागज तथा व्यापारियों और दलालों के लिए टिकाऊ
प्रकार का कागज बनाया जाता था। जिल्दसाजी के लिए मजबूत कागज बनाया जाता था। इस
काल में चमड़े से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाने की तकनीक का भी विकास हुआ। घोड़ों के
लिए काठी, लगाम, तलवार के लिए म्यान, जूते, पानी के मशक आदि अत्यधिक मात्रा में बनाये
जाते थे। गुजरात में चमड़े की वस्तुएँ बड़ी मात्रा में बनती थी, जिनका अरब देशों में निर्यात किया
जाता था। इस काल में गन्ने से चीनी बनाने की तकनीक भी विकसित हुई। लाहौर, दिल्ली,
आगरा आदि स्थान चीनी-उद्योग के प्रसिद्ध केन्द्र थे।

आलोच्यकाल में भवन निर्माण, नगर-नियोजन एवं मूर्तियाँ बनाने की प्रौद्योगिकी भी
काफी विकसित हुई। भवन निर्माण प्रौद्योगिकी में इस्लामिक शैली का प्रयोग किया गया। अधिकतर
इमारतें लाल पत्थर की बनाई गई थीं। बड़े-बड़े पत्थरों को काटकर उन्हें उचित आकार देना

तथा उन्हें आकर्षक बनाने के लिए पत्थरों पर विभिन्न आकृतियाँ ऊकेरना शिल्पकारों की उच्च तकनीक का प्रमाण है। दिल्ली का लाल किला और फतेपुर सीकरी की इमारतें इस युग की उच्च प्रौद्योगिकी के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। कुछ मुस्लिम शासकों तथा उनकी बेगमों के मकबरे संगमरमर पत्थर के बनाये गये थे। संगमरमर के पत्थरों पर की गई नक्काशी देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों पत्थर को कैंची से काटकर नक्काशी की गई हो। मुमताज महल का मकबरा ताजमहल, आबू का देलवाड़ा मन्दिर और फतेपुर सीकरी में शेख सलीम चिश्ती का मकबरा, संगमरमर के भवन-निर्माण प्रौद्योगिकी के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। यद्यपि मुस्लिम शासक मूर्ति बनाना इस्लाम धर्म के विरुद्ध समझते थे, फिर भी विभिन्न प्रान्तों में देव प्रतिमाओं का निर्माण होता रहा। संगमरमर के बड़े-बड़े शिलाखण्डों को उचित आकार में काटकर अपनी छैनी और हथोड़े से प्रतिमा-निर्माण की प्रौद्योगिकी का भी विकास हुआ। हाथी दाँत के सुन्दर खिलौने और कंगन बनाने की तकनीक विशेष रूप से विकसित हुई। हाथी दाँत से सुन्दर कलाकृतियाँ बनाने की तकनीक का विकास आगरा में विशेष रूप से हुआ।

चूँकि इस युग में अफीम का चलन बढ़ने लगा था, इसलिए अफीम के पौधे के फूलों से रस निकालकर अफीम तैयार करने की तकनीक भी विकसित हुई। कश्मीर में तथा कुछ अन्य स्थानों पर तिल तथा अरण्डी के बीज से तेल निकालने की तकनीक भी विकसित हुई। बंगाल और उड़ीसा में पैदा होने वाली लाख से स्त्रियों के लिए चूड़ियाँ, कंगन-कड़े आदि बनाये जाने लगे। इन कंगनों और कड़ों पर रंगीन कांच के टुकड़े लगाकर उन्हें आकर्षक बनाने की तकनीक मुख्य रूप से गुजरात में अधिक विकसित थी। बेंत और बांस के वृक्षों से बांस आदि को छीलकर टोकरी, चटाइयाँ आदि बनाई जाती थीं। मुसलमानों ने यहाँ शतरंज का खेल प्रचलित किया था, अतः अब यहाँ शतरंज के पट्टे भी बनाये जाने लगे। शतरंज के मुहरे भी लकड़ी को काट-छाँटकर बनाने की उच्च तकनीक भी इसी युग में विकसित हुई। लकड़ी व हाथी दाँत से चौपड़ की गोटियाँ बहुत ही सुन्दर बनाई जाने लगीं। इन सभी वस्तुओं को बनाने वाले शिल्पकार उस समय प्रचलित तकनीक से परिचित ही नहीं थे, बल्कि प्रचलित तकनीक का विकास भी कर रहे थे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आलोच्यकाल में खेती, वस्त्र, मकान, नगर-नियोजन, धातु-उद्योग, काष्ठ उद्योग, हाथी दाँत उद्योग आदि क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का पर्याप्त विकास हुआ। यह विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही, जिसका परिणाम हमें आज देखने को मिल रहा है।

कृषि

मध्यकालीन भारत में भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध में विद्वानों ने अलग-अलग मत व्यक्त किये हैं। समकालीन यूरोपियन यात्री सम्राट को भूमि का स्वामी मानते हैं। लेकिन डॉ. इरफान हबीब का मत है कि भूमि का स्वामी न तो सम्राट था और न किसान। कुछ परिस्थितियों में उसका अधिकार मिलकियत का था अर्थात् सिद्धान्ततः भूमि का स्वामी सम्राट था, परन्तु व्यवहारिक रूप से भूमि पर काश्त करने वाले जब तक भू-लगान देते रहते थे, तब तक वे भूमि के मालिक बने रहते थे। सामान्य रूप से किसान न तो भूमि को बेच सकता था और न उससे अलग हो सकता

था। डॉ. नोमान अहमद सिद्दीकी का कहना है कि कृषकों को जमीन बेचने और बन्धक रखने जैसे अधिकार नहीं थे। फिर भी कृषकों का एक वर्ग जिसे मौरुसी कहा जाता था, इस प्रकार के अधिकारों का दावा करता था, जिन्हें दखलदारी का अधिकार (ओक्यूपेंसी राइट्स) कहा जा सकता है। सामान्यतः उन्हें बेदखल नहीं किया जा सकता था और उनके वंशजों का उनके खेतों पर उत्तराधिकार होता था। साथ ही ऐसे किसान भी थे जो जमींदारों की अनुमति से खेत जोतते थे और उन्हें जमींदार इच्छानुसार कभी भी बेदखल कर सकते थे। वस्तुतः कृषकों का वर्गीकरण कई स्तरों एवं श्रेणियों में हो सकता था। किसान यदि अपनी भूमि को छोड़कर अन्यत्र चला जाता तो सरकारी कर्मचारियों को आदेश थे कि उन्हें समझा-बुझाकर वापस ले आयें। औरंगजेब के काल में बहुत-से किसान ताल कोंकण से भागकर जमींदार के पास चले गये। उनको जबरदस्ती वापस लाकर छः सौ गाँवों में बसाया गया था।

मुगलकाल में भूमि को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-एक खालसा भूमि और दूसरी गैर-खालसा (जागीर, साराण आदि)। अकबर के शासनकाल में जागीरदार अर्द्ध-स्वतन्त्र शासक थे। सम्राट का उनके आन्तरिक शासन में अधिकार नहीं था और वह उसमें हस्तक्षेप भी नहीं करता था। खालसा भूमि सीधी सम्राट के नियंत्रण में थी। मालगुजारी निश्चित करने के लिए भूमि को सोलज, परती, चाचर व बंजर में बाँटा गया था। यह वर्गीकरण भूमि को जोतने पर आधारित था। पोलज वह भूमि थी जिसे प्रत्येक वर्ष जोता जाता था। परती को कुछ समय के लिए बिना जोते ही छोड़ दिया जाता था। चाचर भूमि तीन-तीन, चार-चार साल के लिए अनजुती छोड़ दी जाती थी और बंजर भूमि वह थी जिस पर पाँच साल से अधिक समय तक कोई उपज नहीं होती थी। प्रथम दो प्रकार की भूमियों (पोलज तथा परती) को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया-अच्छी, मध्यम और खराब। इन तीन श्रेणियों की प्रति बीघा औसत उपज को पोलज अथवा परती के प्रति बीघा की सामान्य उपज मान लिया गया था। इन दोनों श्रेणियों की भूमि में विशेष अन्तर नहीं था, क्योंकि जिस वर्ष भी परती भूमि पर खेती की जाती थी, उसकी उपज पोलज के समान ही हुआ करती थी। चाचर भूमि में जब पहले साल खेती होती थी तो निश्चित दर का 2/5 भाग लिया जाता था और पाँच साल खेती होने के पश्चात् उस पर सामान्य दर से मालगुजारी वसूल की जाती थी। इसी प्रकार बंजर भूमि पर भी पाँच साल के बाद पूरी दर से मालगुजारी वसूल की जाती थी।

भारत प्रारम्भ से ही कृषि प्रधान देश रहा है। खेती प्राचीन ढंग से ही की जाती थी। हल, कसी, खुरपी, पटेला, हंसिया, बैलों की जोड़ी अन्नोपार्जन के काम में लाये जाते थे। सिंचाई के लिए नहरें बहुत ही कम थी। खेती वर्षा पर निर्भर थी। अतः भगवान इन्द्रदेव की कृपा के सभी अभिलाषी थे। वर्षा के अभाव में प्रजा संतप्त हो जाती थी। अन्यथा जीवन बड़ा सरल, परिवर्तनशून्य तथा अनुन्नतिशील था। किन्तु ग्राम समुदाय अपने में पूर्ण थे। ग्रामवासियों की आवश्यकताएँ गाँव में ही पूर्ण हो जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति अपना नियत कार्य करता था। किसान खेत जोतता, बोता तथा काटता था। उस समय खेतों का क्षेत्रफल कितना होता था, यह बताना बहुत मुश्किल है। मुख्य फसलों में गेहूँ, बाजरा, मक्का, चावल, मटर, तिलहन, गन्ना, रुई आदि थी। फलों में आम, अंगूर, अनार, केले, खरबूजा, अंजीर, नीबू, खिरनी, जामुन आदि थे। औषधिक जड़ी-

इसलिए शोषण होने पर भी वह खेती करता रहता था, जब तक कि शोषण की सीमा उसकी सहनशीलता की भावनाओं का गला न घोंट दें। ऐसी स्थिति तब आती थी जब भू-राजस्व की दर प्रतिवर्ष बढ़ते-बढ़ते इतनी हो जाती थी कि किसान का जीना भी दूभर हो जाता था।

उद्योग-धन्धे

गाँवों तथा शहरों में कारीगर तथा शिल्पी अपने पुराने पेशे को कायम रखे हुए थे। उनके औजार भी वही थे और उसमें कोई विशेष तकनीकी विकास नहीं हुआ था। उस समय में बड़े पैमाने पर किसी उद्योग का विकास नहीं हुआ था। अधिकांश उद्योग स्थानीय रूप में थे जो पिता से पुत्र को कई पीढ़ियों तक हस्तान्तरित किये जाते रहते थे। इस प्रकार देश के कई शहर और क्षेत्र अपने विशिष्ट और श्रेष्ठ उत्पादों के लिए मशहूर हो गये थे। इसके अतिरिक्त कई शाही कारखाने भी थे जो फारस देश के ढंग के अनुसार दिल्ली के शासकों द्वारा स्थापित किये गये थे। इन कारखानों में शाही तथा दरबारी लोगों की जरूरत की चीजें बनाई जाती थीं। इनमें सुनार, किमखाव या रेशम तैयार करने वाले, कसीदाकारी करने वाले, चित्रकार, दर्जी, मलमल तथा पगड़ी बनाने वाले आदि अनेक प्रकार के कारीगर होते थे, जो साथ मिलकर काम करते थे। प्रान्तों में भी स्थानीय माँग के अनुसार विभिन्न प्रकार की चीजों को बनाने के लिए कारखाने स्थापित किये गये थे। यहाँ प्रत्येक उधोग का विस्तृत विवरण देना सम्भव नहीं है, केवल कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है–

वस्त्र उद्योग–यह प्राचीन उद्योग था तथा आलोच्य काल में सबसे बड़ा उद्योग था, जिसका विस्तार सम्पूर्ण देश में हुआ। इसके मुख्य केन्द्र बंगाल, गुजरात, बनारस, उड़ीसा और मालवा थे। सूरत, कांवे, पटना, बुरहानपुर और बाद में दिल्ली, आगरा, लाहौर, मुल्तान, ठट्ठा जैसे मुख्य शहर भी विशेष प्रकार के कपड़े तैयार करने के लिए प्रसिद्ध हो गये थे। नये प्रकार के कपड़ों में बैरामी, शानबफ, शीरीबफ और कत्तने रुमी की शुरुआत हो चुकी थी। ढाका में बनी मलमल पूरे विश्व में अपनी बारीकी के लिए प्रसिद्ध हो चुकी थी। इसकी श्रेष्ठता को देखकर विदेशी यात्री भी चकित हो जाते थे। सोनार गाँव में अति उत्तम प्रकार की मलमल तैयार की जाती थी, जिसके एक टुकड़े की कीमत चार हजार रुपये तक होती थी। उत्तम प्रकार की मलमल को बड़े सुन्दर नाम दिये गये थे, जैसे मलमल खास (बादशाह के लिए मलमल), सरकार-ए-आली (नवाबों के लिए निमित्त), आब-ए-रमान (जल-प्रवाह), शबनम (ओस) आदि। अपने जटिल डिजाइनों के कारण ढाका में करघे पर तैयार किये गये कपड़े सबसे अधिक कीमत के होते थे। लाहौर तथा लखनऊ की 'चीकन' भी बहुत प्रसिद्ध थी। समाना और सुल्तानपुर उत्तम वस्त्रों के लिए विख्यात थे। जौनपुर तो आज भी उत्तम प्रकार की दरी तैयार करने के लिए विख्यात है। कालीकट के सिरोंज के कपड़े तो इतने बारीक होते थे कि उसे पहनने पर भी आदमी नंगा दिखता था।

कासिम बाजार, माल्दा, मुर्शिदाबाद, पटना, काश्मीर और बनारस रेशम उद्योग के मुख्य केन्द्र थे। यद्यपि गुजरात में रेशम का उत्पादन नहीं होता था, किन्तु वहाँ रेशम बुनाई का अच्छा काम होता था। रेशम से तथा रेशमी, सुनहले सोने तथा चाँदी मढे सूतों से सूरत में दरियाँ तैयार

होती थी। गुजरात भी किमखाब, बदला कुर्त्ता, कसीदाकारी के वस्त्र तथा किनारी (चाँदीतार) आदि के लिए प्रसिद्ध था। असम भी रेशमी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था। दक्षिण में कोयंबतूर के समीप रेशम उत्पादन का एक बड़ा केन्द्र था।

देश में काबुल, काश्मीर तथा पश्चिमी राजस्थान में ऊन तैयार करने के प्रसिद्ध केन्द्र थे। किन्तु उत्तम प्रकार की ऊन तिब्बत से आती थी। काश्मीर के शाल बहुत मुलायम तथा गर्म होते थे। काश्मीर केवल शाल बनाने का केन्द्र नहीं था, अपितु ऊनी वस्त्र, कम्बल आदि तैयार करने का भी प्रसिद्ध केन्द्र था। लाहौर, आगरा व पटना शाल बनाने के अन्य केन्द्र थे। ऊनी वस्त्र उद्योग के अन्य केन्द्र बुरहानपुर, जौनपुर तथा अमृतसर थे।

आलौच्य काल में रंगाई उद्योग भी उल्लेखनीय है। लाहौर और उसके आसपास नील का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन होता था। दिल्ली सूती वस्त्र रंगने में, विशेष रूप से बांधनू की रंगाई के काम के लिए, प्रसिद्ध था। बैना तथा समीपवर्ती क्षेत्रों का रंगाई का काम अति उत्तम माना जाता था। दूसरे दर्जे की उत्तम रंगाई गुजरात में सरखेज तथा गोलकुण्डा में की जाती थी। रंगाई के अन्य महत्त्वपूर्ण केन्द्र आगरा, लखनऊ, अहमदाबाद, फरुखाबाद तथा मछलीपट्टम थे। बंगाल में ढाका तथा कासिम बाजार मुख्य थे।

धातु उद्योग–भारतीय–लोहा, पीतल, चाँदी, जस्ता, अभ्रक आदि विभिन्न धातुओं के उपयोग को भलीभाँति जानते थे। धारिया, तलवारें, हथियार तथा बरछों को बनाने में लोहे का उपयोग मुख्य रूप से किया जाता था। भारतवासी लोहे को शुद्ध करने की प्रक्रिया से अच्छी तरह परिचित थे। समकालीन संस्कृत साहित्य में भिन्न प्रकार के लोहे के गुणों का विवरण मिलता है। सर्वोत्तम इस्पात का उपयोग तलवारों और बरछों के निर्माण में होता था, जिनकी अरब तथा फारस देशों में बड़ी माँग थी। श्रीनगर, लाहौर, आगरा, मुल्तान, वजीराबाद, भड़ौच, ढाका तथा चटगाँव ऐसे केन्द्र थे जहाँ नावें, रथ तथा लकड़ी की अन्य वस्तुएँ बनाई जाती थी। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में अधिकांशत: नावें प्रयोग में लाई जाती थी। मुगलों के पास नियमित नौशक्ति नहीं थी, अत: जहाजों के निर्माण को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला, फिर भी लाहौर, वजीराबाद, कोरोमण्डल तट पर मडापल्लम तथा नसीपुर में मालवाहक जहाजों का निर्माण और उनकी मरम्मत होती थी।

कागज उद्योग–यद्यपि आलौच्य काल में कागज के प्रयोग का उल्लेख मिलता है तथापि यह उद्योग सुविकसित नहीं था। अमीर खुसरो ने कोरे तथा रेशम की भाँति शमी तथा सीरियन कागज के दिल्ली में बनाये जाने का उल्लेख किया है। चीनी यात्री माहुआन, जिसने सुल्तान गियासुद्दीन आजमशाह के राज्यकाल में बंगाल का भ्रमण किया था, ने वृक्ष की छाल से श्वेत चमकीले कागज के उत्पादन का उल्लेख किया है। बहुसंख्यक हस्तलेखों से भी कागज की उपलब्धता का प्रमाण मिलता है। इसके मुख्य उद्योग पटना, दिल्ली राजगीर, शहजादपुर तथा सियालकोट थे। सियालकोट मानसिंघी, खरपुरी, कागजों के लिए प्रसिद्ध था। मानसिंघी कागज को इसकी रेशमी बनावट, श्वेत रंग तथा टिकाऊ होने से बहुत पसन्द किया जाता था। लाहौर तथा आगरा में स्थापित शाही कारखाने भी कागज का उत्पादन करते थे। परन्तु सर्वोत्तम कागज काश्मीर में उपलब्ध होता था। विभिन्न प्रकार के कागज विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाया

जाता था-शोभायुक्त कागज का उपयोग शाही फरमानों के लिए होता था, टिकाऊ प्रकार के कागज का प्रयोग व्यापारियों तथा दलालों के लेखा के निमित्त तथा बुद्धिजीवियों द्वारा होता था और जिल्दसाजी के लिए मोटे तथा मजबूत कागज का प्रयोग होता था। सामान्यतः प्रान्तों तथा बड़े नगरों के बाहर कागज बनाने का छोटा गाँव होता था, जिसे कागजी मोहल्ला अथवा कागजीपुर कहा जाता था। फरुखाबाद में तो अभी भी कागजी बाजार नाम की एक गली है।

चमड़ा उद्योग-आलोच्यकाल में चमड़े के विभिन्न प्रकार के सामान की, विशेषतः घोड़ों के लिए काठी तथा लगाम, तलवार के लिए म्यान, जूते, पानी की मशक आदि की अत्यधिक माँग थी। बंगाल में चमड़े का उपयोग विदेशों को निर्यात की जाने वाली चीनी की पैकिंग में किया जाता था। सिन्ध में बने चमड़े के सामान उत्तम माने जाते थे। दिल्ली में भी एक सम्पन्न चमड़ा उद्योग स्थापित था। कैंबे, चप्पलों के लिए प्रसिद्ध था। गुजरात अपनी सोने और चाँदी से कढ़ी चमड़े की चटाइयों के लिए प्रसिद्ध था। वहाँ चमड़े की वस्तुएँ बड़ी मात्रा में बनती थी, जिनका अरब देशों को निर्यात होता था। असम में जहाँ सांड तथा हिरण बहुत होते थे, यह उद्योग स्थापित था।

चीनी उद्योग-चीनी की खपत देशभर में पर्याप्त मात्रा में होती थी, क्योंकि भारतीय शुरू से ही मीठे के बड़े शौकीन होते हैं। चीनी गन्ने से तैयार की जाती थी, जो कि लाहौर से आगरा के समस्त क्षेत्र में तथा बंगाल, अजमेर व मालवा में बहुत मात्रा में उपजाया जाता था। उत्तम प्रकार की चीनी लाहौर, दिल्ली, बियाना, काल्पी तथा आगरा में बनाई जाती थी। पटना में भी चीनी बहुत बनती थी जो बंगाल द्वारा निर्यात की जाती थी।

अन्य उद्योग-प्रागैऐतिहासिक काल से ही भारत में मिट्टी के बर्तन बनाये जाते रहे हैं, विशेष रूप से चमकीले चित्रित बर्तन उत्तम बनाये जाते थे। आलोच्यकाल में यह उद्योग काफी विकसित था। बुरहानपुर, वैलोर, कुम्भाकोनम तथा महरइ चमकाले बर्तनों के लिए प्रसिद्ध था। मिट्टी के बर्तनों पर चमकीले कलात्मक तथा शोभायुक्त डिजाइन बनाते थे। दिल्ली, लखनऊ और काश्मीर इस उद्योग के मुख्य केन्द्र थे, वैसे यह उद्योग देशभर में व्याप्त था।

मिट्टी की मूर्तियाँ एवं खिलौने बनाने का उद्योग प्राचीनकाल से ही समृद्ध था, परन्तु आलोच्यकाल में इस उद्योग को क्षति उठानी पड़ी। इसका मुख्य कारण मुसलमानों पर धार्मिक प्रतिबन्ध लगना था, जिसके अनुसार उन पर आदमी तथा जानवरों के चित्र बनाने पर रोक लगना था। इससे कला जीवन शून्य अलंकरण मात्र रह गई। बहरहाल, बच्चों के खिलौने ज्यों-के-त्यों बनने जारी थे। आलोच्यकाल में विभिन्न कृषि उत्पादनों-नारियल, गिंगली, तिल तथा अरण्डी के बीज से तेल निकालने का उद्योग भी विकसित था। इसके अतिरिक्त संगतराशी, पत्थर की खुदाई, बोतल बनाने तथा खिड़की तैयार करने के काम काश्मीर में सामान्य रूप से किये जाते थे। काश्मीर अपने लकड़ी के काम के लिए प्रसिद्ध था। भारत में बेंत व बाँस के वृक्ष बहुत होते थे। टोकरी, चटाई, छतें तथा झोपड़ी बनाने तथा सजाने के काम में इनका प्रयोग किया जाता था। बंगाल तथा उड़ीसा में लाख पैदा होता था। इससे स्त्रियों के कंगन, कड़े तथा बच्चों के खिलौने बनाये जाते थे। इसका मुख्य उद्योग गुजरात में था। हाथी दाँत का काम करने वाले जड़ाऊ तथा

अन्य प्रकार की वस्तुएँ बनाने में बड़े निपुण थे। इनमें कड़े, कंगन, शतरंज के पट्टे तथा शतरंज के मोहरे मुख्य थे। दिल्ली तथा पूर्वोत्तर मुल्तान इसके लिए प्रसिद्ध थे। एक विदेशी यात्री नूनीज ने, जिसने विजयनगर का भ्रमण (1509-1529 ई.) किया था, वर्णन किया है कि यहाँ हाथी दाँत के गुटके बनाये जाते थे और उन पर सोने की पच्चीकारी की जाती थी।

व्यापार तथा वाणिज्य

आलोच्यकाल में आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों प्रकार का व्यापार उन्नति पर था। पुरातन समय से ही भारत के बाह्य देशों के साथ वाणिज्य सम्बन्ध थे। देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के पश्चात् जो सामग्री शेष बचती थी, उसका बाह्य देशों में निर्यात कर दिया जाता था। यातायात एवं परिवहन की समस्या व्यापारियों तथा सामान ले जाने वाले साधनों के द्वारा पूर्ण हो जाती थी। देश में व्यापार के लिए अनेक सड़कें तथा रास्ते थे, जो सरकार द्वारा सुरक्षित रखे जाते थे। सरकार का इन्हें सुरक्षित एवं ठीक दशा में रखना इसलिए भी आवश्यक था कि इन सड़कों से युद्ध के समय उसकी विशाल सेनाएँ गुजरती थी। उस समय भाप के जहाज के अभाव के कारण समुद्री व्यापार खतरनाक था, फिर भी व्यापारी तथा विदेशी सौदागर माल को बाहर ले जाते थे।

विदेशी व्यापार-जैसाकि ऊपर बताया गया है कि प्राचीन युग से ही भारत का विदेशों के साथ वाणिज्य सम्बन्ध थे। सल्तनतकाल में भारत का व्यापार प्रशान्त महासागर और भू-मध्यसागर के देशों तक फैला हुआ था। अरबी यात्री भारत के माल को इन देशों में ले जाकर बेचते थे और बाहर के माल को इस देश में ले आते थे। मुल्तान और काश्मीर होकर एशियायी देशों से थल मार्ग द्वारा व्यापार होता था। लाहौर, मुल्तान, लाहरीबन्दर (सिन्ध में), काम्बे, पटना, आगरा आदि में बड़े-बड़े बाजार थे जहाँ विदेशों से वस्तुएँ आती थी और फिर देश के भिन्न-भिन्न भागों में भेजी जाती थी। विदेशी व्यापार को दो शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित करके उसका अध्ययन किया जा सकता है, यथा-

(1) समुद्री मार्ग द्वारा व्यापार,

(2) भू-भाग द्वारा (थल मार्ग) व्यापार।

(1) समुद्री व्यापार-समुद्री व्यापार अधिकतर 'अफ्रीकी' व्यापारियों के हाथ में था। कुछ सीमा तक इस व्यापार पर उनका एकाधिकार था। भारत को पश्चिमी देशों के साथ मिलाने वाले दो मुख्य सीधे समुद्री मार्ग थे-एक तो फारस की खाड़ी वाला तथा दूसरा लाल समुद्र वाला। लाल समुद्री मार्ग अनेक चट्टानों, बाधाओं तथा अधिक कुहरा होने के कारण दुष्कर था। अतः नाविक तथा सौदागर फारस की खाड़ी वाले मार्ग को पन्सद करते थे। यह मार्ग ईराक में बगदाद से चीन में कैण्टन जाता था। खुले समुद्र पर अरब वालों के प्रभुत्व से इन सीधे मार्गों पर निःसन्देह कुछ प्रभाव तो पड़ा, परन्तु ये मार्ग अलग नहीं हुए। अरब के महान् यात्री इब्नबतूता (1333-1346 ई.) को अदन में हिन्दू सौदागरों के बहुत से जहाज मिले। उनमें कैंबे, किलन तथा कालीकट जैसे बहुत से बन्दरगाहों से माल लाया गया था। वहाँ से भारतीय माल अफ्रीका के समुद्री तट दमिश्क और सिकंदरिया तथा यूरोप के विभिन्न देशों को ले जाया जाता था। इन

बन्दरगाहों से भारतीय माल चीन, लंका, इण्डोनेशिया तथा भारतीय टापुओं को जाता था। भारत में अनेक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह थे, जहाँ विश्व के विभिन्न भागों से बहुत बड़ी संख्या में व्यापारी आते थे। पश्चिमी सीमा में लहारीबन्दर, गुजरात में कैंबे तथा गोआ और कोचीन तथा पूर्वी तटीय मछलीपट्टम, पुलीकट तथा नजरकटन तथा बंगाल में हुगली, सतगाँव, श्रीपुरा तथा चटगाँव उल्लेखनीय बन्दरगाह थे। अरब तथा फारस के जहाज खजूर फल, घोड़ों, समुद्री मोतियों तथा रत्नों का पर्याप्त मात्रा में आयात करते थे, बदले में गुड़ और चीनी, मक्खन, जैतून के फल तथा नारियल ले जाते थे। व्यापारी भारतीय सामान, विशेष रूप से कपड़े ले जाते थे और बहुमूल्य तथा कुछ दूसरे धातु, जिनके बर्तन और विभिन्न प्रकार की विलास की वस्तुएँ बनती थीं, बदले में लाते थे। अफगानिस्तान, फारस तथा मध्य एशिया के साथ मुल्तान, कोटा तथा खैबरपास के रास्ते से स्थल मार्ग व्यापार के अतिरिक्त, माल कारोमंडल समुद्री तट के रास्ते से फारस ले जाया जाता था।

आलोच्यकाल में भारतीय निर्यात की मुख्य वस्तुएँ, रुई से बनी हुई वस्तुएँ, अनाज, तेल के बीज, ज्वार, चीनी, चावल, नील, गंध पदार्थ, सुगन्धित लकड़ी तथा पौधे, कर्पूर, लवंग, नारियल, विभिन्न जानवरों की खालें; विशेषकर गेंडे तथा चीते की खाल, चंदन की लकड़ी, अफीम, काली मिर्च तथा लहसुन थे। विदेशों में भारतीय रुई के कपड़ों की बड़ी माँग थी। यह माँग जावा, सुमात्रा, बोड़ा, मलाया, बोर्नियो, अकनि, पेगु, स्याम, बेटम आदि पूर्वी देशों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि पश्चिमी देशों में भी भारतीय सूती कपड़े की पर्याप्त माँग थी। वर्थया ने भारत्त भ्रमण (1503-1508 ई.) किया था जिसने वर्णन किया है कि गुजरात की कैम्बे तथा बंगाल की बंगाला दो बन्दरगाह समस्त फारस, तातार, तुर्की, सीरिया, बर्बरी अर्थात् अफ्रीका, अरब, फेलिक्स, इथोपिया तथा भारत के समुद्रों के अनेक टापूओं को रूई तथा सिल्क के विभिन्न प्रकार के सामान भेजते थे। उन्होंने प्रत्येक वर्ष कैम्बे से जाने वाले पृथक्-पृथक् देशों के तीन जहाजों का जिक्र किया है और यह अनुमान लगाया है कि बंगाल से रूई तथा रेशम के 50 जहाज निर्यात होते थे। अधिकतर अफीम बिहार तथा मालवा में होती थी, जिसका आन्तरिक रूप से निर्यात राजपूताना, बरार तथा खानदेश को होता था, पेगु (लोअर बर्मा), जावा, चीन, मलाया, अरब को, समुद्री मार्ग से तथा फारस को स्थल मार्ग से जाती थी। जहाँ तक भारत में आयातों का सम्बन्ध है, इसकी हमारे पास प्रामाणिक जानकारी नहीं है। परन्तु निःसन्देह आयात की मुख्य वस्तुएँ बहुमूल्य धातुएँ थीं। यद्यपि भारत में सोने तथा चाँदी की खान नहीं थी, फिर भी विदेशों से ये दोनों धातु आयात किये जाते थे तथा उनके निर्यात पर रोक थी। विदेशी व्यापारी सोना तथा चाँदी लेकर आते थे और उसके बदले में वाणिज्यिक वस्तुएँ ले जाते थे। सोना मुख्यतः चीन, जापान, मलक्का तथा अन्य समीपवर्ती देशों से; मूंगा पेगु से तथा मोती और विभिन्न प्रकार के रत्न फारस तथा अरब से आते थे।

(2) थल मार्ग से व्यापार–समुद्री मार्ग के अतिरिक्त भू-मार्ग द्वारा भी सीमान्त देशों से व्यापार होता था। प्राचीनकाल से ही सीमान्त देशों से व्यापार होता आया है, परन्तु मंगोलों के प्रादुर्भाव से इसमें अभूतपूर्व प्रगति हुई। भारत-मध्य एशिया और अफगानिस्तान से सूखे मेवे, ताजे फल, अम्बर हींग, खुरखुरे लाल पत्थर आदि का आयात पर्याप्त मात्रा में करता था। बाबर के अनुसार भारत और काबुल के बीच बड़ा सफल व्यापार चलता था। भारत-कपड़े, कम्बल, चीनी, नील, औषधि सम्बन्धी जड़ी-बूटी का निर्यात करता था तथा इनके बदले में वह फल आदि आयात करता था। हिमालय के राज्यों तथा तिब्बत से कस्तूरी, चीनी लकड़ी, खेतचीनी, अमीरा (आँखों की एक मूल औषधि), जेद, बढ़िया ऊन, सोना, ताँबा, सीसा, तिब्बती गाय की दुम, शहद, सोहागा, मोम, ऊनी सामान तथा बाज पक्षी से लदे हुए काफिले आते थे। नेपाल भारत को पशु तथा सींग, कस्तूरी, सोहागा, चिरैता (औषधि की जड़ी-बूटी), मजीह (रंग), इलायची, चौरीस (तिब्बती गाय की दुम), महीन रोयें, बाज पक्षी तथा बालचर (एक सुगन्धित घास) निर्यात करता था। इनके बदले में तैयार वस्त्र, नमक, धातु, चीनी, मसाले आदि का आयात करता था। भूटान से भारत कस्तूरी तथा तिब्बती गाय की दुम का आयात करता था। पेगु के साथ व्यापार पुर्तगाली डाकुओं की गतिविधियों के कारण बहुत सफल नहीं था। भारत बुने हुए कपड़े के थान, सूत तथा अफीम का निर्यात करता था। इसके बदले में सोने, चाँदी तथा मूल्यवान पत्थरों का आयात करता था। खुरासानी व्यापारी तुर्की गुलामों और सुस्त्री नामक कपड़े का व्यापार करते थे। बाबर और हुमायूँ के काल में इसकी काफी उन्नति हुई थी। घोड़े आयात के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तु थे। तुर्किस्तान में अजाक के लोग भारत को निर्यात करने के लिए घोड़े विशेष रूप से पालते थे। 6000 अथवा इससे अधिक के झुण्डों में वे घोड़े भेजते थे। अरब यात्री इब्नबतूता ने वर्णन किया है कि होरमुज, अदन, क्रीमिया तथा अजाक से अच्छी नस्ल के घोड़े भारत को भेजे जाते थे। इन घोड़ों को सिंध तथा मुल्तान दोनों स्थानों में पालते थे।

व्यापार सन्तुलन–उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यापार का सन्तुलन भारत के पक्ष में था। समस्त देशों से व्यापारी भारतीय बन्दरगाहों पर आते थे तथा उपयोगी वस्तुएँ, जड़ी-बूटियाँ और गोंद के बदले में सोना तथा रेशम देते थे। इसीलिए भारत में सोने और चाँदी का विपुल भण्डार था। इसी विपुल सम्पदा के कारण विदेशी आक्रान्ता भारत की ओर आकर्षित होते थे।

विदेशी तथा भारतीय व्यापारी–भारत के समुद्री व्यापार में अरब तथा तुर्की के व्यापारियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। खुरासानी व्यापारी चीन, फारस, अरब तथा भूमध्य स्थित देशों के साथ हमारे थल व्यापार में बड़े सक्रिय थे। परन्तु यह कहना गलत होगा कि भारतीय व्यापारियों ने व्यापार का काम उन्हें सौंप रखा था। उत्तर भारत के मुल्तानी, गुजराती, बनिये; राजपूताना, मध्य भारत तथा गुजरात के बंजारे अथवा काफिले तथा कुछ ऐसे व्यापारी थे जिन्होंने विदेशों के साथ वाणिज्य आरम्भ किया था। उनमें से कुछ के पास अपने बड़े जहाज थे। इटली के यात्री निकोलो कौंती (1419-1444 ई.) का कहना है कि इन व्यापारियों में से एक व्यापारी इतना धनाढ्य था कि उसके पास अपना माल ढोने के लिए 40 जहाज थे। भारतीय व्यापारी अधिकतर व्यापार पूर्वी अफ्रीका, लाल समुद्री बन्दरगाहों, फारस की खाड़ी के देश तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के भागों, विशेषकर सुमात्रा तक करते थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सुल्तान तथा उनके उत्तरवर्ती मुगल विदेशी व्यापार के हक में नहीं थे तथा उन्होंने भारतीय व्यापारियों के हितों की रक्षा भी नहीं की। 1547 ई. में एक समझौते के द्वारा विजयनगर का समुद्री व्यापार पुर्तगाली हाथों में सौंप दिया गया था, क्योंकि दक्षिण के राज्य उन्हें खदेड़ने में असमर्थ थे। समुद्री व्यापार सुरक्षित

दास प्रथा और दासों की स्थिति

भारत में प्राचीनकाल से ही दास प्रथा प्रचलित रही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इसका विस्तृत विवरण मिलता है। पूर्व-मध्यकाल में भी यह प्रथा प्रचलित रही। पूर्व-मध्यकाल में श्रमिक दास व दास में अन्तर था। श्रमिक वेतन के बदले श्रम किया करते थे तथा दासों को वेतन या पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था। अकाल पीड़ित कई लोग भूख से व्याकुल होकर दासता स्वीकार कर लेते थे। नारद के कथनानुसार गायों की जोड़ी अपने स्वामी को अर्पित करके वे स्वतंत्रता प्राप्त कर लेते थे।

पश्चिमी एशियायी देशों में भी यह प्रथा विद्यमान थी और इस्लाम के उदय के बाद भी यह प्रथा कायम रही। अरब में मध्य एशिया के तुर्की दासों का उपयोग विशेष रूप से सैनिक कार्यों के लिये किया जाता था। भारतीय मुस्लिम शासकों ने भी वहाँ की देखा-देखी यहाँ दास प्रथा को बढ़ावा दिया। इस प्रथा को कभी अमानवीय नहीं समझा गया। दासों के व्यापारी सुन्दर और होनहार बालकों की बड़ी तल्लीनता से खोज किया करते थे। संरक्षकों से खरीदकर बड़े प्यार और दुलार से उनका पालन-पोषण करते थे। उनके व्यक्तित्व के विकास की व्यवस्था की जाती थी। युद्ध विद्या, घुड़सवारी, तीरंदाजी में प्रवीणता तथा साहित्य व कला से युक्त दासों की बड़ी माँग को देखते हुए उन्हें योग्य बनाया जाता था। अपने भावी स्वामी के प्रति पूर्ण निष्ठा रखने की भी शिक्षा दी जाती थी। दासों के क्रय-विक्रय के लिए संगठित मंडियाँ होती थीं। वयस्क लड़के और अवयस्क लड़कियों को बाजार में प्रदर्शन के लिए लाया जाता था तथा आम वस्तुओं की तरह उनका सौदा होता था। सौदा तय होने के बाद क्रेता के नियंत्रण में दास स्थानांतरित हो जाते थे। क्रय किये गये दासों का भरण-पोषण क्रेता स्वीकार करता था और इसके बदले में अपनी

इच्छानुसार उनसे काम कराने के लिए अधिकृत था। कुरान के निर्देशानुसार क्रेता अपने दासों से मानवीय व्यवहार करते थे। अपने परिवार की तरह दास के भोजन व वस्त्रादि का प्रबन्ध करते थे। दासों के कुछ कानूनी अधिकार भी थे। दास अपने स्वामी की इच्छित राशि देकर दासता से मुक्त हो सकते थे। किन्तु दास-स्त्रियों को अपनी रखैल या उप-पत्नी नहीं बनाया जा सकता था। फिर भी व्यवहार में ऐसा नहीं होता था।

साधारणतः दास को क्रेता के घर पर नौकरों की तरह कार्य करना पड़ता था। वैतनिक नौकर की अपेक्षा वे अधिक विश्वसनीय माने जाते थे। बाल्यकाल से पाला-पोसा गया दास अपने स्वामी के प्रति अधिक वफादार समझा जाता था। स्वामी के घर के सारे काम उसे करने पड़ते थे। लेकिन उसे नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं होते थे। वे अपने स्वामी की सम्पत्ति माने जाते थे। वे अपने स्वामी की अनुमति के बिना बाहर घूमने नहीं जा सकते थे, किसी अन्य व्यक्ति से सम्पर्क नहीं कर सकते थे, अपना विवाह नहीं कर सकता था। विवाह के बाद उसकी पत्नी व बच्चे भी स्वामी के दास माने जाते थे। उदरपूर्ति के लिए बचा हुआ व झूठा भोजन तथा फटा-पुराना त्याज्य वस्त्र मिलते थे। निष्ठावान, मेधावी व उद्यमी दास की सराहना की जाती थी और वे स्वामी के कृपा-पात्र बन जाते थे। उन्हें उच्च पद व सम्मान मिलता था तथा मध्यम श्रेणी के परिवार में वे अन्य परिवर-जनों के समान समझे जाते थे। भरण-पोषण के अतिरिक्त बीमार पड़ने पर व वृद्धावस्था में दासों की देखभाल का दायित्व स्वामी का होता था। मृत्यु के उपरान्त उसके बाल-बच्चे व विधवा का भरण-पोषण का प्रबन्ध स्वामी करता था। इतना ही नहीं दास द्वारा अर्जित सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वामी होता था। चोरी, व्यभिचार, विरोधियों से मेल-जोल, सौंपे गये काम की अवहेलना करना, कटु एवं अपशब्द बोलने तथा घर से भाग निकलने पर उसे यातनापूर्ण कठोर दण्ड दिये जाते थे।

सामाजिक दृष्टि से दास चार प्रकार के होते थे—(1) क्रेता—खरीदा हुआ, (2) दान अथवा भेंट द्वारा प्राप्त, (3) युद्धबन्दी तथा (4) आत्म-विक्रेता—जो स्वयं अपने आपको बेच दे। सामाजिक विषमताएँ, दरिद्रता, शासक वर्ग में इस्लाम के प्रचार की धुन और रोजगार धन्धों की कमी दास प्रथा के पोषक तत्त्व थे। धनाढ्य वर्ग वैभवपूर्ण जीवन के लिए दासों की आवश्यकता महसूस करता था। दासियाँ अन्तःपुर में गृहस्वामिनी की सेवा तथा स्वामी के वासनामय मनोविनोद के लिए उपयोगी होती थीं। विवाह के समय वधू को अपने पिता की हैसियत अनुसार दास-दासियाँ वधू के साथ ससुराल भेजी जाती थीं। तुर्की मध्य एशिया, फारस, अबीसीनिया, मलाया आदि से दासों का बड़ी संख्या में आयात होता था। भारतीय दासों में शारीरिक गठन के कारण आसाम प्रान्त के दासों का बड़ा महत्त्व था। इनका मूल्य अन्य दासों की अपेक्षा अधिक होता था। बंगाल तथा मलाया से हिजड़ों के क्रय करने का चलन था जो अन्तःपुर की महिलाओं की निगरानी रखने के लिए उपयोगी माने जाते थे। इल्तुतमिश के शासनकाल में मेधावी व कर्मठ दास का मूल्य 50,000 जितल तक था। अलाउद्दीन ने विविध श्रेणी के दासों का मूल्य निर्धारित किया था। घरेलू कामकाज करने वाली दासी का मूल्य 5 और 12 टांका तथा रखैल के रूप में रहने वाली दासी का मूल्य 20 से 40 टांका के बीच रखा गया। एक सुन्दर बालक दास का मूल्य 20 से 30 टांका, कार्य में निपुण दास का मूल्य 10 से 15 टांका तथा अप्रशिक्षित दास का मूल्य 7 या 8 टांका था। कुछ

खास योग्यता वाले दास 100 या 200 टांका तक में बिक जाते थे। सरकारी नियंत्रण के कारण दासों की कीमतें काफी कम हुईं, लेकिन फीरोज तुगलक के समय पुनः कीमतें बढ़ गईं।

सल्तनत काल में मुसलमानों का एक बड़ा दल दासों का होता था। कभी-कभी इसमें ऐसे योग्य दास निकले जो शासक पुत्रों से अधिक योग्य एवं विश्वसनीय थे। मुइजुद्दीन गौरी के चार गुलामों ने अत्यधिक ख्याति प्राप्त की। याल्दोज ने अफगानिस्तान, कुबाचा ने सिन्ध, इख्तियार ने बंगाल और कुतुबुद्दीन ने दिल्ली में विशेष ख्याति प्राप्त की। कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और बलबन जैसे गुलामों ने अपनी योग्यता से दिल्ली सल्तनत का सिंहासन प्राप्त किया। मुइजुद्दीन की उत्तरी भारत में विजय केवल उसके पराक्रम का परिणाम नहीं थी बल्कि उसके दासों के सामूहिक प्रयत्नों का फल थी। इल्तुतमिश को ऐबक ने दिल्ली की दास मण्डी में 50,000 जितल देकर खरीदा था, जो भारत में इस्लामी शासन का वास्तविक संस्थापक सिद्ध हुआ। इल्तुतमिश ने बलबन को दास के रूप में खरीदा और उसे अपना दामाद बनाया।

दास वर्ग का प्रशासकीय क्षेत्र में भी पदार्पण हुआ। प्रारम्भ में दास सुल्तान या किसी अमीर की निजी सेवा में रहते थे। तत्पश्चात् अपनी योग्यता और नष्ठा के बल पर किसी इक्ता (भू-क्षेत्र) के अधिकारी पद पर नियुक्त होते थे। वह सुल्तान की अनुमति के बिना इक्ता से वसूली गई राजस्व की राशि में से कुछ भी खर्च नहीं कर सकता था। दस या बारह वर्षों के अनुभव के बाद इन्हें मुक्ती (राज्यपाल) का पद मिल जाता था। वे अपने भू-क्षेत्र में व्यवस्था बनाये रखते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर सुल्तान को सैनिक सहायता भेजते थे। यह पद स्थायी या वंशानुगत नहीं था, वे सुल्तान की इच्छापर्यन्त ही अपने पद पर बने रह सकते थे। दासों को उच्चतम पद 'अहल-ए-तेज' पर नियुक्ति होती थी। अहल-ए-क्लाम पद पर केवल उलेमा वर्ग में से नियुक्ति होती थी। 'वजीर-ए-[illegible]' का पद दासों की पहुँच से परे था। दास वर्ग शाही दरबार के अमीरों से वैमनस्य रखता था, [illegible] ही सुल्तान पर अपना प्रभाव चाहते थे। सुल्तान भी अपनी सत्ता को अक्षुण्ण [illegible] दास वर्ग तथा अमीर वर्ग में सन्तुलन बनाये रखने के पक्ष में थे। इल्तुतमिश के शासनकाल तक तो व्यवस्था बनी रही। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद दास वर्ग शासन की बागडोर अपने पास रखने के लिए खुली बगावत पर उतर पड़े। इल्तुतमिश के बाद 1236-1246 के काल में वे शक्तिशाली बन गये। एक के बाद दूसरे सुल्तान की बकरों की तरह हत्याएँ की गईं। दास वर्ग सुल्तान के पद को परम्परागत, ईश्वरीय व सर्वोच्च मानने को तैयार नहीं थे। दास वर्ग में भी पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा, ईर्ष्या-द्वेष भी बहुत ज्यादा था। बलबन ने इस दास वर्ग के प्रभाव को कम करने का प्रयत्न किया, लेकिन उसकी मृत्यु के बाद तुर्क दासों की शक्ति तो क्षीण हुई लेकिन खलजी अमीरों का दबदबा बढ़ गया। खलजी वंश और तुगलक वंश के काल में दासों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। अलाउद्दीन के शासनकाल में मलिक काफूर, जो एक दास था, का प्रभाव बढ़ा। लेकिन मलिक काफूर ने इतने कुकृत्य किये कि अलाउद्दीन के अंगरक्षक ने क्रोधित होकर उसकी हत्या कर दी। अलाउद्दीन के काल में खिलजी दासों के प्रभाव में वृद्धि हुई, लेकिन अलाउद्दीन ने हिन्दू परिवर्तित दासों को प्रोत्साहन देने से खिलजी दासों को नियंत्रण में रखा गया। सुल्तान मुबारकशाह का अन्त हिन्दू परिवर्तित दास खुसरो खाँ ने किया था। 1320 में गाजी मलिक ने खुसरो खाँ को मौत के घाट उतार दिया और दिल्ली में तुगलक वंश की

नींव डाली। तुगलक शासनकाल में दासों की शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। फीरोज तुगलक दासों का बड़ा प्रेमी था। फीरोज तुगलक ने राज्य में योग्य राज्य पदाधिकारियों का गठन किया। राजकोष पदों पर नियुक्तियाँ वंश परम्परा के अनुसार की जाने लगीं। फलस्वरूप साम्राज्य में दासों की संख्या एक लाख अस्सी हजार तक पहुँच गई। इस विशाल दास समुदाय के उचित प्रशासन के लिए एक पृथक् विभाग का गठन किया गया, जिसे 'दीवाने-बन्दगाह' कहा गया। उसे दासों की देखभाल की जिम्मेदारी सौंपी गई। एक पृथक् कोष की भी स्थापना की गई। दासों की रुचि के अनुकूल शिल्प, कला आदि के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। फलस्वरूप हजारों दास निपुण कारीगर बन गये और कुछ ने सेना में प्रवेश कर उच्च पद प्राप्त कर लिए। ऐसा कोई शाही विभाग नहीं था जिसमें दास मौजूद न हो। इन्हें 10 टके से लेकर 100 टके तक की नकद खानगी दी जाती थी। खजाने से इन्हें नियमित वेतन का भुगतान किया जाता था और जिन्हें नकद भत्ता नहीं मिलता था उन्हें जागीर में गाँव दिये जाते थे। शाही कोष पर इनका व्यय-भार हानिप्रद सिद्ध हुआ। शनैः-शनैः दासों का राजकीय क्षेत्रों में प्रभाव बढ़ने लगा। फीरोज के अन्तिम वर्षों में तो वे सर्वेसर्वा बन बैठे। बरनी के अनुसार अधिकांश दास प्रमादी और षड्यंत्रकारी बन गये। मेंहदी हुसैन के शब्दों में—''खिलजी और तुगलककालीन शाही दास स्वामी भक्त न रह सके। वे अति महत्त्वाकांक्षी व दुष्चरित्र के प्रमाणित हुए। उन्होंने राज्य के विद्रोहियों का दमन व सीमा विस्तार की बजाय अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति में राजकोष खाली कर दिया।''

मुगलकालीन दास प्रथा—मुगलकाल में दासों का राजनीतिक प्रभाव लगभग समाप्त हो गया। मुगल बादशाहों ने दासों की उपयोगिता को स्वीकार किया किन्तु उन्होंने दासों को शासन पर हावी नहीं होने दिया। इन दासों का उपयोग केवल घरेलू काम-काज के लिए किया जाता था। सम्राट् अकबर ने दासों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाया। सम्राट् दासों को बन्दा, गुलाम या दास के नाम से सम्बोधित नहीं करता था, बल्कि 'चेला' कहकर सम्बोधित करता था। अबुल फजल के अनुसार 'एक विश्वसनीय शिष्य' को चेला कहा जाता है। 'दास' शब्द का प्रयोग निम्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए होने लगा—

(1) वह दूसरों पर आश्रित व्यक्ति जिसे धनवान ने पैसा देकर खरीदा है।

(2) वह व्यक्ति जिसने गृहस्थ जीवन का परित्याग कर किसी सन्त या महात्मा की शिष्यता ग्रहण कर ली हो।

(3) बाल-बच्चों सहित अपनी सन्तान को माता-पिता अपना चेला मानते थे।

(4) वह व्यक्ति जिसने सम्पत्ति के लालच में अपने मालिक की हत्या कर दी हो।

(5) डाकू, जिसने डकैती पर पश्चाताप करते हुए अपने को पीड़ित व्यक्ति के हवाले कर देता था।

(6) हत्यारा, जिसने मृतक के उत्तराधिकारी के पास दास के रूप में रहने का दण्ड मिला हो।

(7) वह व्यक्ति जिसने स्वेच्छा से अपने श्रद्धेय के पास दास के रूप में रहना स्वीकार कर लिया हो।

चेलों का वेतन एक रुपये से लेकर एक दाम तक होता था। सरकार इन चेलों की सेवाओं को जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनिवार्य मानती थी। सरकार इन चेलों की शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध करती थी। शिक्षा प्राप्त कई चेले अपने जीवन में बड़ी उन्नति की थी। सेना में इनकी विशेष आवश्यकता मानी जाती थी। पराक्रमी चेला एक साधारण सैनिक से ऊँचा उठते हुए मुगल दरबार का मनसबदार बन सकता था। लेकिन कुलीन वर्ग इनसे परहेज करता था। दास-दासियों के कारण सामन्तों की विलासिता बढ़ती गई। विशाल अन्तःपुर, सामाजिक प्रतिष्ठा का द्योतक था। प्रसिद्ध दासियाँ दो प्रकार की होती थीं—(1) वे नित्य प्रतिदिन घरेलू काम के लिए रखी जाती थीं। (2) जो इन्द्रिय-सुख के लिए काम में ली जाती थीं। कभी-कभी ये दासियाँ अपने स्वामी की इतनी कृपा-पात्र बन जाती थीं कि वे गृहस्वामिनी से भी अधिक सम्माननीय बन जाती थीं। स्वामी से उत्पन्न दासियों की संतान दास नहीं माने जाते थे, हालाँकि राजपरिवार में उन्हें अन्य सदस्यों के समान स्तर का व्यवहार किया जाता था। किसी दास से उत्पन्न संतान दास ही माने जाते थे तथा उनके द्वारा अर्जित सम्पत्ति के उपभोग करने के अधिकारी होते थे।

विदेशों से बड़ी संख्या में दास-दासियों का आयात किया जाता था। मुगल अमीर अजीज कोका ने दासियों के चयन के बारे में लिखा है—''खुरासानी महिलाएँ गृहकार्य के लिए, हिन्दू महिला बच्चों का पालन-पोषण के लिए, ईरानी महिला इन्द्रिय सुख के लिए तथा मध्य एशियायी महिला, उपर्युक्त तीनों प्रकार की दासियों पर नियंत्रण रखने के काम में ली जाय।'' दासों का विक्रय करने वाले व्यापारियों के संगठन होते थे जो अपने दलालों को सुन्दर व बुद्धिमान बालक-बालिकाओं को खरीदने के लिए दूर-दराज कस्बों में भेजते थे। उनका अच्छा विक्रय मूल्य प्राप्त करने के लिए उन्हें संगीत, नृत्य व शिल्प का प्रशिक्षण दिया जाता था। कुछ जातियों में तो बालिकाओं को दासी के रूप में बेचने का रिवाज था। ये दास-दासी अपनी संतान को भी दास का जीवन व्यतीत करने का परामर्श देते थे। इसका मुख्य कारण गरीबी, धनवान परिवारों से पैतृक सम्बन्ध तथा वैभवशाली वातावरण में रहने की लालसा थी।

दासों को स्वतंत्रता के लिए नियम प्रचलित थे। दास अपना कर्ज चुका कर दासता से मुक्त हो सकते थे। अपने स्वामी की रक्षा में अपने जीवन की बाजी लगा देने वाले दास को भी प्रायः स्वतंत्र कर दिया जाता था। दासता से मुक्त करते समय हिन्दू स्वामी अपने दास के सिर पर पानी घड़ा उतार कर फोड़ देता और उसके बाद चावल फेंकता हुआ तीन बार कहता—''अब तू दास नहीं है।'' मुसलमानों में रिवाज था—स्वतंत्र किये जाने वाले दास को लिखित में 'मुक्ति पत्र' देता था। दास को स्वतंत्रता देना धार्मिक दृष्टि से बड़ा पवित्र कृत्य माना जाता था। इस्लाम में साधनविहीन, गरीब, ऋण ग्रस्त परिवारों द्वारा दास जीवन स्वीकार करना अमानवीय समझा गया है। दासियों की प्रचुरता ने अमीरों को दुश्चरित्र बना दिया। अमीरों के अन्तःपुर में स्त्रियों में परस्पर कलह रहता था। दासियों के कारण सामाजिक दृष्टि से स्त्रियों की स्थिति में बड़ी गिरावट आई।

कृषक वर्ग व उनकी स्थिति

पूर्व-मध्यकालीन समाज में एक वर्ग कृषकों का था। कृषक विशेषतः हिन्दू समाज के अंग होते थे, जिन्हें अनेकानेक करों के भार से दबना पड़ता था। युद्ध की स्थिति में उनके सम्पूर्ण

परिश्रम का फल नष्ट हो जाता था और दूसरी फसल के पैदा करने की सम्भावना भी धूमिल हो जाती थी। उत्पादक होते हुए भी इन्हें भर पेट भोजन मिलना एक बहुत बड़ी बात थी। सामाजिक प्राणी होने के नाते उस युग के कृषक वर्ग को भी आजकल की भाँति सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ता था। बहुधा स्वतंत्र रूप से खेती करने वाला किसान ऋण में सदैव डूबा रहता था और अपना सर्वस्व खो बैठता था। अलाउद्दीन के समय में एक किसान को अपनी उपज का ½ भाग राज्य को देने के अतिरिक्त कई अन्य कर भी देने पड़ते थे। फिरोज तुगलक ने इनमें से कई करों को हटाकर खेती करने वालों की दशा में सुधार करने का प्रयास किया, परन्तु मुहम्मद तुगलक की योजनाओं में खेती करने वालों की हालत फिर से खराब हो गई। तैमूर के आक्रमण के फलस्वरूप होने वाली क्षति का अधिकतर प्रभाव किसानों पर पड़ा। लेकिन शेरशाह ने राज्य की दशा सुधारने के लिए खेती को प्रोत्साहन दिया और लगान की समुचित व्यवस्था से कृषकों की स्थिति सुधारने का भी प्रयास किया। इसी नीति का अनुसरण आगे चलकर अकबर ने भी किया जिससे राज्य में किसानों की दशा ठीक रही।

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के बावजूद भारतीय किसान मुश्किल से अपना जीवन निर्वाह करता था। जहाँ खाने को पर्याप्त अन्न भी नहीं होता था, वहाँ कपड़ों और मकानों की सुविधा की कल्पना करना ही व्यर्थ है। दुर्भिक्ष, बाढ़ आदि दैवीय प्रकोपों से होने वाली अधिक क्षति से उनकी हालत बिगड़ती चली गई। वैसे कुछ सुल्तानों ने कई बार ऐसे अवसरों पर सहायता पहुँचाने का प्रयत्न किया या लगान में छूट दी, परन्तु उसका व्यवहारिक रूप ठीक न होने से उनके लिए अपेक्षित लाभ पहुँचना सम्भव नहीं हो सका। मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने स्वयं लिखा है कि, भारतीय कृषकों के पास इतना कम सामान होता था कि वे किसी समय आक्रमण की सम्भावना में, घर छोड़कर जंगलों में निकल जाते थे और आपत्ति टलने पर पुनः अपने स्थान पर लौट आते थे। उनका द्रुत गति से भागना और पुनः आकर बस जाना इसलिए सम्भव था कि उनके पास घरेलू सामान बहुत ही कम होता था। उन्हें प्रायः वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता था, अतः उन्हें अपने भाग्य पर ही भरोसा रखना पड़ता था। कई बार तो वर्षा के अभाव में वे अपना स्वयं का पालन-पोषण करने में भी समर्थ नहीं होते थे, फिर भी सरकारी अधिकारी उन पर अत्याचार करते थे और उनका शोषण करते थे। ऐसी स्थिति में उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती थी। अनेक प्रत्यक्षदर्शियों ने किसानों की दरिद्रता का वर्णन इसी प्रकार किया है।

मध्यकाल में नारी की स्थिति

वैदिक काल में महिलाओं को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें सभी प्रकार के सामाजिक उत्सवों तथा यज्ञ आदि में सम्मिलित होने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उस युग की स्त्रियाँ इतनी विदुषी होती थीं कि उनके मन्त्र अब तक हमें वैदिक संहिताओं में उपलब्ध होते हैं। लोपामुद्रा, गार्गी, घोषा इत्यादि इसी प्रकार की महिलाओं के उदाहरण हैं। लेकिन समय के साथ-साथ उनकी स्थिति में महान् परिवर्तन होते गये। वस्तुतः बौद्ध काल से उनकी दशा का पतन आरम्भ हो गया। धीरे-धीरे उनकी स्वतन्त्रता में कमी आती गई। वे कन्या के रूप में माता-पिता, पत्नी के रूप में अपने पति तथा विधवा के रूप में अपने पुत्र के नेतृत्व में रहती थीं। इस्लाम के

आगमन से भारतीय समाज में काफी परिवर्तन आ गये। यह सत्य है कि बहु-विवाह शासक वर्ग के हिन्दुओं में मुसलमानों के आने से पूर्व प्रचलित था। परन्तु पर्दे की प्रथा का मुसलमानों में सामान्य रिवाज था। इस प्रकार हिन्दू स्त्रियों पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। मध्यकाल में स्त्रियों की दशा निम्न प्रकार थी—

पर्दा-प्रथा—इस्लाम के आगमन के साथ ही भारतीय क्षितिज पर नई परम्पराओं का उदय हुआ। मुसलमानों के मूल देश अरब और तुर्किस्तान में महिलाओं के लिए पर्दे में रहना अनिवार्य समझा जाता था। स्वभावतया भारत जैसे विदेशी स्थान पर इस पर अधिक जोर डाला गया। इस सम्बन्ध में अकबर जैसे उदार बादशाह ने भी बड़े कड़े आदेश जारी किये थे, जिसके अनुसार "यदि कोई नौजवान युवती गलियों एवं बाजार में बगैर घूँघट के दिखाई दे या जान-बूझकर उसने पर्दे को तोड़ा है तो उसे वेश्यालय में ले जाया जाय और उसी पेशे को अपनाने दिया जाय।" हिन्दुओं में पर्दे की प्रथा मुसलमानों के प्रभाव के कारण आई। हिन्दुओं ने अपनी नारी जाति की सुरक्षा तथा उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए पर्दा-प्रथा को अपनाया। शासक वर्ग का अनुकरण भी प्रधान कारण था, जिससे हिन्दुओं में पर्दा-प्रथा का चलन आरम्भ हुआ। मुगल काल में पर्दे का हिन्दू और मुसलमानों के उच्च घरों में सामान्य रिवाज था। दोनों समुदाय के परिवारों में औरतों को अलग रखने की प्रवृत्ति प्रतिष्ठा की बात समझी जाती थी। फलतः ऊँचे घरानों में इस नियम का पूरा पालन किया जाने लगा। 16वीं सदी के यात्री बरबोसा ने बंगाल की औरतों में पर्दा-प्रथा के प्रचलन का उल्लेख किया है। अमीर और शाही घरानों में पुरुषों और औरतों के बीच संदेशवाहक का काम करने के लिए बड़ी संख्या में हिंजड़े रखे जाते थे। पर्दा-प्रथा के चलते बीमार औरतों के इलाज के लिए भी मर्द चिकित्सक को शाही या अमीरों के जनाने में प्रवेश नहीं मिलता था। औरतें अपने घरों से शायद ही कभी बाहर निकलती थीं। ऐसा मौका आए भी तो उन्हें सेवक तथा हिंजड़े से घिरी और पूरी तरह ढकी पालकी में बन्द होकर जाना पड़ता था। यदि कोई मुसलमान महिला किसी कारणवश थोड़े समय के लिए पर्दा त्याग देती तो उसे भयंकर परिणाम भोगना पड़ता था। काबुल के गवर्नर अमीर खाँ ने अपनी बीबी को केवल इसलिए छोड़ दिया था कि हाथी के पागल हो जाने पर जान बचाने के लिए नीचे कूदते समय बेपर्दा हो गई थी। मुसलमानों में तो पर्दा-प्रथा इतनी कठोर थी कि कोई मुसलमान अपनी उपस्थिति के अतिरिक्त अपने रिश्तेदार से भी स्त्री को बात करने की आज्ञा नहीं देते थे। लेकिन राजपूत स्त्रियों में इसका रिवाज कम ही था। औरतें युद्ध कला की शिक्षा ग्रहण करती थीं और प्रायः शिकार तथा अन्य अभियानों में भी भाग लिया करती थीं। फिर भी धीरे-धीरे राजपूतों में भी पर्दा-प्रथा का प्रचलन बढ़ता जा रहा था।

अवांछनीय बेटियाँ—परिवार में बेटी पैदा होना अशुभ समझा जाता था। टॉड के अनुसार राजपूत कहते थे, "बेटी जन्म का दिन मेरे लिए अभिशाप स्वरूप है।" परिवार में लड़की का लड़कों के समान आदर नहीं होता था। यह अन्तर शाही घरानों में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था। दुर्भाग्यवश यदि किसी स्त्री के लगातार बेटियाँ होतीं तो बहुधा ऐसी स्त्री को तलाक दे दिया जाता था। शाही परिवार में लड़की के जन्म पर केवल हरम में ही बेगम खुशी मनाती थी, जबकि पुत्र जन्म पर होने वाले सामारोह में सभी दरबारियों को शामिल किया जाता

था। फिर भी संयोगवश कन्या-वध जैसी घृणित प्रथा केवल राजपूतों के ही एक पिछड़े वर्ग तक सीमित थी।

बाल-विवाह—उन दिनों की राजनीतिक परिस्थितियों में ऐसे रिवाज प्रचलित हो गये थे, जिसके अनुसार जन्म के बाद छः से आठ वर्षों से अधिक समय तक लड़कियों का अपने माता-पिता के घर रहना वर्जित माना जाता था। 16वीं सदी के बंगाली कवि मुकुंद राम के अनुसार जो पिता अपनी बेटी का नौ वर्ष की उम्र में विवाह कर देता था, वह भाग्यवान तथा ईश्वर का कृपापात्र समझा जाता था। बहुत कम उम्र में विवाह कर देने के रिवाज के कारण दूल्हा और दुल्हन को अपना मन पसन्द जीवन साथी चुनने का अवसर ही नहीं मिलता था। राजपूत राजघराने इसके अपवाद थे। दहेज की माँग की जाती थी और कभी-कभी तो माता-पिता वर-वधू की श्रेष्ठता पर विचार किये बिना केवल अच्छे दहेज के लालच में शादी कर दिया करते थे। कुछ विशेष जातियों तथा क्षेत्रों में वर पक्ष को ही कन्या के अभिभावक को धन देना पड़ता था। बहुधा धन के लोभ में कोई नवयुवक बड़ी उम्र की औरत से भी विवाह कर लेता था। यह बुराई इतनी बढ़ गई थी कि अकबर को यह आदेश देना पड़ा कि स्त्री की उम्र पति से बारह वर्ष अधिक हो तो उसके विवाह को गैर-कानूनी करार देकर रद्द कर दिया जायेगा। अकबर की यह कोशिश भी कामयाब नहीं हो पाई कि सगाई के अनुमोदन के पूर्व वर-वधू की स्वाकारोक्ति तथा माता-पिता की अनुमति अनिवार्य रूप में आवश्यक होनी चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय उच्च वर्ग के राजपूत परिवारों की लड़कियों को अपना पति चुनने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। बहुधा कोई राजपूत महिला स्वयं अपने विवाह की शर्तें तय किया करती थी। राव सुरताण की बेटी ताराबाई ने यह शर्त रखी थी कि वह उसी नवयुवक से विवाह करेगी जो उसके पिता को उसके राज्य टाड़ को पठानों से मुक्त करा देगा। पृथ्वीराज के भाई जयमल ने यह शर्त स्वीकार कर उससे विवाह किया था। मोहिल सरदार की सुन्दर कन्या कर्मदेवी ने मंडोर के राव के उत्तराधिकारी से अपनी सगाई अस्वीकार करके पूगल के राजकुमार साधु की वधू बनना स्वीकार किया था। रूपनगर की राजकुमारी ने मेवाड़ के महाराणा राजसिंह को निमंत्रण भेजा था कि वह उसे औरंगजेब के चंगुल से छुड़ाकर उससे विवाह करे।

एक पत्नी प्रथा—मध्यकाल में दोनों समुदायों के निम्न वर्गों में एक पत्नी का प्रचलन हो गया था। अकबर के समय में इबादतखाना में उलेम लोगों के द्वारा हुए इस फैसले के होते हुए भी कि एक आदमी निकाह के द्वारा चार तथा 'मूता' के द्वारा कितनी भी संख्या में विवाह कर सकता था, अकबर ने यह आदेश जारी किया था कि कोई भी साधारण व्यक्ति एक स्त्री से अधिक नहीं रख सकता तथा पहली स्त्री के बांझ साबित होने पर ही दूसरी पत्नी रखने की अनुमति दी जा सकती थी। बहु-विवाह की सुविधा केवल धनी मुसलमानों को प्राप्त थी जो प्रायः तीन या चार पत्नियों को रखा करते थे। हिन्दुओं में कुछ रजवाड़ों तथा अमीरों को छोड़कर शेष लोग सामाजिक रिवाज के अनुसार एक पत्नी रखा करते थे। कुछ विशेष मामलों में और जब पहली स्त्री बांझ हो तो वे ब्राह्मणों की स्वीकृति पर दूसरी स्त्री से विवाह कर सकते थे।

पत्नी की स्थिति—लड़की का पालन-पोषण माता-पिता के द्वारा होता था और वे ही उसकी शादी कर देते थे। शादी के मामले में लड़की की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं था। शादी के

बाद लड़की अपनी सास के नियंत्रण में रहती थी। यदि कोई कन्या अपनी सास की उम्मीदों के अनुरूप नहीं बन पाती तो मुसलमान परिवार में उसे तलाक दे दिया जाता और हिन्दू परिवार में उसकी स्थिति दयनीय बना दी जाती थी। परन्तु यदि घर की बहू बड़ी होती और सास के प्रभाव से अलग रहती तो सभी घरेलू मामलों में उसकी बात का महत्त्व होता था। अपने पति के साथ औरत की स्थिति, जब तक उसके सम्बन्ध ठीक हो, एक मर्यादित आश्रित के समान ही रहती थी। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, ''हिन्दुओं में ऐसी मान्यता है कि कोई शुभकार्य स्त्री की उपस्थिति या सहयोग के बिना पूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि वह पुरुष की अर्धांगिनी समझी जाती थी।'' दोनों एक-दूसरे का कहना मानते थे, हालांकि पति की ही बात सर्वोपरि होती थी। किन्तु इतना होते हुए भी ऊँचे घरानों की स्त्रियाँ विशेषकर राजपूतनियाँ अपने स्वाभिमान के मामले में किसी की बात मानने को तैयार नहीं होती थीं। पति यदि किसी दूसरी स्त्री के सौन्दर्य की मजाक में भी प्रशंसा कर देता तो पत्नी नाराज हो जाती और उनका दाम्पत्य जीवन कटु हो जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अधिकांश हिन्दुओं का ग्रार्हस्थ्य जीवन सुखी था।

विधवा की स्थिति—तलाक और पुनर्विवाह मुसलमानों में आम बात थी, लेकिन हिन्दुओं में यह वर्जित था। कुछ निम्न जाति के लोगों को छोड़कर मध्यकालीन हिन्दू समाज में विधवा विवाह का पूर्णतया निषेध था। सती-प्रथा प्रचलित थी। यहाँ तक कि वैसी लड़की भी जिसकी केवल सगाई भर हुई हो, अपने होने वाले पति की चिता पर सती होने के लिए विवश कर दी जाती थी। वे विधवाएँ जो अपने पतियों के साथ सती नहीं होती थीं, समाज के द्वारा बड़ी तिरष्कृत की जाती थीं। उनके बाल कटवा दिये जाते थे और उन्हें जेवर नहीं पहिनने दिया जाता था। उनको केवल रुखा-सूखा सात्विक भोजन दिया जाता था और वे कोमल शैया की बजाय जमीन पर सोती थीं। ऐसी अभागी विधवाओं को अपने मायके में रहना पड़ता था, जहाँ उन्हें दासी के समान समझा जाता था। विधवा के प्रति उसके परिवार के लोगों का व्यवहार भी ठीक नहीं होता था।

दिल्ली के कुछ सुल्तानों ने हिन्दुओं के बड़े समुदाय में विशेषकर राजपूतों और ऊँचे घरानों में प्रचलित सती-प्रथा को समाप्त किये जाने का प्रयास किया था। सम्भवतः मुहम्मद तुगलक प्रथम मध्यकालीन शासक था, जिसने सती-प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाया था। उसके राज्य क्षेत्र में किसी विधवा को सती होने के पूर्व राजाज्ञा लेनी होती थी। सीदी अली रईस (1553-1556 ई.), जो हुमायूँ के राज्यकाल में भारत आया था, उसने लिखा है कि सती होने के स्थान पर सुल्तान के अफसर सदैव यह देखने के लिए मौजूद रहते थे कि किसी विधवा को उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं जलाया जाए। अकबर ने सती-प्रथा पर प्रतिबन्ध तो नहीं लगाया, लेकिन उसने कोतवाल को यह आदेश दे दिया था कि वे किसी भी विधवा को उसकी इच्छा के विपरीत सती किये जाने से रोक दें। अकबर ने तो स्वयं हस्तक्षेप करके विधवाओं को जबरन जलाये जाने से बचाया था। उसने जहाँगीर के ससुर भगवानदास की भान्जी जयमल की विधवा की रक्षा की तथा उसके पुत्र को, जो उसे जल मरने के लिए विवश कर रहा था, जेल में बन्द करवा दिया। सोलहवीं एवं सत्रहवीं सदी के यूरोपियन यात्रियों डेलावेल, प्लेसार्ट तथा टवर्नियर ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया है कि किसी विधवा को जलाये जाने से पूर्व गवर्नर की अनुमति प्राप्त करना

अनिवार्य था। जहाँगीर और शाहजहाँ ने इस कानून में कोई परिवर्तन नहीं किया। केवल औरंगजेब ही ऐसा शासक था जिसने निश्चित आदेश जारी करके अपने राज्य में सती प्रथा की मनाही कर दी थी। किन्तु इन आदेशों का प्रजा पर कोई असर नहीं हुआ और पहले की भाँति ही यह प्रथा चलती रही।

माता की स्थिति—पत्नी तथा विधवा के रूप में नारी की जो भी स्थिति रही हो, किन्तु माता के रूप में उसका स्थान अत्यन्त सम्मानजनक था। कई मुगल बादशाह तो अपनी माता की अगवानी करने थोड़ी दूर तक पैदल जाया करते थे। माता के सामने उपस्थित होने पर वे 'कोर्निस', 'सिजदा' और 'तसलीम' से अभिवादन किया करते थे। अपने जन्मदिन पर वे अपने राजकुमारों और दरबारियों के साथ माता का आशीर्वाद लेने जाते थे। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि राज्य की प्रथम महिला का स्थान बादशाह की पत्नी को प्राप्त नहीं था (नूरजहाँ और मुमताज महल अपवाद हैं) बल्कि यह स्थान राजमाता या बादशाह की बहिन को प्राप्त होता था। माता के प्रति सम्मान की भावना राजपूतों से अधिक शायद ही किसी में हो। मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय ने प्रतिदिन भोजन करने से पहले माता के दर्शन करने का नियम बना लिया था। जब अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी तब अपनी माता की आज्ञा पर सोलह वर्ष का युवा फत्ता केसरिया बाना पहन कर समराग्नि में कूद पड़ा और वीरगति को प्राप्त हुआ।

आर्थिक स्थिति—आर्थिक रूप में, एक मुस्लिम स्त्री को उत्तराधिकार के रूप में सम्पत्ति के एक हिस्से का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त होता था। हिन्दू बहिनों के विपरीत उसका यह अधिकार विवाह के बाद भी अक्षुण्ण रहता था। पारस्परिक वैवाहिक समझौते (मेहर) की व्यवस्था मुसलमान औरतों के लिए एक अन्य सुरक्षा व्यवस्था थी, किन्तु एक हिन्दू महिला को अपने पति के माता-पिता की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं था। एक हिन्दू महिला को कुछ अचल सम्पत्ति, जिसमें गहने आदि भी थे, के अलावा अपने खाने-पीने तथा निवास का व्यय प्राप्त करने का अधिकार था। इस प्रकार औरत को जीवन के हर क्षेत्र में परतंत्र बना दिया गया था। जाति-प्रथा और अलगाव की भावना ने नारी की स्थिति सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक धरातल पर प्रभावहीन बन गई थी। उसका दायरा घरेलू कामों तक सीमित था। किन्तु किसान और मजदूर वर्ग की स्त्रियाँ अपवाद थीं, जो कृषि, पशुपालन, बुनाई, कढ़ाई, सिलाई आदि जैसे कामों में घर से बाहर भी पुरुषों को सहयोग देती थीं। ऐसी बहुत सी औरतों ने विशेषकर मुसलमानों तथा बंगालियों ने नृत्य और गायन को अपना पेशा बना लिया था।

विद्वान् तथा प्रशासक—नारियों का अलगाव एवं परतन्त्रता के बावजूद मध्यकालीन भारत में कई श्रेष्ठ लेखिकाएँ तथा अभूतपूर्व प्रशासनिक क्षमता वाली महिलाएँ हुई हैं। हुमायूँनामा की लेखिका गुलबदन बेगम और शिबिया तथा मुनिसाल अरवा की जीवनी लेखिका जहाँनारा का स्थान तत्कालीन साहित्यकारों में बहुत ऊँचा है। मीराबाई, देवलरानी, रूपमती, सलीमा सुल्ताना, नूरजहाँ, सितिउन्निसा (जहाँनारा की अध्यापिका) और जेबुन्निसा (औरंगजेब की बेटी) उस समय की प्रसिद्ध कवयित्रियाँ थीं। रघुनाथ अभ्युदय में मधुरवाणी की लेखिका तथा आन्ध्र रामायण की छन्दोबद्ध अनुवादिका रामभद्रबा, काव्य वरदंबिका परिणयम् की लेखिका तिरुमलंबा और मारिची परिणयम् नामक प्रेम काव्य की लेखिका मोइनांगी उस युग की प्रसिद्ध संस्कृत कवयित्रियाँ

अध्याय-28

सांस्कृतिक समन्वय एवं सम्मिश्र संस्कृति का विकास

पृष्ठभूमि-विश्व का कोई भी देश इस बात का दावा नहीं कर सकता कि उसकी संस्कृति विशुद्ध है। जिस प्रकार अनेक नदियाँ समुद्र में आकर विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक देश के सांस्कृतिक सागर में विभिन्न सांस्कृतिक नदियाँ आकर उस सांस्कृतिक सागर में विलुप्त हो जाती हैं अथवा कुछ समय तक वे कुछ तरंगें व तूफान-सी स्थिति पैदा करती हैं, लेकिन अन्त में वह सांस्कृतिक सागर उन्हें निगल जाता है। ठीक इसी प्रकार तुर्कों के आक्रमण के पूर्व भारत में अनेक जातियों ने प्रवेश किया, लेकिन भारतीय संस्कृति ने उन्हें आत्मसात् कर लिया। तुर्कों के आक्रमण के बाद इस क्रिया में अवरोध उत्पन्न हो गया, क्योंकि तुर्कों की इस्लामी संस्कृति एक भीषण बाढ़ के रूप में अनेक संस्कृतियों को निगलती हुई भारत में प्रविष्ट हुई थी और अब वह भारतीय सांस्कृतिक सागर को भी निगल जाना चाहती थी। आगे चलकर यद्यपि दोनों संस्कृतियों को इसी देश में साथ-साथ रहना पड़ा था, लेकिन ये दोनों कभी घुल-मिल नहीं पाई। इसका मुख्य कारण यह था कि यद्यपि भारतीय संस्कृति तो उसे आत्मसात् करने को तैयार थी, किन्तु मुसलमानों के हृदय से अपनी मातृभूमि के प्रति आसक्ति समाप्त नहीं हो पाई और उनकी बर्बरता और धर्मान्धता भारतीयों को उनसे दूर ही करती रही।

भारत विजय के पश्चात् अरबों और तुर्कों ने अनेक हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया। वे केवल लूटमार और अपना राज्य स्थापित करने नहीं आये थे बल्कि वे यहाँ पर अपना धर्म और संस्कृति स्थापित करना चाहते थे। अपने धर्म प्रचार के आवेश में उन्होंने कभी भारतीय धर्म और संस्कृति को समझने का प्रयास ही नहीं किया। वे हिन्दुओं को काफिर कहते रहे और उन्हें दोजख (नरक) में भेजने लायक समझते रहे। वे अपने धर्म और सभ्यता को हिन्दुओं के धर्म और सभ्यता से निश्चित रूप से श्रेष्ठ समझते थे। मुसलमानों के इस व्यवहार के कारण हिन्दुओं में भी अनुदारता बढ़ने लगी और वे मुसलमानों को 'म्लेच्छ' ही समझते रहे। मुसलमान अपने धर्म और संस्कृति को फैलाने के लिए दृढ़ संकल्प थे, तो दूसरी ओर हिन्दू अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए दृढ़ संकल्प थे। भारत में मुसलमान शासक-वर्ग के थे, अतः उन्होंने छल, बल और प्रलोभन के उपायों से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। लेकिन हिन्दुओं के पास न तो शासन सत्ता ही थी और न शस्त्र-शक्ति। इसलिये उन्होंने आरम्भ में परिवर्तित मुसलमानों को प्रायश्चित करवा कर पुनः हिन्दू धर्म में शामिल कर लिया। लेकिन ज्यों-ज्यों हिन्दू धर्म में

अनुदारता बढ़ती गई, यह प्रथा भी समाप्त हो गई। फलतः जो हिन्दू एक बार मुसलमान बन जाता था, वह हमेशा के लिए मुसलमान ही रहता था और हिन्दू समाज उन्हें पुनः ग्रहण करने को तैयार नहीं था। इस प्रकार भारत में दो पृथक् समाज स्थापित हो गये, जिनके धर्म और संस्कृति सर्वथा पृथक् थे। मुस्लिम शासक इस पृथकत्व को बनाये रखना चाहते थे। अतः दोनों का सांस्कृतिक समन्वय असम्भव-सा प्रतीत होता था। लेकिन जब दोनों वर्ग लम्बे समय तक साथ-साथ रहें तो यह सम्भव नहीं था कि दोनों परस्पर मिलें ही नहीं और सुरक्षा का दायित्व उलेमाओं और पण्डितों ने ले लिया और हिन्दू-मुस्लिम जन-साधारण ने मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिये, तब यह स्वाभाविक ही था कि हिन्दू समाज और संस्कृति पर मुसलमानों का प्रभाव पड़ता और हिन्दू समाज और संस्कृति से मुसलमान प्रभावित होते। फलस्वरूप दोनों का सांस्कृतिक समन्वय हुआ, जो एक संयोग की बात थी। वैसे दोनों में एक-दूसरे से कुछ सीखने की कोई उत्सुकता नहीं थी। हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय का मुख्य स्वरूप यह था कि दोनों संस्कृतियों पर एक-दूसरे का प्रभाव पड़ने के बावजूद दोनों के बीच धर्म की गहरी खाई ज्यों-की-त्यों बनी रही।

इस्लाम और हिन्दू संस्कृति का परस्पर प्रभाव-हिन्दू सभ्यता और संस्कृति ने इस्लाम को प्रभावित किया अथवा इस्लामी सभ्यता और संस्कृति ने हिन्दुत्व को प्रभावित किया-यह आज भी विवाद का विषय बना हुआ है। डॉ. ताराचन्द ने लिखा है कि इस्लाम के सम्पर्क से न केवल हिन्दू धर्म एवं संस्कृति में परिवर्तन ही आया, बल्कि हिन्दू संस्कृति का स्वरूप ही बदल गया। लेकिन डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव की मान्यता है कि इस्लाम ने मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति पर कोई वास्तविक रचनात्मक प्रभाव नहीं डाला। एक अन्य विद्वान श्री टाइटस ने लिखा है कि, ''सब कुछ कहने के उपरान्त इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि इस्लाम ने हिन्दुत्व पर जितना प्रभाव डाला, उससे कहीं अधिक परिवर्तन हिन्दुत्व ने इस्लाम में कर दिया। हिन्दुत्व जिस सन्तोष एवं विश्वास के साथ अपने मार्ग पर आज भी जा रहा है, वह आश्चर्यजनक है।'' इससे स्पष्ट है कि दोनों संस्कृतियाँ एक-दूसरे से अप्रभावित न रह सकीं और दोनों के सांस्कृतिक समन्वय के फलस्वरूप एक नवीन मिली-जुली संस्कृति का अभ्युदय हुआ। इस सांस्कृतिक समन्वय में नानक और कबीर जैसे धार्मिक नेताओं का अधिक योगदान रहा, जिन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हिन्दू धर्म और इस्लाम एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले अलग-अलग मार्ग हैं और राम-रहीम, कृष्ण-करीम व अल्लाह और ईश्वर एक ही परमात्मा के विभिन्न नाम हैं। इस प्रकार ऐसे धार्मिक नेताओं और सुधारकों ने सांस्कृतिक समन्वय की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

राजनीतिक क्षेत्र में-भारत पर मुसलमानों की विजय के फलस्वरूप भारत में हिन्दुओं की राजनैतिक संस्थाएँ समाप्त हो गयीं और उनके स्थान पर मुस्लिम राजनैतिक संस्थाएँ स्थापित हुईं, जो इस्लामी सिद्धान्तों एवं आदर्शों पर आधारित थीं। हिन्दू जो राजसत्ता का सुख भोग रहे थे, समस्त उत्तरदायी सरकारी पदों से वंचित कर दिये गये, जिससे उनकी राजनैतिक प्रतिभा कुण्ठित हो गयी। यद्यपि दिल्ली के सुल्तानों ने अपने शासन प्रबन्ध में इस्लामी सिद्धान्तों का समावेश किया, किन्तु राजस्व वसूली के मामले में उन्होंने भारतीय पद्धति ही ग्रहण की और ग्राम प्रबन्ध के लिये हिन्दुओं पर ही निर्भर रहे। तुर्क शासकों ने धीरे-धीरे हिन्दू शासकों की शान-शौकत, जैसे-राजसी, पोशाक, छत्र-चँवर, हीरे-मोती, जवाहरात, जड़ाऊ खड्ग आदि भी अपना ली। यद्यपि इस्लाम सादगी पर जोर देता था, किन्तु तुर्क शासकों ने हिन्दुओं की देखा-देखी तड़क-

भड़क ग्रहण कर ली। 'राजत्व में देवत्व' का सिद्धान्त इस्लामी आदर्श के प्रतिकूल था, लेकिन तुर्कों ने हिन्दुओं के इस आदर्श को ग्रहण कर भारत में अपनी निरंकुश सत्ता स्थापित कर ली। मुगल काल में, विशेषकर अकबर के शासनकाल से तो राजनीतिक समन्वय का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया। मुगलों ने जिस प्रकार की शासन-व्यवस्था को संगठित किया, उससे देश में राजनैतिक एकता का बीजारोपण हो गया। शाही मनसबदार बनने के बाद हिन्दू शासकों ने भी अपने राज्यों का प्रबन्ध मुगल साम्राज्य के ढाँचे पर सुसंगठित किया और दीवान, बख्शी, हाकिम, फौजदार आदि अधिकारियों की नियुक्तियाँ कीं। जिस प्रकार शाही मनसबदारों की श्रेणियाँ और उनकी मान-मर्यादा निश्चित थी, उसी प्रकार हिन्दू शासकों ने भी अपने सामन्तों की श्रेणियाँ निश्चित कर उनकी मान-मर्यादा निश्चित कर दी और शाही नमूने पर वैभवपूर्ण नियम-बद्ध कर उसे नया स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार हिन्दू राज्यों में अनजाने ही राजपद की मर्यादा तथा उसके अधिकारों में अनपेक्षित परिवर्तन आ गया।

सामाजिक क्षेत्र-भारत में इस्लाम के प्रविष्ट हो जाने के बाद भारतीय हिन्दू समाज दो प्रकार से प्रभावित हुआ। प्रथम तो मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के जोशीले प्रयत्नों से हिन्दुओं के आचार-विचारों में कट्टरता आ गयी। जाति बन्धन एवं धार्मिक जीवन व्यतीत करने के नियम अधिक कठोर कर दिये गये। बाल-विवाह की प्रथा चल पड़ी और कठोर पर्दा-प्रथा अपना ली गई। इसका कारण यह था कि हिन्दू नेताओं ने सोचा कि इस्लाम के आक्रमणों से अपने धर्म और संस्कृति को बचाने का एकमात्र उपाय यही है कि अपने आचार-विचारों में और कट्टर बन जाये। दूसरा यह कि हिन्दुओं ने मुसलमानों के सामाजिक संगठन के कुछ जनवादी सिद्धान्तों को अपना लिया। हिन्दू सुधारकों ने सभी जातियों की एकता पर बल दिया और बताया कि मोक्ष प्राप्त करने के लिये किसी विशेष जाति में जन्म लेना आवश्यक नहीं है। उन्होंने सभी धर्मों की मूलभूत एकता और एक ही ईश्वर के विचार को प्रतिपादित किया। सूफी धर्म ने हिन्दू समाज को प्रभावित किया। सूफी संत हिन्दू सन्तों की तरह ही रहते थे और वैसा ही व्यवहार करते थे। सूफियों के उदारवादी दृष्टिकोण के कारण हिन्दू समाज की निम्न जातियों की स्थिति में अन्तर आया। तुर्कों के आने से पूर्व इन निम्न जातियों की बड़ी शोचनीय स्थिति थी। समाज में उनका कोई सम्मान नहीं था तथा उन्हें मोक्ष का अधिकारी नहीं माना जाता था। अतः मुसलमानों के आने से निम्न जातियों के लोग ही बड़ी संख्या में मुसलमान बनने लगे। फलतः हिन्दू समाज के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया। इसलिये निम्न जातियों को इस्लाम की ओर जाने से रोकने के लिये उनके प्रति उदार व्यवहार किया जाने लगा, जिससे निम्न जातियों के जीवन में सुधार आया।

सामाजिक क्षेत्र में हिन्दू समाज के उच्चवर्गीय लोगों के पहिनावे, आहार-विहार और सामाजिक तौर-तरीकों में इस्लामी प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। हिन्दू सामन्तों ने मुस्लिम अमीरों की वेश-भूषा ग्रहण कर ली, जैसे-दगली, जामा आदि। साफा या पगड़ी हिन्दू और मुसलमान दोनों पहिनते थे। हिन्दू अपनी पगड़ी या साफे को आकर्षक बनाने के लिये उस पर तुर्रा, सरपेच आदि लगाने लगे। हिन्दुओं में सलवार, पायजामा और इजारबन्द भी लोकप्रिय हुए। उच्चवर्गीय हिन्दुओं ने मुसलमानी माँसाहारी भोजन अपना लिया। पुलाव, कवाब, कोफ्ता आदि सम्पन्न हिन्दुओं के प्रिय पदार्थ थे। बहुत-से हिन्दुओं ने तो मुसलमानों के अभिवादन करने का ढंग भी

अपना लिया। ठीक इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओं की सभ्यता और संस्कृति से काफी प्रभावित हुए थे। सन्तों और दरगाहों की पूजा करना हिन्दुओं के स्थानीय और जातीय देवी-देवताओं की पूजा करने का ही दूसरा रूप था। मुसलमानी त्यौहार भी भारत के हिन्दुओं की तरह ठाठ-बाट से मनाये जाने लगे। शबेबरात का त्यौहार शिवरात्रि के हिन्दू त्यौहार की तरह रात्रि भर जागरण करके शोरगुल के साथ मनाया जाने लगा। मुसलमानों में अकीका और बिस्मिल्लाह के उत्सव हिन्दुओं के मुण्डन और विद्यारम्भ के संस्कारों जैसे मनाये जाने लगे। हिन्दुओं के विवाह संस्कार ने मुसलमानी निकाहों को भी प्रभावित किया। मुसलमानों ने वधू-शृंगार करने की प्रथा विशेष रूप से अपना ली। हिन्दू जैसे श्राद्ध करते हैं, कुछ इसी प्रकार मुसलमान भी मृत व्यक्तियों के नाम पर भोज और खैरात बाँटने लगे। हिन्दुओं की जाति प्रथा ने जनवादी मुस्लिम समाज को प्रभावित किया और शरीफ और रजील जातों का भेद करने लगे। तुर्क, पठान, सैयद और शेख अपनी से नीची जाति अथवा चारों कोनों से बाहर, यहाँ तक कि अपनी निजी कौम से भी बाहर, विवाह सम्बन्ध करने की बात नहीं सोच सकता था। जुलाहों तथा धुनियों के साथ इन चारों कौमों वालों को खाने-पीने में भी आपत्ति होने लगी। पान खाने की आदत मुसलमानों ने हिन्दुओं से सीखी थी। हिन्दू पकवान, मिष्ठान्न और खूब पकी हुई मिर्च-मसाले युक्त भोजन की वस्तुएँ उन्हें अब अच्छी लगने लगी थीं और उन्होंने हिन्दू पाक-कला की बहुत-सी बातें अपना ली थीं। इस्लाम में अँगूठियाँ, हार, कानों के आभूषण आदि पहिनना वर्जित था, किन्तु भारतीय धनी मुसलमान इन्हें धारण करने लगे। भारत अपने महीन सूती और रेशमी वस्त्रों के लिये प्रसिद्ध था। इन्हें अब उच्च श्रेणी के मुसलमानों में, जो कि अपने देश में काफी मामूली और मोटे-मोटे वस्त्र ही पहिनते थे, अधिकता से उपयोग किया जाने लगा था। नजर लगने से बचने के लिये न्यौछावर उतारने की परिपाटी शाही हवेलियों में भी थी। यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व मुस्लिम शाहजादे अपनी बाँहों पर मंत्र सिद्धि-यंत्र बँधवाते थे। मुसलमानों में जौहर के उदाहरण भी मिल जाते हैं।

धार्मिक क्षेत्रों में-हिन्दुत्व और इस्लाम के दृष्टिकोण, सिद्धान्त और आचार-व्यवहार पृथक्-पृथक् थे। इस्लाम मूर्ति पूजा के विरुद्ध था तथा सादगी और एकेश्वरवाद पर बल देता था, जबकि हिन्दू मूर्ति पूजा के प्रति आस्था रखते हुए बहुदेववादी थे। अतः अनेक मुस्लिम शासकों एवं इस्लाम धर्म के प्रचारकों ने हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया, मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट किया और हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाना आरम्भ किया। उनकी बर्बरता और धर्मान्धता उन्हें हिन्दुओं से दूर करती रही। यद्यपि मुसलमानों का सूफी दर्शन और हिन्दू वेदान्त अवश्य एक-दूसरे के समीप थे, किन्तु उनकी सूक्ष्म और रहस्यपूर्ण बातों को समझने वालों की संख्या बहुत कम थी। हिन्दू तो राम-रहीम, कृष्ण-करीम और ईश्वर-अल्लाह को एक मानने को तैयार थे, लेकिन मुसलमान इसके लिये बिल्कुल तैयार नहीं हुए। अतः दोनों में भीषण पृथकत्व बना रहा। इस भीषण पृथकत्व के बावजूद दोनों की धार्मिक विचारधारा ने एक-दूसरे को प्रभावित किया, जिससे दोनों के धार्मिक तत्त्वों में परिवर्तन आया।

मुसलमानों की धार्मिक विचारधारा और रीति-रिवाजों पर हिन्दू धर्म का प्रभाव पड़ा। डॉ. वहीद मिर्जा ने लिखा है कि "भारत के कलंदरों और फकीरों जैसे साधु-संन्यासियों के बड़ी संख्या में होने का सब मिलाकर यह प्रभाव हुआ कि सरल शुद्ध इस्लाम जिसमें कि तकलीफ-ए-शरिया

(बाह्य धार्मिक कर्त्तव्य) पर जोर दिया जाता था, अब बदलकर एक मिश्रित-सा भक्ति सम्प्रदाय बन गया था जिसमें कि चमत्कार, अन्ध-विश्वास और सन्त-पूजा समन्वित होकर अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठे थे। अब यह जन-साधारण में एक प्रथा-सी हो गयी थी कि लोग अपना एक आध्यात्मिक गुरु बना लेते थे और ऐसी जन-आस्था थी कि केवल वही इस लोक और परलोक में सुखी और सम्पन्न जीवन का वरदान दे सकता है।" इस प्रकार मुसलमान भी अपने पाँच पीर, पीर बदर, ख्वाजा खिजिर आदि कल्पित देवताओं की पूजा करने लगे और उनकी दरगाह पर माथा टेकने लगे। हिन्दुओं की रथ यात्रा के अनुकरण पर मुसलमान भी अपने मुहर्रम के दिन ताजिये निकालने लगे। मुसलमानों ने इस्लामी शरियत के विपरीत अनेक बातें अपना लीं, जिसका उल्लेख करते हुए डॉ. बुद्ध प्रकाश ने लिखा है कि "उत्तरी सीमा प्रान्त, कश्मीर, पंजाब और करनाल जिले के मुसलमान पुराने ग्राम देवताओं की पूजा करते थे। हरियाणा, अलवर, भरतपुर के मेव और मीना हिन्दू नामों को खान के साथ जोड़ते और दशहरा, दीवाली और जन्माष्टमी मनाते और कुँआ खोदने से पहले चबूतरा बनाकर हनुमान को अर्पित करते थे। उनमें सगोत्र विवाह वर्जित था और लड़कियों को उत्तराधिकार प्राप्त नहीं था।" इसी प्रकार बूँदी के जौडा के मुसलमान अपने विवाहों में हिन्दू रस्में करते थे। अजमेर के हुसैनी ब्राह्मण रमजान और एकादशी का व्रत करते थे। पंज भाई सम्प्रदाय के इस्लामी खोजा हजरत अली को विष्णु का दसवाँ अवतार मानते थे। पूर्निया जिले के देहात के मुसलमान अल्लाह और काली दोनों के नाम लेकर पूजा करते थे। उनके शादी-विवाह की रस्में भगवती के मन्दिर में होतीं। हिन्दू प्रभाव के कारण ही मुसलमानों में भी अनेक सम्प्रदाय स्थापित हुए जैसे इस्लामिया सम्प्रदाय, पंजभाई सम्प्रदाय, अली इलाहिया, शिया सम्प्रदाय आदि।

मुसलमानों की भाँति हिन्दू धार्मिक विचारधारा को इस्लाम ने प्रभावित किया। हिन्दू भी मूर्ति पूजा का खण्डन कर निर्गुण भक्ति पर जोर देने लगे और बाह्य आडम्बरों का खण्डन कर एक विशुद्ध सादा और अन्धविश्वासरहित धर्म स्थापित करने की कोशिश की। पूजा के विविध प्रकार, पण्डितों की प्रधानता, मन्दिरों की स्थापना, शास्त्रों के प्रति मान्यता आदि बातों का अब कोई स्थान नहीं रहा। नैतिक आचरण, गुरुभक्ति, ईश्वर में विश्वास, भक्ति साधना आदि मोक्ष प्राप्ति के ऐसे माध्यम थे जिनकी सभी हिन्दू सम्प्रदायों में मान्यता स्थापित हो गई। धर्म में ऊँच-नीच का भेद समाप्त होने लगा, फलस्वरूप रैदास जैसे अन्त्यज जाति के व्यक्ति और कबीर जैसे धुनिया मुसलमान की गणना सन्तों में हो सकी। अब हिन्दू धर्म एक आडम्बरहीन एवं सादा लोक-धर्म बन गया, जिसमें सभी जातियों एवं वर्गों को एक मानकर पंथ एवं सम्प्रदाय की सीमाएँ निश्चित कर दी गईं।

कला और साहित्य के क्षेत्र में-विदेशी मुसलमान बाहर से जो कला की विशेषताएँ भारत लाए थे, वह हिन्दू कला परम्परा के संसर्ग से इतनी बदल गई कि उसका शुद्ध इस्लामी रूप ही जाता रहा। दूसरी ओर हिन्दू कला का विशुद्ध स्वरूप भी समाप्त हो गया। हिन्दू और मुस्लिम कलाओं का ऐसा समन्वय हुआ कि भारत में एक नयी और मिश्रित कला का अभ्युदय हुआ। प्रारम्भ में दिल्ली के सुल्तानों ने हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त कर उसी सामग्री से उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाईं, जिनका बाहरी आवरण इस्लामी था तो आवरण के भीतर हिन्दू कला के तत्त्व स्पष्ट दिखाई देते थे। कालान्तर में ऐसी मस्जिदें भविष्य में बनने वाली मस्जिदों के लिए आदर्श

नमूने बन गये। सल्तनत और मुगल शासकों ने जो इमारतें बनवाईं वे हिन्दुओं और मुसलमानों-दोनों ही की संयुक्त प्रतिभा और प्रयासों का प्रतिफल थीं। इस समन्वित शैली की अभिव्यक्ति हमें फतेहपुर सीकरी के भवनों में दिखाई देती है। जोधाबाई के महल, मरियम के महल, पंचमहल, बीरबल की कोठी और दीवान-ए-खास में प्राचीन हिन्दू मन्दिरों की सजावट और अभूतपूर्व नक्काशी हिन्दू कला के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इसी प्रकार आगरे के किले में जहाँगीरी महल भी हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैलियों के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है। जहाँगीर के काल में सिकन्दरा में बने अकबर के मकबरे की बनावट बौद्ध विहार जैसी है और शाहजहाँ के काल में तो यह समन्वय अपने चरम बिन्दु पर पहुँच गया था। हिन्दुओं ने भी मिश्रित कला शैली को अपना लिया और यहाँ तक कि हिन्दू मन्दिर तक इस मिश्रित कला शैली से नहीं बच सके। उदाहरण के लिए वृन्दावन के अनेक मन्दिरों में यह कला शैली अपनाई गई। हिन्दू शासकों ने अपने महलों का निर्माण भी इसी शैली में करवाया। अकबर के समय से मुसलमानों ने हिन्दू चित्रकला शैली के तत्त्व ग्रहण कर लिए, जिससे मुगल, जो ईरानी-चीनी चित्रकला शैली भारत लाये थे, प्रभावित हुए बिना न रही और चित्रकला की एक सर्वथा नवीन शैली सामने आयी। अकबर ने ईरानी, चीनी और हिन्दू शैली का जो समन्वय किया, वह जहाँगीर के काल में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। इस नवीन शैली के प्रभाव से राजपूत चित्रकला भी पूरी तरह बदल गई जिसके फलस्वरूप अठारहवीं सदी में काँगड़ा शैली का जन्म हुआ। इस्लाम में संगीत वर्जित था, किन्तु सूफी मुसलमान संगीत के प्रेमी थे। ईरानी और हिन्दू रागों के सम्मिश्रण से नई राग-रागनियों का आविष्कार हुआ। ध्रुपद राग के सम्मिश्रण से ख्याल संगीत का आविष्कार हुआ। अमीर खुसरो ने कव्वाली ईजाद की। रागों के अतिरिक्त वाद्य यन्त्रों का आविष्कार हुआ। 'मृदंग' को तबले का रूप देने का श्रेय अमीर खुसरो को है। हिन्दुओं ने भी न केवल इन मिश्रित राग-रागनियों व वाद्य यन्त्रों को अपनाया बल्कि मुसलमानों की कव्वाली और गजल को लोकप्रिय बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

मुसलमानों की भाषा और साहित्य भारतीय भाषा और साहित्य से बिल्कुल भिन्न था। उनके उच्चारण से भारतीय अनभिज्ञ थे और भारतीय वर्णमाला द्वारा उसकी अभिव्यक्ति भी सम्भव नहीं थी। लेकिन चूँकि मुसलमानों को अब भारत में ही रहना था अत: भारतीयों से मिलना-जुलना और बातचीत करना अनिवार्य था। इसलिए धीरे-धीरे मुसलमान भारतीय भाषाओं के तथा हिन्दू अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग करने लगे। जो हिन्दू-मुसलमान बन गये थे, वे अपनी मातृभाषा में अधिकाधिक अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग करने का प्रयत्न करने लगे। अत: दोनों भाषाओं के समन्वय के फलस्वरूप एक नई भाषा विकसित होने लगी। अमीर खुसरो की रचनाओं में इसकी स्पष्ट झलक दिखाई देती है। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक-दूसरे की भाषा समझने की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। अत: सर्वप्रथम सिकन्दर लोदी के काल में कुछ हिन्दू फारसी पढ़ने लगे। तुगलक काल के अन्तिम भाग में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कुछ साहित्यिक सम्पर्क का आभास मिलता है। फीरोज तुगलक के शासनकाल में कुछ मुसलमान विद्वानों ने संस्कृत अथवा अपभ्रंश की कुछ प्रेम-कथाओं को हिन्दी में अनुदित किया था। लेकिन जिस लिपि में वे लिखी गई थीं वह फारसी ही थी। अकबर के काल से हिन्दू और मुसलमान विद्वान् नि:सन्देह रूप से एक-दूसरे के अधिक घनिष्ठ सम्पर्क में आये और इसलिए सोलहवीं

सदी से हिन्दू साहित्यकार और सुधारक इस्लामी विचारों से प्रभावित होने लगे। आगे चलकर वैष्णव कवि कृष्ण हरिदास की सत्य पीर सम्बन्धी एक कविता में यहाँ तक कह दिया कि कुरान और पुराण में कोई भेद नहीं है। अकबर के काल से धर्मग्रन्थों के एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने की प्रवृत्ति को बहुत प्रोत्साहन मिला। महाभारत, अथर्ववेद, रामायण, हरिवंश, गीतासुबोधिनी, योगवाशिष्ठ, भागवत आदि के फारसी में अनुवाद कराये गये। अनुवादों के अतिरिक्त धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये कुछ मौलिक ग्रन्थ भी लिखे गये। इनमें मीर अब्दुल वाहिद बिलगरामी की 'हकायक-ए-हिन्दी' उल्लेखनीय है, जिसमें लेखक ने वैष्णवों की पचास से अधिक परिभाषाओं को इस्लामी मान्यताओं के साथ समन्वित किया है। उदाहरण के लिए 'कृष्ण' की पहचान कहीं हजरत मोहम्मद, कहीं मनुष्य और कहीं ईश्वरीय अद्वैत सत्ता की परिकल्पना के सन्दर्भ में मानवीय वास्तविकता के साथ की गई है, गोपियों को कहीं फरिश्ते और कहीं एकता और अनेकता के सम्बन्ध का प्रतीक बनाया गया है, उद्धव को हजरत मुहम्मद के अनुयायियों के समकक्ष और ब्रज को कहीं विश्व और कहीं दिव्य जगत बताया है। जहाँगीर के काल में बिहारीमल खत्री और किशनदास तम्बोली ने 'सिंहासन-बत्तीसी' का फारसी रूपान्तर तैयार किया तो शेख अब्दुर्रहमान ने 'मीरात-ए-हकायक' नाम से गीता का संक्षिप्त अनुवाद किया।

भारतीय ग्रन्थों के फारसी अनुवादों अथवा फारसी में स्वतन्त्र ग्रन्थों के प्रणयन के अलावा लोक-भाषाओं की अभिवृद्धि में हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर भाग लिया। शेख निजामुद्दीन औलिया के समय से ही सभा-मजलिसों में हिन्दी के गीत और भजन गाये जाते थे। अमीर खुसरो अपने को हिन्दी का कवि कहने में गर्व अनुभव करते थे। मुसलमान कवियों की हिन्दी कृतियों में मुल्ला दाऊद की 'चनदायन', कुतुबन की 'मृगावती', मञ्झन की 'मधुमालती', उसमान की 'चित्रावली' और मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' उल्लेखनीय हैं। रसखान के कृष्ण-भक्ति से ओत-प्रोत भजन, अब्दुर्रहीम खानखाना के कवित्त और सैय्यद गुलाम नबी व अली मुहिबखाँ की रचनाएँ भी हिन्दी साहित्य में विशेष महत्त्व रखती हैं। मुगल शासकों ने तो हिन्दी कवियों को दिल खोलकर आश्रय दिया। हिन्दी की तरह सिन्धी में शाह अब्दुल लतीफ का 'शाहजू रिसालो', पंजाबी में शेख इब्राहीम फरीद का 'नसीहतनामा' और वारिसशाह का 'हीर-राँझा', कश्मीरी में हब्बाह खातून के गीत और बंगला में यसोराजखाँ का 'कृष्णमंगल' आदि लोक-संस्कृति को साहित्य का कलेवर प्रदान करने के अनुपम प्रयास हैं। रीतिकालीन कविता पर मुस्लिम संस्कृति का काफी प्रभाव है। जहाँ मुसलमानों ने भारतीय भाषाओं के साहित्य को समृद्ध किया, वहाँ हिन्दुओं ने भी फारसी में सुन्दर रचनाएँ कीं। चन्द्रभान ब्राह्मण, आनन्दराम मुखलिस, लक्ष्मीनारायण शफीक, वृन्दावनदास, माधोराम आदि फारसी के उच्चकोटि के लेखक थे। इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में समन्वय अत्यन्त उत्कृष्ट रूप से व्यक्त हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि फारसी, अरबी और तुर्की भाषाओं में बहुत-से शब्द हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराती, राजस्थानी और अन्य उत्तरी भारत की भाषाओं में अपना लिये गये। इसी प्रकार मुसलमानों ने भी अपनी अरबी-फारसी में भारतीय भाषाओं के शब्द अपना लिये, जिससे उर्दू भाषा का जन्म हुआ।

मुसलमानों के भारत आगमन के पूर्व हिन्दू गणित, ज्योतिष और चिकित्सा के क्षेत्र में काफी उन्नति कर चुके थे और इन विषयों का भारतीय ज्ञान अरब पहुँच चुका था। अरबों ने इन

विषयों का ज्ञान यूनान से भी प्राप्त किया था। अतः भारतीय और यूनानी ज्ञान को आत्मसात् कर उन्होंने इन विषयों में अच्छी उन्नति कर ली और जब भारत आये तब उनका यह उत्तम ज्ञान भारतीयों को भी प्राप्त हुआ। हिन्दुओं ने मुसलमानों से ज्योतिष विद्या में गणना के लिए 'ताजिक' का प्रयोग सीखा। अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ गिनने की प्रणाली सीखी और ज्योतिष के अनेक पारिभाषिक शब्द ग्रहण किये। ज्योतिष विद्या का एक ग्रन्थ 'अल मजिस्ती' अरबी से संस्कृत में अनुवादित हुआ। अनेक प्रकार के तेजाबों का ज्ञान भी हिन्दुओं ने मुसलमानों से सीखा था। दूसरी ओर कुछ मुसलमान विद्वान योग और वेदान्त के हिन्दू दर्शन के अध्ययन की ओर भी आकर्षित हुए थे और कुछ ने भारतीय आयुर्वेद का भी अध्ययन किया था।

अन्य क्षेत्रों में–मुसलमानों के सम्पर्क का एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रभाव भारतीय युद्ध प्रणाली पर पड़ा। मध्ययुग के प्रारम्भ में हिन्दू शासकों के पास छोटी-छोटी सेनाएँ थीं और इन छोटी-छोटी सेनाओं को मिलाकर एक बड़ी सेना बना लेते थे। यह बड़ी सेना किसी एक प्रधान सेनापति के अधीन नहीं होती थी, बल्कि भिन्न-भिन्न सामन्तों के अधीन होती थी। दूसरी ओर मुस्लिम शासकों के पास बड़ी-बड़ी सेनाएँ थीं, जिनका एक ही प्रधान सेनापति होता था, जिसे अपना रणचातुर्य प्रदर्शित करने के अधिक अवसर मिल जाते थे। तोपों और गोला-बारूद के प्रयोग ने एक नई युद्ध प्रणाली को जन्म दिया और हिन्दू राजाओं के रक्षात्मक युद्ध के तरीकों में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इन हिन्दू राजाओं ने अपने दुरूह प्रदेशों के किलों की रक्षा के लिये अब इन्हीं रक्षात्मक युद्ध के नवीन तरीकों को अपनाया।

मुसलमानों के आगमन के बाद भारतीय उद्योगों में भी परिवर्तन आया। सोने-चाँदी के पात्रों पर मीनाकारी, कागज बनाने की विकसित विधि, बर्तनों के कलई करना आदि मुसलमानों ने आरम्भ किया था। शतरंज का खेल भारत में मुसलमानों ने प्रचलित किया था, अतः शतरंज और शतरंज के मोहरे बनाने का काम भी मुसलमानों के आने के बाद प्रारम्भ हुआ था। इसी प्रकार ताश की जोड़ियाँ बनाना और बरफी और बालूशाही जैसी मिठाइयाँ बनाना भी मुसलमानों ने ही आरम्भ किया था। मुगलों ने मध्ययुगीन उद्यान कला को भी सुसज्जित किया। उन्होंने अपने बाग-बगीचों में ज्यामिति की सुन्दर डिजायनों के निकुंज और मण्डप बनवाये और इनके बीच सुन्दर फव्वारे लगवाये। इस उद्यान कला को भारत के सभी भागों में अपना लिया गया। इससे सौन्दर्य की अनुभूति और विकसित हो उठी तथा लोगों में बाग-बगीचों का शौक बढ़ गया। गुलाब के इत्र का निर्माण करने का श्रेय नूरजहाँ की माँ अस्मत बेगम को है।

इस प्रकार हिन्दुओं को जो कुछ भी उपयोगी और सुन्दर लगा, उसे अपनाने में उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं दिखाई। यद्यपि मुसलमानों को हिन्दू सभ्यता और संस्कृति से तनिक भी लगाव नहीं था, फिर भी दोनों वर्गों के पारस्परिक सम्पर्क से मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति में हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के तत्त्व अनायास ही घुल-मिल गये। हिन्दू धर्म और संस्कृति की यह विशेषता रही है कि बाहर से आने वाली सभ्यता और संस्कृति को आत्मसात् कर वह नवीन हो उठती है। इस सम्बन्ध में टीट्स का यह कथन बहुत ही उपयुक्त है कि, "सब कुछ कहने के पश्चात् भी इसमें भी तनिक सन्देह ही रह जाता है कि हिन्दू धर्म ने, जो कि अभी भी अपने सुस्थिर मार्ग पर आश्चर्यजनक सन्तोष और विश्वास से बढ़ता जाता है, इस्लाम के प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव डाला है।" डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव की भी मान्यता है कि, "इन दो शक्तिशाली